प्रेमचन्द

•

कर्बला

प्रकाशक
सरस्वती प्रेस,
वाराणसी

मूल्य : चार रुपये पचास नये पैसे,

मुद्रक
पियरलेस प्रिंटर्स
२०५, न्यू कैटरा
इलाहाबाद

भूमिका

प्रायः सभी जातियों के इतिहास में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं, जो साहित्यिक कल्पना को अनंत काल तक उत्तेजित करती रहती हैं। साहित्यिक-समाज नित नये रूप में उनका उल्लेख किया करता है, छंदों में, गीतों में, निबंधों में, लोकोक्तियों में, व्याख्यानों में बारंबार उनकी आवृत्ति होती रहती है, फिर भी नये लेखकों के लिए गुंजाइश रहती है। हिन्दू-इतिहास में रामायण और महाभारत की कथाएँ ऐसी ही घटनाएँ हैं। मुसलमानों के इतिहास में कर्बला के संग्राम को भी वही स्थान प्राप्त है। उर्दू और फ़ारसी के साहित्य में इस संग्राम पर दफ्तर-के-दफ्तर भरे पड़े हैं, यहाँ तक कि जैसे हिन्दी-साहित्य के कितने ही कवियों ने राम और कृष्ण की महिमा गाने में अपना जीवन व्यतीत कर दिया, उसी तरह उर्दू और फ़ारसी में कितने ही कवियों ने केवल मर्सिया कहने में ही जीवन समाप्त कर दिया। किन्तु, जहाँ तक हमारा ज्ञान है, अब तक, किसी भाषा में, इस विषय पर नाटक की रचना शायद नहीं हुई। हमने हिन्दी में यह ड्रामा लिखने का साहस किया है।

कितने खेद और लज्जा की बात है कि कई शताब्दियों से मुसलमानों के साथ रहने पर भी अभी तक हम लोग प्रायः उनके इतिहास से अनभिज्ञ हैं। हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का एक कारण यह भी है कि हम हिन्दुओं को मुसलिम महापुरुषों के सच्चरित्रों का ज्ञान नहीं। जहाँ किसी मुसलमान बादशाह का ज़िक्र आया कि हमारे सामने औरंगज़ेब की तसवीर खिंच गयी। लेकिन अच्छे और बुरे चरित्र सभी समाजों में सदैव होते आये हैं, और होते रहेंगे। मुसलमानों में भी बड़े-बड़े दानी, बड़े-बड़े धर्मात्मा और बड़े-बड़े न्यायप्रिय बादशाह हुए हैं। किसी जाति के महान् पुरुषों के चरित्रों का अध्ययन उस जाति के साथ आत्मीयता के सम्बन्ध का प्रवर्तक होता है, इसमें सन्देह नहीं।

नाटक दृश्य होते हैं, और पाठ्य भी। पर, हमारा विचार है, दोनों प्रकार के नाटकों में कोई रेखा नहीं खींची जा सकती। अच्छे अभिनेताओं द्वारा

खेले जाने पर प्रत्येक नाटक मनोरंजक और उपदेशप्रद हो सकता है। नाटक का मुख्य अंग उसकी भाव-प्रधानता है, और सभी बातें गौण हैं। जनता की वर्तमान रुचि से किसी नाटक के अच्छे या बुरे होने का निश्चय करना न्याय-संगत नहीं। नौटंकी और धनुष-यज्ञ देखने के लिए लाखों की संख्या में जनता टूट पड़ती है, पर उसकी यह सुरुचि आदर्श नहीं कही जा सकती। हमने यह नाटक खेले जाने के लिए नहीं लिखा, मगर हमारा विश्वास है कि यदि कोई इसे खेलना चाहें, तो बहुत थोड़ी काट-छाँट से खेल भी सकते हैं।

यह ऐतिहासिक और धार्मिक नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में कल्पना के लिए बहुत संकुचित क्षेत्र रहता है। घटना जितनी ही प्रसिद्ध होती है, उतनी ही कल्पना-क्षेत्र की संकीर्णता भी बढ़ जाती है। यह घटना इतनी प्रसिद्ध है कि इसकी एक-एक बात, इसके चरित्रों का एक-एक शब्द हज़ारों बार लिखा जा चुका है। आप उस वृत्तान्त से जौ-भर आगे-पीछे नहीं जा सकते। हमने ऐतिहासिक आधार को कहीं नहीं छोड़ा है। हाँ, जहाँ किसी रस की पूर्ति के लिए कल्पना की आवश्यकता पड़ी है, वहाँ अप्रसिद्ध और गौण चरित्रों द्वारा उसे व्यक्त किया है। पाठक इसमें हिन्दुओं को प्रवेश करते देखकर चकित होंगे, परन्तु वह हमारी कल्पना नहीं है, ऐतिहासिक घटना है। आर्य लोग वहाँ कैसे और कब पहुँचे, यह विवाद-ग्रस्त है। कुछ लोगों का ख़याल है कि महाभारत के बाद अश्वत्थामा के वंशधर वहाँ जा बसे थे। कुछ लोगों का यह भी मत है कि ये लोग उन हिन्दुओं की सन्तान थे, जिन्हें सिकन्दर यहाँ से कैद कर ले गया। कुछ हो, इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं कि कुछ हिन्दू भी हुसैन के साथ कर्बला के संग्राम में सम्मिलित होकर वीर-गति को प्राप्त हुए थे।

इस नाटक में स्त्रियों के अभिनय बहुत कम मिलेंगे। महाशय डी० एल० राय ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में स्त्री-चरित्र की कमी को कल्पना से पूरा किया है। उनके नाटक पूर्ण रूप से ऐतिहासिक हैं। कर्बला ऐतिहासिक ही नहीं, धार्मिक भी है, इसलिए इसमें किसी स्त्री-चरित्र की सृष्टि नहीं की जा

सकी। भय था कि ऐसा करने से संभवतः हमारे मुसलमान-बन्धुओं को आपत्ति होगी।

यह नाटक दुःखांत (Tragedy) है। दुःखान्त नाटकों के लिए आवश्यक है कि उनके नायक कोई वीरात्मा हों, और उनका शोकजनक अन्त उनके धर्म और न्याय-पूर्ण विचारों और सिद्धान्तों के फल-स्वरूप हो। नायक की दारुण कथा दुःखान्त नाटकों के लिए पर्याप्त नहीं है। उसकी विपत्ति पर हम शोक नहीं करते, वरन् उसकी नैतिक विजय पर आनन्दित होते हैं। क्योंकि वहाँ नायक की प्रत्यक्ष हार वस्तुतः उसकी विजय होती है। दुःखान्त नाटकों में शोक और हर्ष के भावों का विचित्र रूप से समावेश हो जाता है। हम नायक को प्राण त्यागते देखकर आँसू बहाते हैं, किन्तु वह आँसू करुणा के नहीं, विजय के होते हैं। दुःखान्त नाटक आत्म-बलिदान की कथा है, और आत्म-बलिदान केवल करुणा की वस्तु नहीं, गौरव की भी वस्तु है। हाँ, नायक का वीरात्मा होना परम आवश्यक है, जिससे हमें उसकी अविचल सिद्धान्त-प्रियता और अदम्य सत्साहस पर गौरव और अभिमान हो सके।

नाटक में संगीत का अंश होना आवश्यक है, किन्तु इतना नहीं, जो अस्वाभाविक हो जाय। हम महान् विपत्ति और महान् सुख, दोनों ही दशाओं में रोते और गाते हैं। हमने ऐसे ही अवसरों पर गान की आयोजना की है। मुसलिम पात्रों के मुख से ध्रुपद और विहाग कुछ बेजोड़-सा मालूम होता है, इसलिए हमने उर्दू-कवियों की ग़ज़लें दे दी हैं। कहीं-कहीं अनीस के मर्सियों में से दो-चार बंद उद्धृत कर लिये हैं। इसके लिए हम उन महानुभावों के ऋणी हैं। कविवर श्रीधरजी पाठक की एक भारत-स्तुति भी ली गयी है। अतएव हम उन्हें भी धन्यवाद देते हैं।

इस नाटक की भाषा के विषय में भी कुछ निवेदन करना आवश्यक है। इसकी भाषा हिन्दी-साहित्य की भाषा नहीं है। मुसलमान-पात्रों से शुद्ध हिन्दी-भाषा का प्रयोग कराना कुछ स्वाभाविक न होता। इसलिए हमने वही भाषा रखी है, जो साधारणतः सभ्य-समाज में प्रयोग की जाती है, जिसे हिन्दू और मुसलमान, दोनो ही बोलते और समझते हैं।

प्रेमचन्द

नाटक का कथानक

(१)

हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के बाद कुछ ऐसी परिस्थिति हुई कि खिलाफ़त का पद उनके चचेरे भाई और दामाद हज़रत अली को न मिलकर उमर फ़ारूक़ को मिला। हज़रत मुहम्मद ने स्वयं ही व्यवस्था की थी कि ख़लीफ़ा सर्व-सम्मति से चुना जाया करे, और सर्व-सम्मति से उमर फ़ारूक़ चुने गये। उनके बाद अबूबकर चुने गये। अबूबकर के बाद यह पद उसमान को मिला। उसमान अपने कुटुम्बवालों के साथ पक्षपात करते थे, और उच्च राजकीय पद उन्हीं को दे रखे थे। उनकी इस अनीति से बिगड़कर कुछ लोगों ने उनकी हत्या कर डाली। उसमान के सम्बन्धियों को सन्देह हुआ कि यह हत्या हज़रत अली की ही प्रेरणा से हुई है। अतएव उसमान के बाद अली ख़लीफ़ा तो हुए, किन्तु उसमान के एक आत्मीय सम्बन्धी ने, जिसका नाम मुआबिया था, और जो शाम-प्रान्त का सूबेदार था, अली के हाथों पर बैयत न की; अर्थात् अली को ख़लीफ़ा नहीं स्वीकार किया। अली ने मुआबिया को दंड देने के लिए सेना नियुक्त की। लड़ाइयाँ हुईं, किन्तु पाँच वर्ष की लगातार लड़ाई के बाद अन्त को मुआबिया की ही विजय हुई। हज़रत अली अपने प्रतिद्वन्द्वी के समान कूट-नीतिज्ञ न थे। वह अभी मुआबिया को दबाने के लिए एक नयी सेना संगठित करने की चिन्ता में ही थे कि एक हत्यारे ने उनका वध कर डाला।

मुआबिया ने घोषणा की थी कि अपने बाद मैं अपने पुत्र को ख़लीफ़ा नामज़द न करूँगा, वरन् हज़रत अली के ज्येष्ठ पुत्र हसन को ख़लीफ़ा बनाऊँगा। किन्तु जब उसका अन्त-काल निकट आया, तो उसने अपने पुत्र यज़ीद को ख़लीफ़ा बना दिया। हसन इसके पहले ही

मर चुके थे। उनके छोटे भाई हज़रत हुसैन ख़िलाफ़त के उम्मेदवार थे, किन्तु मुआबिया ने यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी बनाकर हुसैन को निराश कर दिया।

ख़लीफ़ा हो जाने के बाद यज़ीद को सबसे अधिक भय हुसैन का था, क्योंकि वह हज़रत अली के बेटे और हज़रत मुहम्मद के नवासे (दौहित्र) थे। उनकी माता का नाम फ़ातिमा ज़ोहरा था, जो मुस्लिम विदुषियों में सबसे श्रेष्ठ थीं। हुसैन बड़े विद्वान्, सच्चरित्र, शान्त-प्रकृति, नम्र, सहिष्णु, ज्ञानी, उदार और धार्मिक पुरुष थे। वह वीर थे, ऐसे वीर कि अरब में कोई उनकी समता का न था। किन्तु वह राजनीतिक छल-प्रपंच और कुत्सित व्यवहारों से अपरिचित थे। यज़ीद इन सब बातों में निपुण था। उसने अपने पिता अमीर मुआबिया से कूटनीति की शिक्षा पायी थी। उसके गोत्र (क़बीले) के सब लोग कूट-नीति के पंडित थे। धर्म को वे केवल स्वार्थ का एक साधन समझते थे। भोग-विलास और ऐश्वर्य का उनको चसका पड़ चुका था। ऐसे भोग-लिप्सु प्राणियों के सामने सत्यव्रती हुसैन की भला कब चल सकती थी, और चली भी नहीं।

यज़ीद ने मदीने के सूबेदार को लिखा कि तुम हुसैन से मेरे नाम पर बैयत, अर्थात् उनसे मेरे ख़लीफ़ा होने की शपथ लो। मतलब यह कि वह गुप्त रीति से उन्हें क़त्ल करने का षड्यंत्र रचने लगा। हुसैन ने बैयत लेने से इनकार किया। यज़ीद ने समझ लिया कि हुसैन बग़ावत करना चाहते हैं, अतएव वह उनसे लड़ने के लिए शक्ति-संचय करने लगा। कूफ़ा-प्रान्त के लोगों को हुसैन से प्रेम था। वे उन्हीं को अपना ख़लीफ़ा बनाने के पक्ष में थे। यज़ीद को जब यह बत मालूम हुई, तो उसने कूफ़ा के नेताओं को धमकाना और नाना प्रकार के कष्ट देना आरम्भ किया। कूफ़ा-निवासियों ने हुसैन के पास, जो उस समय मदीने से मक्के चले गये थे, सँदेसा भेजा कि आप आकर हमें इस संकट से मुक्त कीजिए। हुसैन ने इस सँदेसे का कुछ उत्तर न दिया, क्योंकि वह राज्य के लिए ख़ून बहाना नहीं चाहते

थे। इधर कूफ़ा में हुसैन के प्रेमियों की संख्या बढ़ने लगी। लोग उनके नाम पर बैयत करने लगे। थोड़े ही दिनों में इन लोगों की संख्या २० हज़ार तक पहुँच गयी। इस बीच में इन्होंने हुसैन की सेवा में दो सँदेसे और भेजे, किन्तु हुसैन ने उनका भी कुछ उत्तर नहीं दिया। अन्त को कूफ़ावालों ने एक अत्यन्त आग्रह-पूर्ण पत्र लिखा, जिसमें हुसैन को हज़रत मुहम्मद और दीन-इस्लाम के निहोरे अपनी सहायता करने को बुलाया। उन्होंने बहुत अनुनय के बाद लिखा था—"अगर आप न आये, तो कल क़यामत के दिन अल्लाहताला के हुज़ूर में हम आप पर दावा करेंगे कि या इलाही, हुसैन ने हमारे ऊपर अत्याचार किया था, क्योंकि हमारे ऊपर अत्याचार होते देखकर यह ख़ामोश बैठे रहे। और, सब लोग फ़र्याद करेंगे कि ऐ ख़ुदा, हुसैन से हमारा बदला दिला दे। उस समय आप क्या जवाब देंगे, और ख़ुदा को क्या मुँह दिखायेंगे?"

धर्म-प्राण हुसैन ने जब यह पत्र पढ़ा, तो उनके रोएँ खड़े हो आये, और उनका हृदय जल के समान तरल हो गया। उनके गालों पर धर्मानुराग के आँसू बहने लगे। उन्होंने तत्काल उन लोगों के नाम एक आश्वासन-पत्र लिखा—"मैं शीघ्र ही तुम्हारी सहायता को आऊँगा।" और अपने चचेरे भाई मुस्लिम के हाथ उन्होंने यह पत्र कूफ़ावालों के पास भेज दिया।

मुस्लिम मार्ग की कठिनाइयाँ झेलते हुए कूफ़ा पहुँचे। उस समय कूफ़ा का सूबेदार एक शान्त पुरुष था। उसने लोगों को समझाया—"नगर में कोई उपद्रव न होने पाये। मैं उस समय तक किसी से न बोलूँगा, जब तक कोई मुझे क्लेश न पहुँचायेगा।"

जिस समय यज़ीद को मुस्लिम के कूफ़ा पहुँचने का समाचार मिला, तो उसने एक दूसरे सूबेदार को कूफ़ा में नियुक्त किया, जिसका नाम 'ओबैद बिन-ज़ियाद' था। यह बड़ा निठुर और कुटिल प्रकृति का मनुष्य था। इसने आते-ही-आते कूफ़ा में एक सभा की, जिसमें घोषणा की गयी कि "जो लोग यज़ीद के नाम पर बैयत लेंगे, उन पर ख़लीफ़ा

की कृपा-दृष्टि होगी; परन्तु जो लोग हुसैन के नाम पर बैयत लेंगे, उनके साथ किसी तरह की रियायत न की जायगी। हम उसे सूली पर चढ़ा देंगे, और उसकी जागीर या वृत्ति ज़ब्त कर लेंगे।" इस घोषणा ने यथेष्ट प्रभाव डाला। कूफ़ावालों के हृदय काँप उठे। ज़ियाद को वे भली-भाँति जानते थे। उस दिन जब मुस्लिम भी मस्जिद में नमाज़ पढ़ाने के लिए खड़े हुए, तो किसी ने उनका साथ न दिया। जिन लोगों ने पहले हुसैन की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा था, उनका कहीं पता न था। सभी के साहस छूट गये थे। मुस्लिम ने एक बार कुछ लोगों की सहायता से ज़ियाद को घेर लिया। किन्तु ज़ियाद ने अपने एक विश्वासपात्र सेवक के मकान की छत पर चढ़कर लोगों को यह सँदेसा दिया कि "जो लोग यज़ीद की मदद करेंगे, उन्हें जागीर दी जायगी; और जो लोग बग़ावत करेंगे, उन्हें ऐसा दंड दिया जायगा कि कोई उनके नाम को रोनेवाला भी न रहेगा।" नेतागण यह धमकी सुनकर दहल उठे, और मुस्लिम को छोड़-छोड़कर दस-दस, बीस-बीस आदमी बिदा होने लगे। यहाँ तक कि मुस्लिम वहाँ अकेला रह गया। विवश हो उसने एक वृद्धा के घर में शरण लेकर अपनी जान बचायी। दूसरे दिन जब ओबैदुल्लाह को मालूम हुआ कि मुस्लिम अमुक वृद्धा के घर में छिपा है, तो उसने ३०० सिपाहियों को उसे गिरफ़्तार करने के लिये भेजा। असहाय मुस्लिम ने तलवार खींच ली, और शत्रुओं पर टूट पड़े। पर वह अकेले कर ही क्या सकते थे। थोड़ी देर में ज़ख्मी होकर गिर पड़े। उस समय सूबेदार से उनकी जो बातें हुईं, उनसे विदित होता है कि वह कैसे वीर पुरुष थे। गवर्नर उनकी भय-शून्य बातों से और भी गरम हो गया। उसने उन्हें तुरन्त क़त्ल करा दिया।

(२)

हुसैन, अपने पूज्य पिता की भाँति, साधुओं का-सा सरल जीवन व्यतीत करने के लिए बनाये गये थे। कोई चतुर मनुष्य होता, तो उस समय दुर्गम पहाड़ियों में जा छिपता, और यमन के प्राकृतिक

दुर्गों में बैठकर चारों ओर से सेना एकत्र करता। देश में उनका जितना मान था, और लोगों को उन पर जितनी भक्ति थी, उसके देखते २०-२५ हज़ार सेना एकत्र कर लेना उनके लिए कठिन न था। किन्तु वह अपने को पहले ही से हारा हुआ समझने लगे। यह सोच कर वह कहीं भागते न थे। उन्हें भय था कि शत्रु मुझे अवश्य खोज लेगा। वह सेना जमा करने का भी प्रयत्न न करते थे। यहाँ तक कि जो लोग उनके साथ थे, उन्हें भी अपने पास से चले जाने की सलाह देते थे। इतना ही नहीं, उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं ख़लीफ़ा बनना चाहता हूँ। वह सदैव यही कहते रहे कि मुझे लौट जाने दो, मैं किसी से लड़ाई नहीं करना चाहता। उनकी आत्मा इतनी उच्च थी कि वह सांसारिक राज्य-भोग के लिए संग्राम-क्षेत्र में उतरकर उसे कलुषित नहीं करना चाहते थे। उनके जीवन का उद्देश्य आत्मशुद्धि और धार्मिक जीवन था। वह कूफ़ा में जाने को इसलिए सहमत नहीं हुए थे कि वहाँ अपनी खिलाफ़त स्थापित करें, बल्कि इसलिए कि वह अपने सहधर्मियों की विपत्ति को देख न सकते थे। वह कूफ़ा जाते समय अपने सब सम्बन्धियों से स्पष्ट शब्दों में कह गये थे कि मैं शहीद होने जा रहा हूँ। यहाँ तक कि वह एक स्वप्न का भी उल्लेख करते थे, जिसमें उनके नाना ने उनको स्वर्ग आने का निमंत्रण दिया था, और वह उनके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनकी टेक केवल यह थी कि मैं यज़ीद के नाम पर बैयत न करूँगा। इसका कारण यही था कि यज़ीद मद्यप, व्यभिचारी और इसलाम-धर्म के नियमों का पालन न करनेवाला था। यदि यज़ीद ने उनकी हत्या कराने की चेष्टा न की होती, तो वह शान्ति-पूर्वक मदीने में जीवन-भर पड़े रहते। पर समस्या यह थी कि उनके जीवित रहते हुए यज़ीद को अपना स्थान सुरक्षित नहीं मालूम हो सकता था। उसके निष्कंटक राज्य-भोग के लिए हुसैन का उसके मार्ग से सदा के लिए हट जाना परम आवश्यक था। और इस हेतु कि खिलाफ़त एक धर्म-प्रधान संस्था थी, अतः यज़ीद को हुसैन के रणक्षेत्र में आने का उतना भय न था, जितना उनके शान्ति-सेवन

का। क्योंकि शान्ति-सेवन से जनता पर उनका प्रभाव बढ़ता जाता था। इसी लिए यज़ीद ने यह भी कहा था कि हुसैन का केवल उसके नाम पर बैयत लेना ही पर्याप्त नहीं है, उन्हें उसके दरबार में भी आना चाहिए। यज़ीद को उनकी बैयत पर विश्वास न था। वह उन्हें किसी भाँति अपने दरबार में बुलाकर उनकी जीवन-लीला को समाप्त कर देना चाहता था। इसलिए यह धारणा कि हुसैन अपनी ख़िलाफ़त क़ायम करने के लिए कूफ़ा गये, निर्मूल सिद्ध होती है। वह कूफ़ा इस लिए गये कि अत्याचार-पीड़ित कूफ़ा-निवासियों की सहायता करें। उन्हें प्राण-रक्षा के लिए कोई जगह दिखाई न देती थी। यदि वह ख़िलाफ़त के उद्देश्य से कूफ़ा जाते, तो अपने कुटुम्ब के केवल ७२ प्राणियों के साथ न जाते, जिनमें बाल-वृद्ध सभी थे। कूफ़ावालों पर कितना ही विश्वास होने पर भी वह अपने साथ अधिक मनुष्यों को लाने का प्रयत्न करते। इसके सिवा उन्हें यह बात पहले से ज्ञात थी कि कूफ़ा के लोग अपने वचनों पर दृढ़ रहनेवाले नहीं हैं। उन्हें कई बार इसका प्रमाण भी मिल चुका था कि थोड़े-से प्रलोभन पर भी वे अपने वचनों से विमुख हो जाते हैं। हुसैन के इष्ट-मित्रों ने उनका ध्यान कूफ़ावालों की इस दुर्बलता की ओर खींचा भी, पर हुसैन ने उनकी सलाह न मानी। वह शहादत का प्याला पीने के लिए, अपने को धर्म की वेदी पर बलि देने के लिए, विकल हो रहे थे। इससे हितैषियों के मना करने पर भी वह कूफ़ा चले गये। दैव-संयोग से यह तिथि वही थी, जिस दिन कूफ़ा में मुस्लिम शहीद हुए थे। १८ दिन की कठिन यात्रा के बाद वह 'नाहनेवा' के समीप, कर्बला के मैदान में पहुँचे, जो फ़रात नदी के किनारे था। इस मैदान में न कोई बस्ती थी, न कोई वृक्ष। कूफ़ा के गवर्नर की आज्ञा से वह इसी निर्जन और निर्जल स्थान में डेरे डालने को विवश किये गये।

शत्रुओं की सेना हुसैन के पीछे-पीछे मक्के से ही आ रही थी। और सेनाएँ भी चारों ओर फैला दी गयी थीं कि हुसैन किसी गुप्त मार्ग से कूफ़ा न पहुँच जायँ। कर्बला पहुँचने के एक दिन पहले उन्हें हुर की

सेना मिली। हुसैन ने हुर को बुलाकर पूछा—"तुम मेरे पक्ष में हो, या विपक्ष में?" हुर ने कहा—"मैं आपसे लड़ने के लिए भेजा गया हूँ।" जब तीसरा पहर हुआ, तो हुसैन नमाज़ पढ़ने के लिए खड़े हुए, और उन्होंने हुर से पूछा—"तू क्या मेरे पीछे खड़ा होकर नमाज़ पढ़ेगा?" हुर ने हुसैन के पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ना स्वीकार किया। हुसैन ने अपने साथियों के साथ हुर की सेना को भी नमाज़ पढ़ाई। हुर ने यज़ीद की बैयत ली थी। पर वह सद्विचारशील पुरुष था। हज़रत मोहम्मद के नवासे से लड़ने में उसे संकोच होता था। वह बड़े धर्म-संकट में पड़ा। वह सच्चे हृदय से चाहता था कि हुसैन मक्का लौट जायँ। प्रकट रूप से तो हुसैन को ओबैदुल्लाह के पास ले चलने की धमकी देता था; पर हृदय से उन्हें अपने हाथों कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता था। उसने खुले हुए शब्दों में हुसैन से कहा—"यदि मुझसे कोई ऐसा अनुचित कार्य हो गया, जिससे आपको कोई कष्ट पहुँचा, तो मेरे लोक और परलोक, दोनो ही बिगड़ जायँगे। और, यदि मैं आपको ओबैदुल्लाह के पास न ले जाऊँ, तो कूफ़ा में नहीं घुस सकता। हाँ, संसार विस्तृत है, क़यामत के दिन आपके नाना की कृपा-दृष्टि से वंचित होने की अपेक्षा यही कहीं अच्छा है कि किसी दूसरी ओर निकल जाऊँ। आप मुख्य मार्ग को छोड़कर किसी अज्ञात मार्ग से कहीं और चले जायँ। मैं कूफ़ा के गवर्नर (अर्थात् 'आमिल') को लिख दूँगा कि हुसैन से मेरी भेंट नहीं हुई, वह किसी दूसरी ओर चले गये। मैं आपको क़सम दिलाता हूँ कि अपने ऊपर दया कीजिए, और कूफ़ा न जाइए।" पर हुसैन ने कहा—"तुम मुझे मौत से क्या डराते हो? मैं तो शहीद होने के लिए चला ही हूँ।" उस समय यदि हुसैन हुर की सेना पर आक्रमण करते, तो संभव था, उसे परास्त कर देते, पर अपने इष्ट-मित्रों के अनुरोध करने पर भी उन्होंने यही कहा—"हम लड़ाई के मैदान में अग्रसर न होंगे, यह हमारी नीति के विरुद्ध है।" इससे भी यही बात सिद्ध होती है कि हुसैन को अब अपनी आत्म-रक्षा का कोई उपाय न सूझता था। उनमें साधुओं का-सा

सन्तोष था, पर योद्धाओं का-सा धैर्य न था, जो कठिन-से-कठिन समय पर भी कष्ट-निवारण का उपाय निकाल लेते हैं। उनमें महात्मा गांधी का-सा आत्मसमर्पण था, किन्तु शिवाजी की दूरदर्शिता न था।

(३)

इधर हुसैन और उनके आत्मीय तथा सहायकगण तो अपने-अपने ख़ेमे गाड़ रहे थे, और उधर ओबैदुल्लाह—कूफ़ा का गवर्नर—लड़ाई की तैयारी कर रहा था। उसने 'उमर-बिन-साद' नाम के एक योद्धा को बुलाकर हुसैन की हत्या करने के लिए नियुक्त किया, और इसके बदले में 'रे' सूबे के आमिल का उच्च पद देने को कहा। उमर-बिन-साद विवेकहीन प्राणी न था। वह भली-भाँति जानता था कि हुसैन की हत्या करने से मेरे मुख पर ऐसी कालिमा लग जायगी, जो कभी न छूटेगी, किन्तु रे-सूबे का उच्च पद उसे असमंजस में डाले हुए था। उसके सम्बन्धियों ने समझाया—"तुम हुसैन की हत्या करने का बीड़ा न उठाओ, इसका परिणाम अच्छा न होगा।" उमर ने जाकर ओबैदुल्लाह से कहा—"मेरे सिर पर हुसैन के वध का भार न रखिए।" परन्तु 'रे' की गवर्नरी छोड़ने को वह तैयार न हो सका। अतएव जब ओबैदुल्लाह ने साफ़-साफ़ कह दिया कि 'रे' का उच्च पद हुसैन की हत्या किये बिना नहीं मिल सकता। यदि तुम्हें यह सौदा महँगा जँचता हो, तो कोई जबरदस्ती नहीं है। किसी और को यह पद दिया जायगा।" तो उमर का आसन डोल गया। वह इस निषिद्ध क़ार्य के लिए तैयार हो गया। उसने अपनी आत्मा को ऐश्वर्य-लालसा के हाथ बेच दिया। ओबैदुल्लाह ने प्रसन्न होकर उसे बहुत कुछ इनाम-इकराम दिया, और चार हज़ार सैनिक उसके साथ नियुक्त कर दिये। उमर-बिन-साद की आत्मा अब भी उसे क्षुब्ध करती रही। वह सारी रात पड़ा अपनी अवस्था या दुरवस्था पर विचार करता रहा। वह जिस विचार से देखता, उसी से अपना यह कर्म घृणित जान पड़ता था। प्रातःकाल वह फिर कूफ़ा के गवर्नर के पास गया। उसने फिर अपनी लाचारी दिखाई। परन्तु 'रे' की

सूबेदारी ने उस पर फिर विजय पायी। जब वह चलने लगा, तो ओबैदुल्लाह ने उसे कड़ी ताक़ीद कर दी कि हुसैन और उनके साथी फ़रात नदी के समीप किसी तरह न आने पायें, और एक घूँट पानी भी न पी सकें। हुर के १००० सैनिक भी उमर के साथ आ मिले। इस प्रकार उमर के साथ पाँच हज़ार सैनिक हो गये। उमर अब भी यही चाहता था कि हुसैन के साथ लड़ना न पड़े। उसने एक दूत उनके पास भेजकर पूछा—"आप अब क्या निश्चय करते हैं?" हुसैन ने कहा—"कूफ़ावालों ने मुझसे दग़ा की है। उन्होंने अपने कष्ट की कथा कहकर मुझे यहाँ बुलाया, और अब वह मेरे शत्रु हो गये हैं। ऐसी दशा में मैं मक्के लौट जाना चाहता हूँ, यदि मुझे ज़बरदस्ती रोका न जाय।" उमर मन में प्रसन्न हुआ कि शायद अब कलंक से बच जाऊँ। उसने यह समाचार तुरन्त ओबैदुल्लाह को लिख भेजा। किन्तु वहाँ तो हुसैन की हत्या करने का निश्चय हो चुका था। उसने उमर को उत्तर दिया—"हुसैन से बैयत लो, और यदि वह इस पर राज़ी न हों, तो मेरे पास लाओ।"

शत्रुओं को, इतनी सेना जमा कर लेने पर भी, सहसा हुसैन पर आक्रमण करते डर लगता था कि कहीं जनता में उपद्रव न मच जाय। इसलिए इधर तो उमर-बिन-साद कर्बला को चला, और उधर ओबैदुल्लाह ने कूफ़ा की जामा मस्जिद में लोगों को जमा किया। उसने एक व्याख्यान देकर उन्हें समझाया—"यज़ीद के ख़ानदान ने तुम लोगों पर कितना न्याय-युक्त शासन किया है, और वे तुम्हारे साथ कितनी उदारता से पेश आये हैं! यज़ीद ने अपने सुशासन से देश को कितना समृद्धि-पूर्ण बना दिया है! रास्ते में अब चोरों और लुटेरों का कोई खटका नहीं है। न्यायालयों में सच्चा, निष्पक्ष न्याय होता है। उसने कर्मचारियों के वेतन बढ़ा दिये हैं। राजभक्तों की जागीरें बढ़ा दी गयी हैं। विद्रोहियों के कोट तहस-नहस कर दिये हैं, जिसमें वे तुम्हारी शान्ति में बाधक न हो सकें। तुम्हारे जीवन-निर्वाह के लिए उसने चिरस्थायी सुविधाएँ दे रखी

हैं। ये सब उसकी दयाशीलता और उदारता के प्रमाण हैं। यजीद ने मेरे नाम फ़रमान भेजा है कि मैं तुम्हारे ऊपर विशेष कृपा-दृष्टि करूं, और जिसे एक दीनार वृत्ति मिलती है, उसकी वृत्ति सौ दीनार कर दूँ। इसी तरह वेतन में भी वृद्धि कर दूं, और तुम्हें उसके शत्रु हुसैन से लड़ने के लिये भेजूँ। यदि तुम अपनी उन्नति और वृद्धि चाहते हो, तो तुरन्त तैयार हो जाओ। विलम्ब करने से काम बिगड़ जायगा।"

यह व्याख्यान सुनते ही स्वार्थ के मतवाले नेता लोग, धर्माधर्म के विचार को तिलांजलि देकर, समर भूमि में चलने की तैयारी करने लगे। 'शिमर' ने चार हज़ार, सवार जमा किये, और वह बिन-साद से जा मिला। रिकाब ने दो हज़ार, हसीन ने चार हज़ार, मसायर ने तीन हज़ार और अन्य एक सरदार ने दो हज़ार योद्धा जमा किये। सब-के-सब दल-बल साजकर कर्बला को चले। उमर-बिन-साद के पास अब पूरे २२ सहस्र सैनिक हो गये। कैसी दिल्लगी है कि ७२ आदमियों को परास्त करने के लिए इतनी बड़ी सेना खड़ी हो जाय! उन बहत्तर आदमियों में भी कितने ही बालक और कितने ही वृद्ध थे। फिर प्यास ने सभी को अधमरा कर रखा था।

किन्तु शत्रुओं ने अवस्था को भली-भाँति समझकर यह तैयारी की थी। हुसैन की शक्ति न्याय और सत्य की शक्ति थी। यह यज़ीद और हुसैन का संग्राम न था। यह इस्लाम धार्मिक जन-सत्ता का पूर्व कालिक इस्लाम की राज-सत्ता से संघर्ष था। हुसैन उन सब व्यवस्थाओं के पक्ष में थे, जिनका हज़रत मोहम्मद द्वारा प्रादुर्भाव हुआ था; मगर यज़ीद उन सभी बातों का प्रतिपक्षी था। दैवयोग से इस समय अधर्म ने धर्म को पैरों-तले दबा लिया था; पर यह अवस्था एक क्षण में परिवर्तित हो सकती थी, और इसके लक्षण भी प्रकट होने लगे थे। बहुतेरे सैनिक जाने को तो चले जाते थे, परन्तु अधर्म के विचार से सेना से भाग आते थे। जब ओबैदुल्लाह को यह बात मालूम हुई, तो उसने कई निरीक्षक नियुक्त किये। उनका काम यही था कि

भागनेवालों का पता लगायें। कई सिपाही इस प्रकार जान से मार डाले गये। यह चाल ठीक पड़ी। भगोड़े भयभीत होकर फिर सेना में जा मिले।

इस संग्राम में सबसे घोर निर्दयता जो शत्रुओं ने हुसैन के साथ की वह पानी का बन्द कर देना था। ओबैदुल्लाह ने उमर को कड़ी ताक़ीद कर दी थी कि हुसैन के आदमी नदी के समीप न जाने पायें। यहाँ तक कि वे कुएँ खोदकर भी पानी न निकालने पायें। एक सेना फ़रात-नदी की रक्षा करने के लिए भेज दी गयी। उसने हुसैन की सेना और नदी के बीच में डेरा जमाया। नदी की ओर जाने का कोई रास्ता न रहा। थोड़े नहीं, छः हज़ार सिपाही नदी का पहरा दे रहे थे। हुसैन ने यह ढंग देखा तो स्वयं इन सिपाहियों के सामने गये, और उन पर प्रभाव डालने की कोशिश की। पर उन पर कुछ असर न हुआ। लाचार होकर यह लौट आये। उस समय प्यास के मारे इनका कंठ सूखा जाता था, स्त्रियाँ और बच्चे बिलख रहे थे; किन्तु उन पाषाण-हृदय पिशाचों को इन पर दया न आती थी।

शहीद होने के तीन दिन पहले हुसैन और अन्य प्राणी प्यास के मारे बेहोश हो गये। तब हुसैन ने अपने प्रिय बन्धु अब्बास को बुलाकर, उन्हें बीस सवार तथा तीस पैदल देकर, उनसे कहा—"अपने साथ बीस मश्कें ले जाओ, और पानी से भर लाओ।" अब्बास ने सहर्ष इस आदेश को स्वीकार किया। वह नदी के किनारे पहुँचे। पहरेदार ने पुकारा—"कौन है?" इधर उस पहरेदार का एक भाई भी था। वह बोला—"मैं हूँ, तेरे चाचा का बेटा, पानी पीने आया हूँ।" पहरेदार ने कहा—"पी ले।" भाई ने उत्तर दिया—"कैसे पी लूँ? जब हुसैन और उनके बाल-बच्चे प्यासों मर रहे हैं, तो मैं किस मुँह से पी लूँ?" पहरेदार ने कहा—"यह तो जानता हूँ, पर करूँ क्या, हुक्म से मजबूर हूँ!" अब्बास के आदमी मश्कें लेकर नदी की ओर गये, और पानी भर लिया। रक्षक-दल ने इनको रोकने की चेष्टा की, पर ये लोग पानी लिये हुए बच निकले।

हुसैन ने फिर अन्तिम बार सन्धि करने का प्रयास किया। उन्होंने उमर-बिन-साद को सँदेसा भेजा कि "आज तुम मुझसे रात को, दोनों सेनाओं के बीच में, मिलना।" उमर निश्चित समय पर आया। हुसेन से उसकी बहुत देर तक एकान्त में बातें हुईं। हुसैन ने सन्धि की तीन शर्तें बतायीं—(१) या तो हम लोगों को मक्के वापस जाने दिया जाय, (२) या सीमा-प्रांत की ओर शान्ति-पूर्वक चले जाने की अनुमति मिले, (३) या मैं यज़ीद के पास भेज दिया जाऊँ। उमर ने ओबैदुल्लाह को यह शुभ सूचना सुनायी, और वह उसे मानने के लिए तैयार भी मालूम होता था; किन्तु शिमर ने ज़ोर दिया कि दुश्मन चंगुल में आ फँसा है, तो उसे निकलने न दो, नहीं तो उसकी शक्ति इतनी बढ़ जायगी कि तुम उसका सामना न कर सकोगे। उमर मजबूर हो गया।

मोहर्रम की ९वीं तारीख़ को, अर्थात् हुसैन की शहादत से एक दिन पहले, कूफ़ा के देहातों से कुछ लोग हुसैन की सहायता करने आये। ओबैदुल्लाह को यह बात मालूम हुई, तो उसने उन आदमियों को भगा दिया, और उमर को लिखा—"अब तुरन्त हुसैन पर आक्रमण करो, नहीं तो इस टाल-मटोल की तुम्हें सज़ा दी जायगी।" फिर क्या था; प्रातःकाल बाइस हज़ार योद्धाओं की सेना हुसैन से लड़ने चली। जुगुनू की चमक बुझाने के लिए मेघ-मंडल का प्रकोप हुआ।

हुसैन को मालूम हुआ, तो वह घबराये। उन्हें यह अन्याय मालूम हुआ कि अपने साथ अपने साथियों के भी प्राणों की आहुति दें। उन्होंने इन लोगों को इसका एक अवसर देना उचित समझा कि वे चाहें, तो अपनी जान बचायें, क्योंकि यज़ीद को उन लोगों से कोई शत्रुता न थी। इसलिए उन्होंने उमर साद को पैग़ाम भेजा कि हमें एक रात के लिए मोहलत दो। उमर ने अन्य सेनानायकों से परामर्श करके मोहलत दे दी। तब हज़रत हुसैन ने अपने समस्त सहायकों तथा परिवारवालों को बुलाकर कहा—"कल ज़रूर यह भूमि मेरे

खून से लाल हो जायगी। मैं तुम लोगों का हृदय से अनुगृहीत हूँ कि तुमने मेरा साथ दिया। मैं अल्लाहताला से दुआ करता हूँ कि वह तुम्हें इस नेकी का सवाब दे। तुमसे अधिक वीरात्मा और पवित्र हृदयवाले मनुष्य संसार में न होंगे। मैं तुम लोगों को सहर्ष आज्ञा देता हूँ कि तुममें से जिसकी जहाँ इच्छा हो, चला जाय, मैं किसी को दबाना नहीं चाहता, न किसी को मजबूर करता हूँ। किन्तु इतना अनुरोध अवश्य करूँगा कि तुममें से प्रत्येक मनुष्य मेरे आत्मीय जनों में से एक-एक को अपने साथ ले ले। संभव है, ख़ुदा तुम्हें तबाही से बचा ले, क्योंकि शत्रु मेरे रुधिर का प्यासा है। मुझे पा जाने पर उसको और किसी की तलाश न होगी।"

यह कहकर उन्होंने इसलिए चिराग़ बुझा दिया कि जानेवालों को संकोचवश वहाँ न रहना पड़े। कितना महान्, पवित्र और निस्स्वार्थ आत्मसमर्पण है!

किन्तु इस वाक्य का समाप्त होना था कि सब लोग चिल्ला उठे—"हम ऐसा नहीं कर सकते। ख़ुदा वह दिन न दिखाये कि हम आपके बाद जीते रहें। हम दूसरों को क्या मुँह दिखायेंगे? उनसे क्या यह कहेंगे कि हम अपने स्वामी, अपने बन्धु तथा अपने इष्ट-मित्र को शत्रुओं के बीच में छोड़ आये, उनके साथ एक भाला भी न चलाया, एक तलवार भी न चलायी! हम आपको अकेला छोड़कर कदापि नहीं जा सकते, हम अपने को, अपने धन को और अपने कुल को आपके चरणों पर न्योछावर कर देंगे।"

इस तरह ९वीं तारीख़, मोहर्रम की रात, आधी कटी। शेष रात्रि लोगों ने ईश्वर-प्रार्थना में काटी। हुसैन ने एक रात की मोहलत इसलिए नहीं ली थी कि समर की रही-सही तैयारी पूरी कर लें। प्रातःकाल तक सब लोग सिजदे करते और अपनी मुक्ति के लिए दुआएँ माँगते रहे।

(४)

प्रभात हुआ—वह प्रभात, जिसकी संसार के इतिहास में उपमा

नहीं है ! किसकी आँखों ने यह अलौकिक दृश्य देखा होगा कि ७२ आदमी बाइस हज़ार योद्धाओं के सम्मुख खड़े हुसैन के पीछे सुबह की नमाज़ इसलिए पढ़ रहे हैं कि अपने इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने का शायद यह अन्तिम सौभाग्य है। वे कैसे रणधीर पुरुष हैं, जो जानते हैं कि एक क्षण में हम सब-के-सब इस आँधी में उड़ जायँगे, लेकिन फिर भी पर्वत की भाँति अचल खड़े हैं; मानो संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उन्हें भयभीत कर सके। किसी के मुख पर चिन्ता नहीं है, कोई निराश और हताश नहीं है। युद्ध के उन्माद ने, अपने सच्चे स्वामी के प्रति अटल विश्वास ने, उनके मुख को तेजस्वी बना दिया है। किसी के हृदय में कोई अभिलाषा नहीं है। अगर कोई अभिलाषा है, तो यही कि कैसे अपने स्वामी की रक्षा करें। इसे सेना कौन कहेगा, जिसके दमन को बाइस हज़ार योद्धा एकत्र किये गये थे। इन बहत्तर प्राणियों में एक भी ऐसा न था, जो सर्वथा लड़ाई के योग्य हो। सब-के सब भूख-प्यास से तड़प रहे थे। कितनों के शरीर पर तो मांस का नाम तक नहीं था, और उन्हें बिना ठोकर खाये दो पग चलना भी कठिन था। इस प्राण-पीड़ा के समय ये लोग उस सेना से लड़ने को तैयार थे, जिसमें अरब-देश के वे चुने हुए जवान थे, जिन पर अरब को गर्व हो सकता था।

उन दिनों समर की दो पद्धतियाँ थीं—एक तो सम्मिलित, जिसमें समस्त सेना मिलकर लड़ती थी, और दूसरी व्यक्तिगत, जिसमें दोनों दलों से एक-एक योद्धा निकलकर लड़ते थे। हुसैन के साथ इतने कम आदमी थे कि सम्मिलित-संग्राम में शायद वह एक क्षण भी न ठहर सकते। अतः उनके लिए दूसरी शैली ही उपयुक्त थी। एक-एक करके योद्धागण समर-क्षेत्र में आने और शहीद होने लगे। लेकिन इसके पहले अन्तिम बार हुसैन ने शत्रुओं से बड़ी ओजस्विनी भाषा में अपनी निर्दोषिता सिद्ध की। उनके अन्तिम शब्द ये थे—

"ख़ुदा की क़सम, मैं पद-दलित और अपमानित होकर तुम्हारी शरण न जाऊँगा, और न मैं दासों की भाँति लाचार होकर यज़ीद की

ख़िलाफ़त को स्वीकार करूँगा। ऐ ख़ुदा के बंदो! मैं ख़ुदा से शान्ति का प्रार्थी हूँ। और, उन प्राणियों से, जिन्हें ख़ुदा पर विश्वास नहीं है, जो ग़रूर में अन्धे हो रहे हैं, पनाह माँगता हूँ।"

शेष कथा आत्म-त्याग, प्राण-समर्पण, विशाल धैर्य और अविचल बीरता की अलौकिक और स्मरणीय गाथा है, जिसके कहने और सुनने से आँखों में आँसू उमड़ आते हैं, जिस पर रोते हुए लोगों को १३ शताब्दियाँ बीत गयीं, और अभी अनन्त शताब्दियाँ रोते बीतेंगी।

हुर का ज़िक्र पहले आ चुका है। यह वही पुरुष है, जो एक हज़ार सिपाहियों के साथ हुसैन के साथ-साथ आया था, और जिसने उन्हें इस निर्जल मरुभूमि पर ठहरने को मजबूर किया था। उसे अभी तक आशा थी कि शायद ओबैदुल्लाह हुसैन के साथ न्याय करे। किन्तु जब उसने देखा कि लड़ाई छिड़ गयी, और अब समझौते की कोई आशा नहीं है, तो अपने कृत्य पर लज्जित होकर वह हुसैन की सेना से आ मिला। जब वह अनिश्चित भाव से अपने मोरचे से निकलकर हुसैन की सेना की ओर चला, तब उसी की सेना के एक सिपाही ने कहा—"तुमको मैंने किसी लड़ाई में इस तरह काँपते हुए चलते नहीं देखा।"

हुर ने उत्तर दिया—"मैं स्वर्ग और नरक की दुविधा में पड़ा हुआ हूँ, और सच यह है कि मैं स्वर्ग के सामने किसी चीज़ की हस्ती नहीं समझता, चाहे कोई मुझे मार डाले।"

यह कहकर उसने घोड़े के एड़ लगाई, और हुसैन के पास आ पहुँचा। हुसैन ने उसका अपराध क्षमा कर दिया, और उसे गले से लगाया। तब हुर ने अपनी सेना को सम्बोधित करके कहा—"तुम लोग हुसैन की शर्तें क्यों नहीं मानते? कितने खेद की बात है कि तुमने स्वयं उन्हें बुलाया, और जब वह तुम्हारी सहायता करने आये, तो तुम उन्हीं को मारने पर उद्यत हो गये। वह अपनी जान लेकर चले भी जाना चाहते हैं, किन्तु तुम लोग उन्हें कहीं जाने भी नहीं देते? सबसे बड़ा अन्याय यह कर रहे हो कि उन्हें नदी से पानी नहीं लेने

देते ! जिस पानी को पशु और पत्ती तक पी सकते हैं, वह भी उन्हें मयस्सर नहीं !"

इस पर शत्रुओं ने उन पर तीरों की वर्षा कर दी, और हुर भी लड़ते हुए वीर-गति को प्राप्त हुए। उन्हीं के साथ उनका पुत्र भी शहीद हुआ।

आश्चर्य होता है और दुःख भी कि इतना सब कुछ हो जाने पर भी हुसैन को इन नर-पिशाचों से कुछ कल्याण की आशा बनी हुई थी। वह जब अवसर पाते थे, तभी अपनी निर्दोषिता प्रकट करते हुए उनसे आत्म-रत्ता की प्रार्थना करते थे। दुराशा में भी यह आशा इसलिए थी कि वह हज़रत मोहम्मद के नवासे थे, और उन्हें आशा होती थी कि शायद अब भी मैं उनके नाम पर इस संकट से मुक्त हो जाऊँ। उनके इन सभी संभाषणों में आत्म-रत्ता की इतनी विशद चिन्ता व्याप्त है, जो दीन चाहे न हो, पर करुण अवश्य है, और एक आत्मदर्शी पुरुष के लिए, जो स्वर्ग में इससे कहीं उत्तम जीवन का स्वप्न देख रहा हो, जिसको अटल विश्वास हो कि स्वर्ग में हमारे लिए अकथनीय सुख उपस्थित है, शोभा नहीं देती।। हुर के शहीद होने के पश्चात् हुसैन ने फिर शत्रु-सेना के सम्मुख खड़े होकर कहा—

"मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि मेरी इन तीन बातों में से एक को मान लो—

"(१) मुझे यज़ीद के पास जाने दो कि उससे बहस करूँ। यदि मुझे निश्चय हो जायगा कि वह सत्य पर है, तो मैं उसकी बैयत कर लूँगा।"

(इस पर किसी पाषाण-हृदय ने कहा—"तुम्हें यज़ीद के पास न जाने देंगे। तुम मधुरभाषी हो, अपनी बातों में उसे फँसा लोगे, और इस समय मुक्त होकर देश में विद्रोह फैला दोगे।")

(२) "जब यह नहीं मानते, तो छोड़ दो कि मैं अपने नाना के रौज़े की मुजाविरी करूँ।"

(इस पर भी किसी ने उपर्युक्त शंका प्रकट की।)

(३) "अगर ये दोनो बातें तुम्हें अस्वीकार हैं, तो मुझे और मेरे साथियों को पानी दो; क्योंकि प्राणी-मात्र को पानी लेने का हक़ है।"

(इसका भी वैसा ही कठोर और निराशाजनक उत्तर मिला।)

इस प्रश्नोत्तर के बाद हुसैन की ओर से बुरीर मैदान में आये। उधर से मुअक्कल निकला। बुरीर ने अपने प्रतिपक्षी को मार लिया, और फिर ख़ुद सेना के हाथों मारे गये। बुरीर के बाद अब्दुल्लाह निकले, और दस-बीस शत्रुओं को मारकर काम आये।

अब्दुल्लाह के बाद उनका पुत्र, जिसका नाम वहब था, मैदान में आया। उसकी वीर-गाथा अत्यन्त मर्मस्पर्शी है, और राजपूताने के अमर वीर-वृत्तान्त की याद दिलाती है। वहब का विवाह हुए अभी केवल सत्रह दिन हुए थे। हाथ की मेहँदी तक न छूटी थी। जब उसके पिता शहीद हो गये, तो उसकी माता उससे बोली—

"मी ख़्वाहम कि मरा अज़ ख़ूने ख़ुद शरबते दिही ताशीरे कि अज़ पिस्ताने मन ख़ुरदई बर तो हलाल गरदद।"

कितने सुन्दर शब्द हैं, जो शायद ही किसी वीर-माता के मुँह से निकले होंगे। भावार्थ यह है—

"मेरी इच्छा है कि तू अपने रक्त का एक घूँट मुझे दे, जिसमें कि यह दूध, जो तूने मेरे स्तन से पिया है, तुझ पर हलाल हो जाय।"

वहब के शहीद हो जाने के बाद क्रम से कई योद्धा निकले, और मारे गये। इस्लामी पुस्तकों में तो उनकी वीरता का बड़ा प्रशंसात्मक वर्णन किया गया है। उनमें से प्रत्येक ने कई-कई सौ शत्रुओं को परास्त किया। ये भक्तों के मानने की बातें हैं। जो लोग प्यास से तड़प रहे थे, भूख से आँखों-तले अँधेरा छा जाता था, उनमें इतनी असाधारण शक्ति और वीरता कहाँ से आ गयी? उमर-बिन-साद की सेना में 'शिमर' बड़ा क्रूर और और दुष्ट आदमी था। इस समर में हुसैन और उनके साथियों के साथ जिस अपमान-मिश्रित निर्दयता का व्यवहार किया गया, उसका दायित्व इसी शिमर के सिर है। यह

धार्मिक संग्राम था, और इतिहास साक्षी है कि धार्मिक संग्राम में पाशविक प्रवृत्तियाँ अत्यन्त प्रचंड रूप धारण कर लेती हैं। पर इस संग्राम में ऐसे प्रतिष्ठित प्राणी के साथ जितनी घोर दुष्टता और दुर्जनता दिखाई गयी, उसकी उपमा संसार के धार्मिक संग्रामों में भी मुश्किल से मिलेगी, हुसैन के जितने साथी शहीद हुए, प्रायः उन सभी की लाशों को पैरों-तले रौंदा गया, उनके सिर काटकर भालों पर उछाले और पैरों से ठुकराये गये। पर कोई भी अपमान और बड़ी-से-बड़ी निर्दयता उनकी उस कीर्ति को नहीं मिटा सकती, जो इस्लाम के इतिहास का आज भी गौरव बढ़ा रही है। इस्लाम के साहित्य और इतिहास में उन्हें वह स्थान प्राप्त है, जो हिन्दू-साहित्य में अंगद, जामवंत, अर्जुन, भीम आदि को प्राप्त है। सूर्यास्त होते-होते सहायकों में कोई भी नहीं बचा।

अब निज कुटुम्ब के योद्धाओं की बारी आयी। इस वंश के पूर्वज हाशिम नाम के एक पुरुष थे। इसी लिए हज़रत मोहम्मद का वंश हाशिमी कहलाता है। इस संग्राम में पहला हाशिमी जो क्षेत्र में आया, वह अब्दुल्लाह था। यह उसी मुस्लिम नाम के वीर का बालक था, जो पहले शहीद हो चुका था। उसके बाद कुटुम्ब के और वीर निकले। जाफ़र इमाम हसन के तीन बेटे, अब्बास के कई भाई, हज़रत अली के कई बेटे और सब बारी-बारी से लड़कर शहीद हुए। हज़रत अब्बास से हुसैन ने कहा—"मैं बहुत प्यासा हूँ।" सन्ध्या हो गयी थी। अब्बास पानी लाने चले, पर रास्ते में घिर गये। वह असाधारण वीर पुरुष थे। हाशिमी लोगों में इतनी वीरता से कोई नहीं लड़ा। एक हाथ कट गया, तो दूसरे हाथ से लड़े। जब वह हाथ भी कट गया, तो ज़मीन पर गिर पड़े। उनके मरने का हुसैन को अत्यन्त शोक हुआ। बोले—"अब मेरी कमर टूट गयी।" अब्बास के बाद हुसैन के नौजवान बेटे अकबर मैदान में उतरे। हुसैन ने अपने हाथों उन्हें शस्त्रों से सुसज्जित किया। आह! कितना हृदय-विदारक दृश्य है। बेटे ने खड़े होकर हुसैन से जाने की आज्ञा माँगी, पिता का वीर हृदय अधीर हो

गया। हुसैन ने निराशा और शोक से अली अकबर को देखा, फिर आँखें नीची कर लीं, और रो दिये। जब वह शहीद हो गया, तो शोक-विह्वल पिता ने जाकर लाश के मुँह पर अपना मुँह रख दिया, और कहा—"बेटा, तुम्हारे बाद अब जीवन को धिक्कार है।" पुत्र-प्रेम की इहलोक की ममता के आदर्श पर, धर्म पर, गौरव पर कितनी बड़ी विजय है!

अब हुसैन अकेले रह गये। केवल एक सात वर्ष का भतीजा और हसन का एक दुधमुँहा पोता बाक़ी था। हुसैन घोड़े पर सवार महिलाओं के खीमों की ओर आये, और बोले—"बच्चे को लाओ, क्योंकि अब उसे कोई प्यार करनेवाला न रहेगा।" स्त्रियों ने शिशु को उनकी गोद में रख दिया। वह अभी उसे प्यार कर रहे थे कि अकस्मात् एक तीर उसकी छाती में लगा, और वह हुसैन की गोद में ही चल बसा! उन्होंने तुरन्त तलवार से गढ़ा खोदा, और बच्चे की लाश वहीं गाड़ दी। फिर अपने भतीजे को शत्रुओं के सामने खड़ा करके बोले—"ऐ अत्याचारियो, तुम्हारी निगाह में मैं पापी हूँ, पर इस बालक ने तो कोई अपराध नहीं किया, इसे क्यों प्यासों मारते हो?" यह सुनकर किसी नर-पिशाच ने एक तीर चलाया, जो बालक के गले को छेदता हुआ हुसैन की बाँह में गड़ गया। तीर के निकलते ही बालक की क्रीड़ाओं का अन्त हो गया।

हुसैन अब रणक्षेत्र की ओर चले। अब तक रण में जानेवालों को वह अपने खीमे के द्वार तक पहुँचाने आया करते थे। उन्हें पहुँचानेवाला अब कोई मर्द न था। तब आपकी बहन जैनब ने आपको रोकर बिदा किया। हुसैन अपनी पुत्री सकीना को बहुत प्यार करते थे। जब वह रोने लगी, तो आपने उसे छाती से लगाया, और तत्काल शोक के आवेग में कई शेर पढ़े, जिनका एक-एक शब्द करुण रस में डूबा हुआ है। उनके रणक्षेत्र में आते ही शत्रुओं में खलबली पड़ गयी, जैसे गीदड़ों में कोई शेर आ गया। हुसैन तलवार चलाने लगे, और इतनी वीरता से लड़े कि दुश्मनों के छक्के छूट गये। जिधर उनका

घोड़ा बिजली की तरह कड़ककर जाता था, लोग काई की भाँति फट जाते थे। कोई सामने आने की हिम्मत न कर सकता था। इस भाँति सिपाहियों के दलों को चीरते-फाड़ते वह फ़रात के किनारे पहुँच गये, और पानी पीना चाहते थे कि किसी ने कपट भाव से कहा—"तुम यहाँ पानी पी रहे हो, उधर सेना स्त्रियों के ख़ीमों में घुसी जा रही है।" इतना सुनते ही लपककर इधर आये, तो ज्ञात हुआ कि किसी ने छल किया है। फिर मैदान में पहुँचे, और शत्रु-दल का संहार करने लगे। यहाँ तक कि शिमर ने तीन सेनाओं को मिलाकर उन पर हमला करने की आज्ञा दी। इतना ही नहीं, बग़ल से और पीछे से भी उन पर तीरों की बौछार होने लगी। यहाँ तक कि ज़ख्मों से चूर होकर वह ज़मीन पर गिर पड़े, और शिमर की आज्ञा से एक सैनिक ने उनका सिर काट लिया! कहते हैं, जैनब यह दृश्य देखने के लिए ख़ीमे से बाहर निकल आयी थी। उसी समय उमर-बिन-साद से उनका सामना हो गया। तब वह बोलीं—"क्यों उमर, हुसैन इस बेकसी से मारे जायँ, और तुम देखते रहो!" उमर का दिल भर आया, आँखें सजल हो गयीं, और कई बूँदें डाढ़ी पर गिर पड़ीं।

हुसैन की शहादत के बाद शत्रुओं ने उनकी लाश की जो दुर्गति की, वह इतिहास की अत्यन्त लज्जा-जनक घटना है। उससे यह भली भाँति प्रकट हो जाता है कि मानव-हृदय कितना नीचे गिर सकता है। गुरु गोविन्दसिंह के बच्चे की कथा भी यहाँ मात हो जाती है, क्योंकि ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि किसी धर्म-संचालक के नवासों को अपने नाना के अनुयायियों के हाथों यह बुरा दिन देखना पड़ा हो।

नाटक के पात्र

पुरुष

हुसैन—हज़रत अली के बेटे और हज़रत मोहम्मद के नवासे। इन्हें फ़र्ज़न्दे-रसूल, शब्बीर, भी कहा गया है।

अब्बास—हज़रत हुसैन के चचेरे भाई।

अली अकबर—हज़रत हुसैन के बड़े बेटे।

अली असग़र—हज़रत हुसैन के छोटे बेटे।

मुस्लिम—हज़रत हुसैन के चचेरे भाई।

ज़ुबेर—मक्का का एक रईस।

वलीद—मदीना का नाज़िम।

मरवान—वलीन का सहायक अधिकारी।

हानी—कूफ़ा का एक रईस।

यज़ीद—ख़लीफ़ा।

ज़ुहाक, शम्स, सरजन रूमी—यज़ीद के मुसाहिब।

ज़ियाद—बसरे और कूफ़े का नाज़िम।

साद—यज़ीद की सेना का सेनापति।

अब्दुल्लाह, वहब, कसीर, मुख़्तार, हुर, ज़हीर, हबीब आदि हज़रत हुसैन के सहायक।

हज्जाज, हारिस, अशअस, कीसे, वलाल आदि यज़ीद के सहायक।

साहसराय—अरब-निवासी एक हिन्दू।

मुआबिया—यज़ीद का बेटा।

स्त्रियाँ

जैनब—हुसैन की बहन।

शहरबानू—हुसैन की स्त्री।

सकीना—हुसैन की बेटी।

क़मर—अब्दुल्लाह की स्त्री।

तौआ—कूफ़ा की एक वृद्धा स्त्री।

हिन्दा—यज़ीद की बेगम।

क़ासिद—सिपाही, जल्लाद आदि।

कर्बला

पहला अंक

पहला दृश्य

[समय—नौ बजे रात्रि, यज़ीद, ज़ुहाक, शम्स और कई दरबारी बैठे हुए हैं, और शराब की सुराही और प्याला रखा हुआ है।]

यज़ीद्—नगर में मेरी ख़िलाफ़त का ढिंढोरा पीट दिया गया ?

ज़ुहाक—कोई गली, कूचा, नाका, सड़क, मस्जिद, बाज़ार, ख़ानक़ाह ऐसा नहीं है, जहाँ हमारे ढिंढोरे की आवाज़ न पहुँची हो। यह आवाज़ वायु-मंडल को चीरती हुई हिजाज़, यमन, इराक़, मक्का-मदीना में गूँज रही है। और उसे सुनकर शत्रुओं के दिल दहल उठे हैं।

यज़ीद्—नक्क़ारची को ख़िलअत दिया जाय।

ज़ुहाक—बहुत खूब अमीर !

यज़ीद्—मेरी बैयत लेने के लिए सबको हुक्म दे दिया गया ?

ज़ुहाक—अमीर के हुक्म देने की ज़रूरत न थी। कल सूर्योदय से पहले सारा शाम बैयत लेने को हाज़िर हो जायगा।

यज़ीद्—(शराब का प्याला पीकर) नबी ने शराब को हराम कहा है। यह इस अमृत-रस के साथ कितना घोर अन्याय है ! उस समय के लिए यह निषेध सर्वथा उचित था, क्योंकि उन दिनों किसी को यह आनन्द भोगने का अवकाश न था। पर अब वह हालत नहीं है। तख़्त पर बैठे हुए ख़लीफ़ा के लिए ऐसी नियामत हराम समझने से तो यह कहीं अच्छा है कि वह ख़लीफ़ा ही न रहे। क्यों ज़ुहाक, कोई क़ासिद मदीने भेजा गया ?

ज़ुहाक—अमीर के हुक्म का इन्तज़ार था।

यज़ीद—ज़ुहाक, क़सम है अल्लाह की; मैं इस विलम्ब को कभी क्षमा नहीं कर सकता। फ़ौरन् क़ासिद भेजो, और वलीद को सख्त ताकीद लिखो कि वह हुसैन से मेरे नाम पर बैयत ले। अगर वह इनकार करें, तो उन्हें क़त्ल कर दे। इसमें ज़रा भी देर न होनी चाहिए।

ज़ुहाक—या मौला! मेरी तो अर्ज़ है कि हुसैन क़बूल भी कर लें तो भी उनका ज़िन्दा रहना अबूसिफ़ियान के खानदान के लिए उतना ही घातक है, जितना किसी सर्प को मारकर उसके बच्चे को पालना। हुसैन ज़रूर दावा करेंगे।

यज़ीद—ज़ुहाक, क्या तुम समझते हो कि हुसैन कभी मेरी बैयत क़बूल कर सकता है? यह मुहाल है, असम्भव है। हुसैन कभी मेरी बैयत न लेगा, चाहे उसकी बोटियाँ काट-काटकर कौवों को खिला दी जायँ। अगर तक़दीर पलट सकती है, अगर दरिया का बहाव पलट सकता है, अगर समय की गति रुक सकती है, तो हुसैन भी मेरे नाम पर बैयत ले सकता है। मगर बैयत ले चुकने के बाद मुमकिन है, तक़दीर पलट जाय, दरिया का बहाव पलट जाय, समय की गति रुक जाय, पर हुसैन दावा नहीं कर सकता। उससे बैयत लेने का मतलब ही यही है कि उसे इस जहान से रुख़सत कर दिया जाय। हुसैन ही मेरा दुश्मन है। मुझे और किसी का खौफ नहीं, मैं सारी दुनिया की फ़ौजों से नहीं डरता, मैं डरता हूँ इसी निहत्थे हुसैन से। (प्याला भरकर पी जाता है) इसी हुसैन ने मेरी नींद, मेरा आराम हराम कर रखा है। अबूसिफ़ियान की सन्तान हाशिम के बेटों के सामने सिर न झुकायेगी। ख़िलाफ़त को मुल्लाओं के हाथों में फिर न जाने देंगे। इन्होंने छोटे-बड़े की तमीज़ उठा दी। हरएक दहक़ान समझता है कि मैं ख़िलाफ़त की मसनद पर बैठने लायक़ हूँ, और अमीरों के दस्तरख़ान पर खाने का मुझे हक़ है। मेरे मरहूम बाप ने इस भ्रान्ति को बहुत कुछ मिटाया, और आज ख़लीफ़ा शान व शौकत में दुनिया के किसी ताजदार से शर्मिन्दा नहीं हो सकता। जूते सीनेवाले और रूखी रोटियाँ खाकर खुदा का शुक्रिया अदा करनेवाले ख़लीफ़ों के दिन गये।

ज़ुहाक—खुदा न करे, वह दिन फिर आये।

अब्दुशम्स—इन हाशिमियों से हमें उस्मान के खून का बदला लेना है।

यज़ीद—ख़ज़ाना खोल दो, और रियाया का दिल अपनी मुट्ठी में कर लो। रुपया खुदा के खौफ को दिल से दूर कर देता है। सारे शहर की दावत करो। कोई मुज़ायका नहीं, अगर ख़ज़ाना ख़ाली हो जाय। हर एक सिपाही को निहाल कर दो। और, अगर इतनी रियायतें करने पर भी कोई तुमसे खिंचा रहे, तो उसे क़त्ल कर दो। मुझे इस वक्त रुपए की ताक़त से धर्म और भक्ति को जीतना है।

[हिन्दा का प्रवेश]

यज़ीद—हिन्दा, तुमने इस वक्त कैसे तकलीफ़ की ?

हिन्दा—या अमीर ! मैं आपकी ख़िदमत में सिर्फ़ इसलिए हाज़िर हुई हूँ कि आपको इस इरादे से बाज़ रखूँ। आपको अमीर मुआबिया की क़सम, अपने दीन को, अपनी नजात को, अपने ईमान को यों न ख़राब कीजिए। जिस नबी से आपने इस्लाम की रोशनी पायी, जिसकी ज़ात से आपको यह रुतबा मिला, जिसने आपकी आत्मा को अपने उपदेशों से जगाया, जिसने आपको अज्ञान के गढ़े से निकालकर आफ़ताब के पहलू में बिठा दिया, उसी खुदा के भेजे हुए बुज़ुर्ग के नवासे का खून बहाने के लिए आप आमादा हैं !

यज़ीद—हिन्दा, ख़ामोश रहो।

हिन्दा—कैसे ख़ामोश रहूँ। आपको अपनी आँखों से जहन्नुम के ग़ार में गिरते देखकर ख़ामोश नहीं रह सकती। आपको मालूम नहीं कि रसूल की आत्मा स्वर्ग में बैठी हुई आपके इस अन्याय को देखकर आपको लानत दे रही होगी। और, हिसाब के दिन आप अपना मुँह उन्हें न दिखा सकेंगे। क्या आप नहीं जानते, आप अपनी नजात का दरवाजा बन्द कर रहे हैं।

यज़ीद—हिन्दा, ये मज़हब की बातें मज़हब के लिए हैं, दुनिया के लिए नहीं। मेरे दादा ने इस्लाम इसलिए क़बूल किया था कि इससे उन्हें दौलत और इज़्ज़त हाथ आती थी। नजात के लिए वह इस्लाम पर ईमान नहीं लाये थे, और न मैं ही इस्लाम को नजात का ज़ामिन समझने को तैयार हूँ।

हिन्दा—अमीर, खुदा के लिए यह कुवाक्य मुँह से न निकालो। आपको मालूम है, इस्लाम ने अरब से अधर्म के अँधेरे को कितनी आसानी से दूर कर दिया। अकेले एक आदमी ने काफ़िरों का निशान मिटा दिया। क्या खुदा की मर्ज़ी बिना यह बात हो सकती थी? कभी नहीं। तुम्हें मालूम है कि रसूल हुसैन को कितना प्यार करते थे? हुसैन को वह कन्धों पर बिठाते और अपनी नूरानी डाढ़ी को उनके हाथों से नुचवाते थे। जिस माथे को तुम अपने पैरों पर झुकाना चाहते हो, उसके रसूल बोसें लेते थे। हुसैन से दुश्मनी करके तुम अपने हक़ में काँटे बो रहे हो। खिलाफ़त उसकी है, जिसे पंच दे, यह किसी की मीरास नहीं है। तुम खुद मदीने जाओ, और देखो, क़ौम किस पर खिलाफत का बार रखती है। उसके हाथों पर बैयत लो। अगर क़ौम तुमको इस रुतबे पर बैठा दे, तो मदीने में रहकर शौक़ से इस्लाम की खिदमत करो। मगर खुदा के वास्ते यह हंगामा न उठाओ (जाती है)।

यज़ीद—सरजून रूमी को बुला लो।

[सरजून आकर आदाब बजा लाता है।]

यज़ीद—आपने वालिद मरहूम की खिदमत जितनी वफ़ादारी के साथ की, उसके लिए मैं आपका शुक्रगुज़ार हूँ। मगर इस वक्त मुझे आपकी पहले से कहीं ज्यादा ज़रूरत है। बसरे की सूबेदारी के लिए आप किसे तजवीज़ करते हैं।

रूमी—खुदा अमीर को सलामत रखे। मेरे खयाल में अब्दुल्लाह बिन-ज़ियाद से ज्यादा लायक़ आदमी आपको मुश्किल से मिलेगा। ज़ियाद ने अमीर मुआबिया की जो खिदमत की, वह भिटाई नहीं जा सकती। अब्दुल्लाह उसी बाप का बेटा और खानदान का उतना ही सच्चा गुलाम है। उसके पास फ़ौरन् क़ासिद भेज दीजिए।

यज़ीद—मुझे ज़ियाद के बेटे से शिकायत है कि उसने बसरेवालों के इरादों की मुझे इत्तिला नहीं दी। और, मुझे यक़ीन है कि बसरेवाले मुझसे बग़ावत कर जायँगे।

रूमी—या अमीर, आपका ज़ियाद पर शक करना बेजा है। आपके मददगार आपके पास खुद बखुद न आयेंगे। वह तलाश करने से, मिन्नत

करने से, रियायत करने से आयेंगे। आप-ही-आप वे लोग आयेंगे, जो आपकी ज़ात से खुद फ़ायदा उठाना चाहते हैं। इस मनसब के लिए ज़ियाद से बेहतर आदमी आपको न मिलेगा।

यज़ीद—सोचूँगा। (शराब का प्याला) ज़ुहाक! कोई गीत तो सुनाओ, जिसकी मिठास उस फ़िक्र को मिटा दे, जो इस वक्त मेरे दिल और जिगर पर पत्थर की चट्टान की तरह रखा हुआ है।

ज़ुहाक—जैसा हुक्म, (डफ़ बजाकर गाता है)

गाना

सफ़ी थकके बैठे दवा करनेवाले,
उठे हाथ उठाकर दुआ करनेवाले,
वफ़ा पर हैं मरते दफ़ा करनेवाले,
जफ़ा कर रहे हैं जफ़ा करनेवाले।
बचाकर चले ख़ाक से अपना दामन,
लहद पर जो गुज़री हवा करनेवाले।
किसी बात पर भी तो क़ायम नहीं हैं,
यह ज़ालिम, सितमगर दग़ा करनेवाले।
तअज्जुब नहीं है जो अब ज़हर दे दें,
ये ज़िच हो गये हैं दवा करनेवाले।
समझ लें कि दुशवार है राज़दारी,
किसी का किसी से गिला करनेवाले।
अभी है बुतों को ख़ुदाई का दावा,
ख़ुदा जाने, हैं और क्या करनेवाले।

दूसरा दृश्य

[रात का समय—मदीने का गवर्नर वलीद अपने दरबार में बैठा हुआ है ।]

वलीद—(स्वगत) मरवान कितना .खुदग़रज़ आदमी है । मेरा मातहत होकर भी मुझ पर रोब जमाना चाहता है । उसकी मरज़ी पर चलता, तो आज सारा मदीना मेरा दुश्मन होता । उसने रसूल के खानदान से हमेशा दुश्मनी की है ।

[क़ासिद का प्रवेश]

क़ासिद—या अमीर, यह ख़लीफ़ा यज़ीद का ख़त है ।

वलीद—(घबराकर) ख़लीफ़ा यज़ीद ! अमीर मुआविया को क्या हुआ ?

क़ासिद—आपको पूरी कैफ़ियत इस ख़त से मालूम होगी ।

[ख़त वलीद के हाथ में देता है ।]

वलीद—(ख़त पढ़कर) अमीर मुआविया की रूह को ख़ुदा जन्नत में दाखिल करे । मगर समझ में नहीं आता कि यज़ीद क्योंकर ख़लीफ़ा हुए । क़ौम के नेताओं की कोई मजलिस नहीं हुई, और किसी ने उनके हाथ पर बैयत नहीं ली । मदीने-भर में यह ख़बर फैलेगी, तो ग़ज़ब हो जायगा । हुसैन यज़ीद को कभी न ख़लीफ़ा मानेंगे ।

क़ासिद—(दूसरा ख़त देकर) हुज़ूर, इसे भी देख लें ।

[वलीद ख़त लेकर पढ़ता है]

"वलीद, हाकिम मदीना को ताक़ीद की जाती है कि इस ख़त को देखते ही हुसैन से मेरे नाम पर बैयत लें । अगर हुसैन बैयत न लें, तो उन्हें क़त्ल कर दें, और उनका सिर मेरे पास भेज दें ।"

[वलीद सर्द साँस लेकर फ़र्श पर लेट जाता है ।]

क़ासिद—मुझे क्या हुक्म होता है ?

वलीद—तुम जाकर बाहर ठहरो । (दिल में) ख़ुदा वह दिन न लाये कि मुझे रसूल के नवासे के साथ यह घृणित व्यवहार करना पड़े । वलीद

इतना बेदीन नहीं है। खुदा रसूल को इतना नहीं भूला है। मेरे हाथ गिर पड़ें इसके पहले कि मेरी तलवार हुसैन की गरदन पर पड़े। काश, मुझे मालूम होता कि अमीर मुआबिया की मौत इतनी नज़दीक है, और उसकी आँखें बन्द होते ही मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा, तो पहले ही इस्तीफ़ा देकर चला जाता। मरवान की सूरत देखने को जी नहीं चाहता, मगर इस वक्त उसकी मर्ज़ी के खिलाफ़ काम करना अपनी मौत को बुलाना है। वह रत्ती-रत्ती खबर यज़ीद के पास भेजेगा। उसके सामने मेरी कुछ भी न सुनी जायगी। ऐसा अफ़सर, जो मातहतों से डरे,-मातहत से भी बदतर है। जिस वज़ीर का ग़ुलाम बादशाह का विश्वासपात्र हो, उसके लिए जंगल में ऊँट चराना इससे हज़ार दर्जे बेहतर है कि वह वज़ीर की मसनद पर बैठे।

[ग़ुलाम को बुलाता है।]

ग़ुलाम—अमीर क्या हुक्म फ़र्माते हैं?

वलीद—जाकर मरवान को बुला ला।

ग़ुलाम—जो हुक्म।

[जाता है।]

वलीद—(दिल में) हुसैन कितना नेक आदमी है। उसकी जबान से कभी किसी की बुराई नहीं सुनी। उसने कभी किसी को नुक़सान नहीं पहुँचाया। उससे मैं क्योंकर बैयत लूँगा।

[मरवान का प्रवेश।]

मर०—इतनी रात गये मुझे आप न बुलाया करें। मेरी जान इतनी सस्ती नहीं है कि बाग़ियों को इस पर छिपकर हमला करने का मौक़ा दिया जाय।

वलीद—तुम्हारा बर्ताव ही क्यों ऐसा हो कि तुम्हारे ऊपर किसी क़ातिल की तलवार उठे। अभी अभी क़ासिद मुआबिया की खबर लाया है, और यज़ीद का यह खत भी आया है। मुझे तुमसे इसकी बाबत सलाह लेनी है।

[ख़त देता है।]

मर०—(ख़त पढ़कर) आह! मुआबिया, तुमने बेवक्त वफ़ात पायी। तुम्हारा नाम तारीख में हमेशा रोशन रहेगा। तुम्हारी नेकियों को याद करके

लोग बहुत दिनों तक रोयेंगे। यज़ीद ने ख़िलाफ़त अपने हाथ में ले ली, यह बहुत ही मुनासिब हुआ। मेरे ख़याल में हुसैन को इसी वक़्त बुलाना चाहिए।

वलीद—तुम्हारे ख़याल में वह बैयत ले लेंगे?

मर०—ग़ैरमुमकिन। उनसे बैयत लेना उन्हें क़त्ल करने को कहना है। मगर अभी मुआविया के मरने की ख़बर मशहूर न होनी चाहिए।

वलीद—इस मामले पर ग़ौर करो।

मर०—ग़ौर की ज़रूरत नहीं, मैं आपकी जगह होता, तो बैयत का ज़िक्र ही न करता। फ़ौरन क़त्ल कर डालता। हुसैन के ज़िन्दा रहते हुए यज़ीद को कभी इतमीनान नहीं हो सकता। याद रखिए कि मुआविया के मरने की ख़बर फैल गयी, तो न हमारी जान सलामत रहेगी न आपकी। हुसैन से आपका कितना ही दोस्ताना हो, लेकिन वही हुसैन आपका जानी दुश्मन हो जायगा।

वलीद—तुम्हें उम्मीद है कि वह इस वक़्त यहाँ आयेंगे? उन्हें शुबहा हो जायगा।

मर०—आपके ऊपर हुसैन का इतना भरोसा है, तो इस वक़्त भी चले आयँगे। मगर आपकी तलवार तेज़ और ख़ून गर्म रहना चाहिए। यही कारगुज़ारी का मौक़ा है। अगर हम लोगों ने इस मौक़े पर यज़ीद की मदद की, तो कोई शक नहीं कि हमारे इक़बाल का सितारा रोशन हो जायगा।

वलीद—मरवान, मैं यज़ीद का ग़ुलाम नहीं, ख़लीफ़ा का नौकर हूँ, और ख़लीफ़ा वही है, जिसे क़ौम चुनकर मसनद पर बिठा दे। मैं अपने दीन और ईमान का ख़ून करने से यह कहीं बेहतर समझता हूँ कि क़ुरान पाक की नक़ल करके ज़िन्दगी बसर करूँ।

मर०—या अमीर, मैं आपको यज़ीद के ग़ुस्से से होशियार किये देता हूँ। मेरी और आपकी भलाई इसी में है कि यज़ीद का हुक्म बजा लायँ। हमारा काम उनकी बन्दगी करना है, आप दुबिधा में न पड़ें। इसी वक़्त हुसैन को बुला भेजें।

[ग़ुलाम को पुकारता है।]

.गुलाम—या अमीर, क्या हुक्म है ?

मर०—जाकर हुसैन बिन अली को बुला ला। दौड़ते जाना, और कहना कि अमीर आपके इन्तजार में बैठे हैं।

[.गुलाम चला जाता है।]

तीसरा दृश्य

[रात का वक्त—हुसैन और अब्बास मस्जिद में बैठे बातें कर रहे हैं। एक दीपक जल रहा है।]

हुसैन—मैं जब ख़याल करता हूँ कि नाना मरहूम ने तनहा बड़े-बड़े सरकश बादशाहों को पस्त कर दिया, और इतनी शानदार खिलाफ़त क़ायम कर दी, तो मुझे यक़ीन हो जाता है कि उन पर खुदा का साया था। खुदा की मदद के बग़ैर कोई इन्सान यह काम न कर सकता था। सिकन्दर की बादशाहत उसके मरते ही मिट गयी, क़ैसर की बादशाहत उसकी ज़िन्दगी के बाद बहुत थोड़े दिनों तक क़ायम रही, उन पर खुदा का साया न था, वह अपनी हवस की धुन में क़ौमों को फ़तह करते हैं। नाना ने इस्लाम के लिए झंडा बलंद किया, इसी से वह कामयाब हुए।

अब्बास—इसमें किसको शक हो सकता है कि वह खुदा के भेजे हुए थे। खुदा की पनाह, जिस वक्त हज़रत ने इस्लाम की आवाज़ उठाई थी, इस मुल्क में अज्ञान का कितना गहरा अन्धकार छाया हुआ था। खुदा की ही आवाज़ थी, जो उनके दिल में बैठी हुई बोल रही थी, जो कानों में पड़ते ही दिलों में उतर जाती थी। दूसरे मज़हबवाले कहते हैं, इस्लाम ने तलवार की ताक़त से अपना प्रचार किया। काश, उन्होंने हज़रत की अवाज़ा सुनी होती! मेरा तो दावा है कि क़ुरान में एक आयत भी ऐसी नहीं है, जिसकी मंशा तलवार से इस्लाम को फैलाना हो।

हुसैन—मगर कितने अफ़सोस की बात है कि अभी से क़ौम ने उनकी नसीहतों को भूलना शुरू किया, और वह नापाक, जो उनकी मसनद पर बैठा हुआ है, आज खुले बन्दों शराब पीता है।

[.गुलाम का प्रवेश।]

गुलाम—नबी के बेटे पर ख़ुदा की रहमत हो। अमीर ने आपको किसी बहुत ज़रूरी काम के लिए तलब किया है।

अब्बास—यह वक्त वलीद के दरबार का नहीं है।

गुलाम—हुज़ूर, कोई ख़ास काम है।

हुसैन—अच्छा, तू जा। हम घर जाने लगेंगे, तो उधर से होते हुए जायँगे।

[गुलाम चला जाता है।]

अब्बास—भाईजान! मुझे तो इस बेवक्त की तलबी से घबराहट हो गयी है। यह वक्त वलीद के इजलास का नहीं है। मुझे दाल में कुछ काला नज़र आता है। आप कुछ कयास कर सकते हैं कि किस लिए बुलाया होगा।

हुसैन—मेरा दिल तो गवाही देता है कि मुआबिया ने वफ़ात पायी।

अब्बास—तो वलीद ने आपको इसलिए बुलाया होगा कि आपसे यज़ीद की बैयत ले।

हुसैन—मैं यज़ीद की बैयत क्यों करने लगा। मुआबिया ने भैया इमाम हसन के साथ क़सम खाकर शर्त की थी कि वह अपने मरने के बाद अपनी औलाद में से किसी को खलीफ़ा न बनायेगा। हसन के बाद खिलाफ़त पर मेरा हक़ है। अगर मुआबिया मर गया है, और यज़ीद को ख़लीफ़ा बनाया गया है, तो उसने मेरे साथ और इस्लाम के साथ दग़ा की है। यज़ीद शराबी है, बदकार है, झूठा है, बेदीन है, कुत्तों को गोद में लेकर बैठता है। मेरी जान भी जाय, तो क्या, पर मैं उसकी बैयत न अख़्तियार करूँगा।

अब्बास—मामला नाज़ुक है। यज़ीद की ज़ात से कोई बात बईद नहीं। काश, हमें मुआबिया की बीमारी और मौत की ख़बर पहले ही मिल गयी होती!

[गुलाम का फिर प्रवेश]

गुलाम—हुज़ूर तशरीफ़ नहीं लाये, अमीर आपके इन्तज़ार में बैठे हुए हैं।

हुसैन—तुफ़ है तुझ पर! तू वहाँ पर गया भी कि रास्ते से ही लौट आया? चल, मैं अभी आता हूँ। तू फिर न आना।

ग़ुलाम—हुज़ूर, अमीर से जाकर जब मैंने कहा कि वह अभी आते हैं, तो वह चुप हो गये, लेकिन मरवान ने कहा कि वह कभी न आयेंगे, आपसे दावा कर रहे हैं। इस पर अमीर उनसे बहुत नाराज़ हुए, और कहा—हुसैन क़ौल के पक्के हैं, जो कहते हैं, उसे पूरा करते हैं।

हुसैन—वलीद शरीफ़ आदमी है। तुम जाओ, हम अभी आते हैं।

[ग़ुलाम चला जाता है।]

अब्बास—आप जायेंगे?

हुसैन—जब तक कोई सबब न हो, किसी की नीयत पर शुबहा करना मुनासिब नहीं।

अब्बास—भैया, मेरी जान आप पर फ़िदा हो। मुझे डर है कि कहीं वह आपको क़ैद न कर ले।

हुसैन—वलीद पर मुझे एतबार है। अबूसिफ़ियान की औलाद होने पर भी वह शरीफ़ और दीनदार है।

अब्बास—आप एतबार करें, लेकिन मैं आपको वहाँ जाने की हरगिज़ सलाह न दूँगा। इस सन्नाटे में अगर उसने कोई दग़ा की, तो कोई फ़र्याद भी न सुनेगा। आपको मालूम है कि मरवान कितना दग़ाबाज़ और हरामकार है। मैं उसके साये से भी भागता हूँ। जब तक आप मुझे यह इतमीनान न दिला दीजिएगा कि दुश्मन वहाँ आपका बाल बाँका न कर सकेगा, मैं आपका दामन न छोड़ूँगा।

हुसैन—अब्बास, तुम मेरी तरफ़ से बेफ़िक्र रहो। मुझे हक़ पर इतना यक़ीन है, और मुझमें हक़ की इतनी ताक़त है कि वलीद तो क्या, यज़ीद की सारी फ़ौज भी मुझे कुछ नुक़सान नहीं पहुँचा सकती। यक़ीन है कि मेरी एक आवाज पर हज़ारों खुदा के बन्दे और रसूल के नाम पर मिटनेवाले दौड़ पड़ेंगे। और अगर कोई मेरी आवाज़ न सुने, तो भी मेरे बाज़ुओं में इतना बल है कि मैं अकेले उनमें से एक सौ को ज़मीन पर सुला सकता हूँ। हैदर का बेटा ऐसे गीदड़ों से नहीं डर सकता। आओ, ज़रा नाना के क़ब्र की ज़ियारत कर लें।

[दोनों हज़रत मुहम्मद की क़ब्र के सामने खड़े हो जाते हैं, हाथ बाँधकर दुआ पढ़ते हैं, और मस्जिद से निकलकर घर की तरफ़ चलते हैं ।]

चौथा दृश्य

[वलीद का दरबार । वलीद और मरवान बैठे हुए हैं । रात का समय]

मर०—अब तक नहीं आये ! मैंने आपसे कहा कि वह हरगिज़ न आयेंगे ।

वलीद—आयेंगे, और ज़रूर आयेंगे । मुझे उनके क़ौल पर पूरा भरोसा है ।

मर०—कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उन्हें अमीर की वफ़ात की ख़बर लग गयी हो, और वह अपने साथियों को जमा करके हमसे जंग करने आ रहे हों ।

[हुसैन का प्रवेश । वलीद सम्मान के भाव से खड़ा हो जाता है, और दरवाज़े पर आकर हाथ मिलाता है । मरवान अपनी जगह पर बैठा रहता है ।]

हुसैन—खुदा की तुम पर रहमत हो । (मरवान को बैठे देखकर) मेल फूट से और प्रेम द्वेष से बहुत अच्छा है । मुझे क्यों याद किया ?

वलीद—इस तकलीफ़ के लिए माफ़ कीजिए, आपको यह सुनकर अफ़सोस होगा कि अमीर मुआबिया ने वफ़ात पायी ।

मर०—और ख़लीफ़ा यज़ीद ने हुक्म दिया है कि आपसे उनके नाम की बैयत ली जाय ।

हुसैन—मेरे नज़दीक यह मुनासिब नहीं है कि मुझ-जैसा आदमी छुपे-छुपे बैयत ले । यह न मेरे लिए मुनासिब है और न यज़ीद के लिए काफ़ी । बेहतर है, आप एक आम जलसा करें, और शहर के सब रईसों और आलिमों को बुलाकर यज़ीद की बैयत का सवाल पेश करें । मैं भी उन लोगों के साथ रहूँगा, और उस वक़्त सबसे पहले जवाब देनेवाला मैं हूँगा ।

वलीद—मुझे आपकी यह सलाह माक़ूल मालूम होती है। बेशक, आपके बैयत लेने से वह नतीजा न निकलेगा, जो यज़ीद की मंशा है। कोई कहेगा कि आपने बैयत ली, और कोई कहेगा कि नहीं। और इसकी तसदीक़ करने में बहुत वक़्त लगेगा। तो जलसा करूँ?

मर०—अमीर, मैं आपको ख़बरदार किये देता हूँ कि इनकी बातों में न आइए। बगैर बैयत लिये इन्हें यहाँ से न जाने दीजिए, वरना आप इनसे उस वक़्त तक बैयत न ले सकेंगे, जब तक ख़ून की नदी न बहेगी। यह चिन-गारी की तरह उड़कर सारी ख़िलाफ़त में आग लगा देंगे।

वलीद—मरवान, मैं तुमसे मिन्नत करता हूँ, चुप रहो।

मर०—हुसैन, मैं ख़ुदा को गवाह करके कहता हूँ कि मैं आपका दुश्मन नहीं हूँ। मेरी दोस्ताना सलाह यह है कि आप यज़ीद की बैयत मंज़ूर कर लीजिए, ताकि आपको कोई नुक़सान न पहुँचे। आपस का फ़साद मिट जाय, और हज़ारों ख़ुदा के बन्दों की जानें बच जायँ। खलीफ़ा आपके बैयत की ख़बर सुनकर बेहद ख़ुश होंगे, और आपके साथ ऐसे सलूक करेंगे कि ख़िलाफ़त में कोई आदमी आपकी बराबरी न कर सकेगा। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि आपकी जागीरें और वज़ीफ़े दोचंद करा दूँगा, और आप मदीनेमें इज्ज़त के साथ रसूल के क़दमो से लगे हुए दीन और दुनिया में सुर्ख़रू होकर जिन्दगी बसर करेंगे।

हुसैन—बस करो मरवान, मैं तुम्हारी दोस्ताना सलाह सुनने के लिए नहीं आया हूँ। तुमने कभी अपनी दोस्ती का सबूत नहीं दिया, और इस मौक़े पर मैं तुम्हारी सलाह को दोस्ताना न समझकर दग़ा समझूँ, तो मेरा दिल और मेरा ख़ुदा मुझसे नाख़ुश न होगा। आज इस्लाम इतना कमज़ोर हो गया है कि रसूल का बेटा यज़ीद की बैयत लेने के लिए मजबूर हो!

मर०—उनकी बैयत से आपको क्या एतराज़ है?

हुसैन—इसलिए कि वह शराबी, झूठा, दग़ाबाज़, हरामकार और ज़ालिम है। वह दीन के आलिमों की तौहीन करता है। जहाँ जाता है,

एक गधे पर एक बन्दर को आलिमों के कपड़े पहनाकर साथ ले जाता है। मैं ऐसे आदमी की बैयत अख़्तियार नहीं कर सकता।

मर०—या अमीर, आप इनसे बैयत लेंगे या नहीं?

हुसैन—मेरी बैयत किसी के अख्तियार में नहीं है।

मर०—क़सम ख़ुदा की, आप बैयत क़बूल किये बिना नहीं जा सकते। मैं तुम्हें यहीं क़त्ल कर डालूँगा (तलवार खींचकर बढ़ता है)।

हुसैन—(डपटकर) तू मुझे क़त्ल करेगा, तुझमें इतनी हिम्मत नहीं है! दूर रह। एक क़दम भी आगे रखा, तो तेरा नापाक सर ज़मीन पर होगा।

[अब्बास तीस सशस्त्र आदमियों के साथ तलवार खींचे हुए घुस आते हैं।]

अब्बास—(मरवान की तरफ़ झपटकर) मलऊन, यह ले; तेरे लिए दोज़ख़ का दरवाज़ा खुला हुआ है।

हुसैन—(मरवान के सामने खड़े होकर) अब्बास, तलवार म्यान में करो। मेरी लड़ाई मरवान से नहीं, यज़ीद से है। मैं खुश हूँ कि यह अपने आक़ा का ऐसा वफ़ादार ख़ादिम है।

अब्बास—इस मरदूद की इतनी हिम्मत कि आपके मुबारक जिस्म पर हाथ उठाये! क़सम ख़ुदा की, इसका ख़ून पी जाऊँगा।

हुसैन—मेरे देखते ही नहीं, मुसलमान पर मुसलमान का ख़ून हराम है।

वलीद—(हुसैन से) मैं सख्त नादिम हूँ कि मेरे सामने आपकी तौहीन हुई। ख़ुदा इसका अज़ाब मुझे दे।

हुसैन—वलीद, मेरी तक़दीर में अभी बड़ी-बड़ी सख्तियाँ झेलनी बदी हैं। यह उस मार्के की तमहीद है, जो पेश आनेवाला है। हम और तुम शायद फिर न मिलें, इसलिए रुख़सत। मैं तुम्हारी मुरौवत और भलमनसी को कभी न भूलूँगा। मेरी तुमसे सिर्फ इतनी अर्ज़ है कि मेरे यहाँ से जाने में ज़रा भी रोक-टोक न करना।

[दोनों गले मिलकर विदा होते हैं। अब्बास और तीस आदमी बाहर चले जाते हैं।]

मर०—वलीद, तुम्हारी बदौलत मुझे यह ज़िल्लत हुई।

वलीद—तुम नाशुक्रे हो। मेरी बदौलत तुम्हारी जान बच गयी; वरना तुम्हारी लाश फ़र्श पर तड़पती हुई नज़र आती।

मर०—तुमने यज़ीद की ख़िलाफ़त यज़ीद से छीनकर हुसैन को दे दी। तुमने अबूसिफ़ियान की औलाद होकर उसके ख़ानदान से दुश्मनी की। तुम ख़ुदा की दरगाह में उस क़त्ल और खून के ज़िम्मेदार होगे, जो आज की ग़फ़लत या नरमी का नतीजा होगा।

[**मरवान चला जाता है।**]

——

पाँचवाँ दृश्य

[**समय—आधी रात। हुसैन और अब्बास मस्जिद के सहन में बैठे हुए हैं।**]

अब्बास—बड़ी ख़ैरियत हुई, वरना मलऊन ने दुश्मनों का काम ही तमाम कर दिया था।

हुसैन—तुम लोगों की जतन बड़े मौके पर काम आयी। मुझे गुमान न था कि यह सब मेरे साथ इतनी दग़ा करेंगे। मगर यह जो कुछ हुआ, आगे चलकर इससे भी ज़्यादा होगा। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि हमें अब चैन से बैठना नसीब न होगा। मेरा भी वही हाल होनेवाला है, जो भैया इमाम हसन का हुआ।

अब्बास—खुदा न करे, खुदा न करे!

हुसैन—अब मदीने मे हम लोगों का रहना काँटे पर पाँव रखना है। भैया, शायद नबियों की औलाद शहीद होने ही के लिए पैदा होती है। शायद नबियों को भी होनहार की खबर नहीं होती; नहीं तो क्या नाना के मसनद पर वे लोग बैठते, जो इस्लाम के दुश्मन हैं, और जिन्होंने सिर्फ़ अपनी ग़रज़ पूरी करने के लिए इस्लाम का स्वाँग भरा है। मैं रसूल ही से पूछता हूँ कि वह मुझे क्या हुक्म देते हैं? मदीने ही में रहूँ या कहीं और चला जाऊँ? (**हज़रत मुहम्मद की क़ब्र पर जाकर**) ऐ ख़ुदा, यह तेरे रसूल मुहम्मद

की ख़ाक है, और मैं उनकी बेटी का बेटा हूँ। तू मेरे दिल का हाल जानता है। मैंने तेरी और तेरे रसूल की मर्ज़ी पर हमेशा चलने की कोशिश की है। मुझ पर रहम कर और उस पाक नबी के नाते, जो इस क़ब्र में सोया हुआ है, मुझे हिदायत कर कि इस वक़्त मैं क्या करूँ?

[रोते हैं, और क़ब्र पर सिर रखकर बैठ जाते हैं। एक क्षण में चौंककर उठ बैठते हैं।]

अब्बास—भैया, अब यहाँ से चलो। घर के लोग घबरा रहे होंगे।

हुसैन—नहीं अब्बास, अब मैं लौटकर घर न जाऊँगा। अभी मैंने ख़्वाब देखा कि नाना आये हैं, और मुझे छाती से लगाकर कहते हैं—"बहुत थोड़े दिनों में तू ऐसे आदमियों के हाथों शहीद होगा, जो अपने को मुसलमान कहते होंगे, और मुसलमान न होंगे। मैंने तेरी शहादत के लिए कर्बला का मैदान चुना है, उस वक़्त तू प्यासा होगा, पर तेरे दुश्मन तुझे एक बूँद पानी भी न देंगे। तुम्हारे लिए यहाँ बहुत ऊँचा रुतबा रखा गया है, पर वह रुतबा शहादत के बग़ैर हासिल नहीं हो सकता।" यह कहकर नाना ग़ायब हो गये।

अब्बास—(रोकर) भैया, हाय भैया, यह ख़्वाब है या पेशीनगोई?

[मुहम्मद हंफ़िया का प्रवेश।]

मुह०—हुसैन, तुमने क्या फ़ैसला किया?

हुसैन—ख़ुदा की मर्ज़ी है कि मैं क़त्ल किया जाऊँ।

मुह०—ख़ुदा की मर्ज़ी ख़ुदा ही जानता है। मेरी सलाह तो यह है कि तुम किसी दूसरे शहर में चले जाओ, और वहाँ से अपने क़ासिदों को उस जवार में भेजो। अगर लोग तुम्हारी बैयत मंजूर कर लें, तो ख़ुदा का शुक्र करना, वरना यों भी तुम्हारी आबरू क़ायम रहेगी। मुझे ख़ौफ़ यही है कि कहीं तुम ऐसी जगह न जा फँसो, जहाँ कुछ लोग तुम्हारे दोस्त हों, और कुछ तुम्हारे दुश्मन। कोई चोट बग़ली घूँसों की तरह नहीं होती, कोई साँप इतना क़ातिल नहीं होता, जितना आस्तीन का, कोई कान इतना तेज़ नहीं होता, जितना दीवार का, और कोई दुश्मन इतना ख़ौफ़नाक नहीं होता, जितनी दग़ा। इनसे हमेशा बचते रहना।

हुसैन—आप मुझे कहाँ जाने की सलाह देते हैं ?

मुह०—मेरे खयाल में मक्का से बेहतर कोई जगह नहीं है। अगर क़ौम ने तुम्हारी बैयत मंजूर की, तो पूछना ही क्या ? वरना पहाड़ियों की घाटियाँ तुम्हारे लिए क़िलों का काम देंगी, और थोड़े-से मददगारों के साथ तुम आज़ादी से ज़िन्दगी बसर करोगे। खुदा चाहेगा, तो लोग बहुत जल्द यज़ीद से बेज़ार होकर तुम्हारी पनाह में आयेंगे।

हुसैन—अज़ीज़ों को यहाँ छोड़ दूँ ?

मुह०—हरगिज़ नहीं। सबको अपने साथ ले जाओ।

हुसैन—यहाँ की हालात से मुझे जल्द-जल्द इत्तिला देते रहिएगा।

मुह०—इसका इतमीनान रखो।

[मुहम्मद हुसैन से गले मिलकर चले जाते हैं।]

अब्बास—भैया, अब तो घर चलिए, क्या सारी रात जागते रहिएगा ?

हुसैन—अब्बास, मैं पहले ही कह चुका कि लौटकर घर न जाऊँगा।

अब्बास—अगर आपकी इजाज़त हो, तो मैं भी कुछ अर्ज़ करूँ। आप मुझे अपना सच्चा दोस्त समझते हैं या नहीं ?

हुसैन—खुदा पाक की क़सम, तुमसे ज़्यादा सच्चा दोस्त दुनिया में नहीं है।

अब्बास—क्यों न आप इस वक्त़ यज़ीद की बैयत मंजूर कर लीजिए ? खुदा कारसाज़ है, मुमकिन है, थोड़े दिनों में यज़ीद खुद ही मर जाय, तो आपको खिलाफ़त आप-ही-आप मिल जायगी। जिस तरह आपने मुआबिया के ज़माने में सब्र किया, उसी तरह यज़ीद के ज़माने को भी सब्र के साथ काट दीजिए। यह भी मुमकिन है कि थोड़े ही दिनों में यज़ीद के ज़ुल्म से तंग आकर लोग बग़ावत कर बैठें, और आपके लिए मौक़ा निकल आये। सब्र सारी मुश्किलों को आसान कर देता है।

हुसैन—अब्बास, यह क्या कहते हो ? अगर मैं खौफ़ से यज़ीद की बैयत क़बूल कर लूँ, तो इस्लाम का मुझसे बड़ा दुश्मन और कोई न होगा। मैं रसूल को, वालिद को, भैया हसन को क्या मुँह दिखाऊँगा। अब्बाजान ने शहीद होना क़बूल किया, पर मुआबिया की बैयत न मंजूर की। भैया ने

भी मुआबिया की बैयत को हराम समझा, तो मैं क्यों खानदान में दाग़ लगाऊँ। इज़्ज़त की मौत बेइज़्ज़ती की ज़िन्दगी से कहीं अच्छी है।

अब्बास—(विस्मित होकर) खुदा की क़सम, यह हुसैन की आवाज़ नहीं, रसूल की आवाज़ है, और ये बातें हुसैन की नहीं, अली की हैं। भैया! आपको खुदा ने अक्ल दी है, मैं तो आपका खादिम हूँ, मेरी बातें आपको नागवार हुई हों, तो माफ़ करना।

हुसैन—(अब्बास को छाती से लगाकर) अब्बास, मेरा खुदा मुझसे नाराज़ हो जाय, अगर मैं तुमसे ज़रा भी मलाल रखूँ। तुमने मुझे जो सलाह दी, वह मेरी भलाई के लिए दी। इसमें मुझे ज़रा भी शक नहीं, मगर तुम इस मुग़ालते मे हो कि यज़ीद के दिल की आग मेरे बैयत ही से ठंडी हो जायगी। हालाँकि यज़ीद ने मुझे क़त्ल करने का यह हीला निकाला है। अगर वह जानता कि मैं बैयत ले लूँगा, तो वह कोई और ही तदबीर सोचता।

अब्बास—अगर उसकी यह नीयत है, तो कलाम पाक की क़सम, मैं आपके पसीने की जगह अपना खून बहा दूँगा, और आपसे आगे बढ़कर इतनी तलवारें चलाऊँगा कि मेरे दोनो हाथ कटकर गिर जायँ।

[**जैनब, शहरबानू और घर के अन्य लोग आते हैं।**]

जैनब—अब्बास, बातें न करो। (**हुसैन से**) भैया, मैं आपके पैरों पड़ती हूँ। आप यह इरादा तर्क कर दीजिए, और मदीने में रसूल की क़ब्र से लगे हुए ज़िन्दगी बसर कीजिए, और अपनी गरदन पर इस्लाम की तबाही का इलज़ाम न लीजिए।

हुसैन—जैनब, ऐसी बातों पर तुफ़ है। जब तक ज़मीन और आसमान क़ायम है, मैं यज़ीद की बैयत नहीं मंजूर कर सकता। क्या तुम समझती हो कि में ग़लती पर हूँ?

जैनब—नहीं भैया, आप ग़लती पर नहीं हैं। अल्लाहताला अपने रसूल के बेटे को ग़लत रास्ते पर नहीं ले जा सकता, मगर आप जानते हैं कि ज़माने का रंग बदला हुआ है। ऐसा न हो, लोग आपके खिलाफ़ उठ खड़े हों।

हुसैन—बहन, इन्सान सारी दुनिया के ताने बरदाश्त कर सकता है, पर अपने ईमान का नहीं। अगर तुम्हारा यह खयाल है कि मेरे बैयत न लेने से इस्लाम में तफ़र्क़ा पड़ जायगा, तो यह समझ लो कि इत्तफ़ाक़ कितनी ही अच्छी चीज़ हो, लेकिन रास्ती उससे कहीं अच्छी है। रास्ती को छोड़कर मेल को क़ायम रखना वैसा ही है, जैसे जान निकल जाने के बाद जिस्म क़ायम रखना। रास्ती क़ौम की जान है, उसे छोड़कर कोई क़ौम बहुत दिनों तक ज़िन्दा नहीं रह सकती। इस बारे में मैं अपनी राय क़ायम कर चुका, अब तुम लोग मुझे रुखसत करो। जिस तरह मेरी बैयत से इस्लाम का वक़ार मिट जायगा, उसी तरह मेरी शहादत से उसका वक़ार क़ायम रहेगा। मैं इस्लाम की हुरमत पर निसार हो जाऊँगा।

शहर०—(रोकर) क्या आप हमें अपने क़दमों से जुदा करना चाहते हैं?

अली अकबर—अब्बाजान, अगर शहीद ही होना है, तो हम भी वह दर्जा क्यों न हासिल करें?

मुस्लिम—या अमीर, हम आपके क़दमों पर निसार होना ही अपनी ज़िन्दगी का हासिल समझते हैं। आप न ले जायँगे, तो हम जबरन् आपके साथ चलेंगे।

अली असग़र—अब्बा, मैं आपके पीछे खड़ा होकर नमाज़ पढ़ता था। आप यहाँ छोड़ देंगे, तो मैं नमाज़ कैसे पढ़ूँगा?

जैनब—भैया, क्या कोई उम्मीद नहीं है? क्या मदीने में रसूल के बेटे पर हाथ रखनेवाला, रसूल की बेटियों की हुरमत पर जान देनेवाला, हक़ पर सिर कटानेवाला कोई नहीं है? इसी शहर से वह नूर फैला, जिससे सारा जहान रोशन हो गया। क्या वह हक़ की रोशनी इतनी जल्द ग़ायब हो गयी? आप यहीं से हिजाज और यमन की तरफ़ क़ासिदों को क्यों नहीं रवाना फ़रमाते।

हुसैन—अफ़सोस है जैनब, खुदा को कुछ और ही मंजूर है। मदीने में हमारे लिए अब अमन नहीं है। यहाँ अगर हम आज़ादी से खड़े हैं, तो यह वलीद की शराफ़त है। वरना यज़ीद की फ़ौजों ने हमको घेर लिया

होता। आज मुझे सुबह होते-होते यहाँ से निकल जाना चाहिए। यज़ीद को मेरे अज़ीज़ों से दुश्मनी नहीं, उसे ख़ौफ़ सिर्फ़ मेरा है। तुम लोग मुझे यहाँ से रुख़सत करो। मुझे यक़ीन है कि यज़ीद तुम लोगों को तंग न करेगा। उसके दिल में चाहे न हो, मगर मुसलमानों के दिल में ग़ैरत बाक़ी है। वह रसूल की बहू-बेटियों की आबरू लुटते देखेंगे, तो उनका ख़ून ज़रूर गर्म हो जायगा।

जैनब—भैया, यह हर्गिज़ न होगा। हम भी आपके साथ चलेंगी। अगर इस्लाम का बेटा अपनी दिलेरी से इस्लाम का वक़ार क़ायम रखेगा, तो हम अपने सब्र से, ज़ब्त से और बरदाश्त से उसकी शान निभायेंगे। हम पर जिहाद हराम है, लेकिन हम मौका पड़ने पर मरना जानती हैं। रसूल पाक की क़सम, आप हमारी आँखों में आँसू न देखेंगे, हमारे लबों से फ़रियाद न सुनेंगे, और हमारे दिलों से आह न निकलेगी। आप हक़ पर जान देकर इस्लाम की आबरू रखना चाहते हैं, तो हम भी एक बेदीन और बदकार की हिमायत मे रहकर इस्लाम के नाम पर दाग़ लगाना नहीं चाहतीं।

[**सिपाहियों का एक दस्ता सड़क पर आता दिखाई पड़ता है।**]

हुसैन—अब्बास, यज़ीद के आदमी हैं। वलीद ने भी दग़ा दी। आह, हमारे हाथों में तलवार भी नहीं। ऐ ख़ुदा, मदद !

अब्बास—कलाम पाक की क़सम, ये मरदूद आपके क़रीब न आने पायेंगे।

जैनब—भैया, तुम सामने से हट जाओ।

हुसैन—जैनब, घबराओ मत, आज मैं दिखा दूँगा कि अली का बेटा कितनी दिलेरी से जान देता है।

[**अब्बास बाहर निकलकर फ़ौज के सरदार से**]

ऐ सरदार, किसकी बदनसीबी है कि तू उसके नज़दीक जा रहा है।

सर०—या हज़रत, हमें शहर में गश्त लगाने का हुक्म हुआ है कि कहीं बाग़ी तो जमा नहीं हो रहे हैं।

हुसैन—अब देर करने का मौक़ा नहीं। चलूँ, अम्माजान से रुख़सत हो लूँ। (**फ़ातिमा की क़ब्र पर जाकर**) ऐ मादरे-जहान, तेरा बदनसीब बेटा,

जिसे तूने गोद में प्यार से खिलाया था, जिसे तूने सीने से दूध पिलाया था—आज तुझसे रुख़सत हो रहा है, और फिर शायद उसे तेरी ज़ियारत नसीब न हो (रोते हैं)।

[मदीने के सब नगरवासियों का प्रवेश]

सब०—ऐ अमीर, आप हमें अपने क़दमों से क्यों जुदा करते हैं। हम आपका दामन न छोड़ेंगे। आपके क़दमों से लगे हुए ग़ुरबत की ख़ाक छानना इससे कहीं अच्छा है कि एक बदकार और ज़ालिम ख़लीफ़ा की सख़्तियाँ झेलें। आप नबी के ख़ानदान के आफ़ताब हैं। उसकी रोशनी से दूर होकर हम इस अँधेरे में ख़ौफनाक जानवरों से क्योंकर अपनी जान बचा सकेंगे। कौन हमे हक़ और दीन की राह सुझायेगा? कौन हमें अपनी नसीहतों का अमृत पिलायेगा? हमें अपने क़दमों से जुदा न कीजिए।

[रोते हैं।]

हुसैन—मेरे प्यारे दोस्तो, मैं यहाँ से खुद नहीं जा रहा हूँ। मुझे तक़दीर लिये जा रही है। मुझे वह दर्दनाक नज़ारा देखने की ताब नहीं है कि मदीने की गलियाँ इस्लाम और रसूल के दोस्तों के खून से रँगी जायें। मैं प्यारे मदीने को उस तबाही और खून से बचाना चाहता हूँ। तुम्हें मेरी यही आख़िरी सलाह है कि इस्लाम की हुरमत क़ायम रखना, माल और ज़र के लिए अपनी क़ौम और अपनी मिल्लत से बेवफ़ाई न करना, ख़ुदा के नज़दीक इससे बड़ा गुनाह नहीं है। शायद हमें फिर मदीने के दर्शन न हों, शायद फिर हम इन सूरतों को न देख सकें; हाँ, शायद फिर हमें उन बुज़ुर्गों की सूरत देखनी नसीब न हो, जो हमारे नाना के शरीक और हमदर्द रहे, जिनमें से कितनों ही ने मुझे गोद में खिलाया है। भाइयो, मेरी ज़बान में इतनी ताक़त नहीं है कि उस रंज और ग़म को ज़ाहिर कर सकूँ, जो मेरे सीने में दरिया की लहरों की तरह उठ रहा है। मदीने की ख़ाक से जुदा होते हुए जिगर के टुकड़े हुए जाते हैं। आपसे जुदा होते आँखों में अँधेरा छा जाता है, मगर मजबूर हूँ। खुदा की और रसूल की यही मंशा है कि इस्लाम का पौधा मेरे

ख़ून से सींचा जाय, रसूल की खेती रसूल की औलाद के ख़ून से हरी हो, और मुझे उनके सामने सिर झुकाने के सिवा और कोई चारा नहीं।

नागरिक—या अमीर, हमें अपने क़दमों से जुदा न कीजिए। हाय अमीर, हाय रसूल के बेटे, हम किसका मुँह देखकर जियेंगे? हम क्योंकर सब्र करें, अगर आज न रोयें, तो फिर किस दिन के लिए आँसुओं को उठा रखें! आज से ज़्यादा मातम का और कौन दिन होगा?

हुसैन—(मुहम्मद की क़ब्र पर जाकर) ऐ रसूल-ख़ुदा, रुख़सत। आपका नवासा मुसीबत में गिरफ़्तार है। उसका बेड़ा पार कीजिए।

सब लोग मुझे छोड़ के पहले ही सिधारे;
मिलता नहीं आराम नवासे को तुम्हारे।
ख़ादिम को कोई अमन की अब जा नहीं मिलती;
राहत कोई साइत मेरे मौला, नहीं मिलती।
दुख कौन-सा और कौन-सी ईज़ा नहीं मिलती;
हैं आप जहाँ, राह वह मुझको नहीं मिलती।
दुनिया में मुझे कोई नहीं और ठिकाना;
आज आख़िरी रुख़सत को ग़ुलाम आया है नाना!
बच जाऊँ जो पास अपने बुला लीजिए नाना,
तुरबत में नवासे को छिपा लीजिए नाना!

[भाई की क़ब्र पर जाकर]

सुन लीजिए शब्बीर की रुख़सत है बिरादर;
हज़रत को तो पहलू हुआ अम्मा का मयस्सर।
क़ब्रें भी जुदा होंगी यहाँ अब तो हमारी;
देखें हमें ले जाय कहाँ ख़ाक हमारी।

मैं नहीं चाहता कि मेरे साथ एक चिउँटी की भी जान ख़तरे में पड़े। हमारे अज़ीज़ों से, अपनी मस्तूरात से, अपने दोस्तों से यही सवाल है कि मेरे लिए ज़रा भी ग़म न करो, मैं वहीं जाता हूँ, जहाँ ख़ुदा की मर्जी लिये जाती है।

अब्बास—या हज़रत, ख़ुदा के लिए हमारे ऊपर यह सितम न कीजिए। हम जीते-जी कभी आपसे जुदा न होंगे।

जैनब—भैया, मेरी जान तुम पर फ़िदा हो। अगर औरतों को तुमने छोड़ दिया, तो लौटकर उन्हें जीता न पाओगे। तुम्हारी तीनो फूल-सी बेटियाँ ग़म से मुरझाई जा रही हैं। शहरबानू का हाल देख ही रहे हो। तुम्हारे बग़ैर मदीना सूना हो जायगा, और घर की दीवारें हमें फाड़ खायँगी। हमारे ऊपर इस बदनामी का दाग़ न लगाओ कि मुसीबत में रसूल की बेटियों ने अपने सरदार से बेवफ़ाई की। तुम्हारे साथ के फ़ाके यहाँ के मीठे लुक़मों से ज्यादा मीठे मालूम होंगे। जिस्म को तकलीफ़ होगी, पर दिल को तो इतमीनान रहेगा।

अली अक०—अब्बा, मैं इस मुसीबत का सारा मज़ा आपको अकेले न उठाने दूँगा। इसमें मेरा भी हिस्सा है। कौन हमारे नेज़ों की चमक देखेगा ! किसे हम अपनी दिलेरी के जौहर दिखायेंगे ! नहीं, हम यह ग़म की दावत आपको अकेले न खाने देंगे।

अली अस०—अब्बा, मुझे अपने आगे घोड़ों पर बिठाकर रास मेरे हाथों में दे दीजिएगा। मैं उसे ऐसा दौड़ाऊँगा कि हवा भी हमारी गर्द को न पहुँचेगी।

हुसैन—हाय, अगर मेरी तक़दीर की मंशा है कि मेरे जिगर के टुकड़े मेरी आँखों के सामने तड़पें, तो मेरा क्या बस है। अगर ख़ुदा को यही मंज़ूर है कि मेरा बाग़ मेरी नज़रों के सामने उजाड़ा जाय, तो मेरा क्या चारा है। ख़ुदा, गवाह रहना कि इस्लाम की इज्ज़त पर रसूल की औलाद कितनी बेदरदी से क़ुरबान की जा रही है !

छठा दृश्य

[समय—सन्ध्या। कूफ़ा शहर का एक मकान। अब्दुल्लाह, क़मर, वहब बातें कर रहे हैं।]

अब्दु०—बड़ा ग़ज़ब हो रहा है। शामी फ़ौज के सिपाही शहरवालों

को पकड़-पकड़ ज़ियाद के पास ले जा रहे हैं, और वहाँ जबरन् उनसे बैयत ली जा रही है।

क़मर—तो लोग क्यों उसकी बैयत क़बूल करते हैं ?

अब्दु०—न करें, तो क्या करें। अमीरों और रईसों को तो जागीर और मनसब की हवस ने फोड़ लिया। बेचारे ग़रीब क्या करें। नहीं बैयत लेते, तो मारे जाते हैं, शहरबदर किये जाते हैं। जिन गिने-गिनाये रईसों ने बैयत नहीं ली, उन पर भी सख़्ती करने की तैयारियाँ हो रही हैं। मगर ज़ियाद चाहता है कि कूफ़ावाले आपस ही मे लड़ जायँ। इसी लिए उसने अब तक कोई सख्ती नहीं की है।

क़मर—यज़ीद को ख़िलाफ़त का कोई हक़ तो है नहीं, महज़ तलवार का ज़ोर है। शरा के मुताबिक़ हमारे ख़लीफ़ा हुसैन हैं।

अब्दु०—वह तो ज़ाहिर ही है, मगर यहाँ के लोगों को तो जानते हो न। पहले तो ऐसा शोर मचायेंगे, गोया जान देने पर आमादा हैं, पर ज़रा किसी ने लालच दिखलाया, और सारा शोर ठंडा हो गया। गिने हुए आदमियों को छोड़कर सभी बैयत ले रहे हैं।

क़मर—तो फिर हमारे ऊपर भी तो वही मुसीबत आनी है ?

अब्दु०—इसी फ़िक्र में तो पड़ा हुआ हूँ। कुछ सूझता ही नहीं।

क़मर—सूझना ही क्या है। यज़ीद की बैयत हर्गिज़ मत क़बूल करो।

अब्दु०—अपनी खुशी की बात नहीं है।

क़मर—क्या होगा ?

अब्दु०—वज़ीफ़ा बन्द हो जायगा।

क़मर—ईमान के सामने वज़ीफ़े की कोई हस्ती नहीं।

अब्दु०—जागीर ज्यादा नहीं, तो परवरिश तो हो ही जाती है। वह फ़ौरन् छिन जायगी। कितनी मेहनत से हमने मेवों का बाग़ लगाया है। यह कब गवारा होगा कि हमारी मेहनत का फल दूसरे खायँ। कलाम पाक की क़सम, मेरे बाग़ पर बड़ों-बड़ों को रश्क है।

क़मर—बाग़ के लिए ईमान बेचना पड़े, तो बाग़ की तरफ़ आँख उठाकर देखना भी गुनाह है।

अब्दु०—क़मर, मामला इतना आसान नहीं है, जितना तुमने समझ रखा है। जायदाद के लिए इन्सान अपनी जान देता है, भाई-भाई दुश्मन हो जाते हैं, बाप-बेटों में, मियाँ-बीबी में तिफ़ाक़ पड़ जाता है। अगर उसे लोग इतनी आसानी से छोड़ सकते, तो दुनिया जन्नत बन जाती।

क़मर—यह सही है, मगर ईमान के मुक़ाबले जायदाद ही की नहीं, ज़िन्दगी की भी कोई हस्ती नहीं। दुनिया की चीज़ें एक दिन छूट जायँगी, मगर ईमान तो हमेशा साथ रहेगा।

अब्दु०—शहरबदर होना पड़ा, तो यह मकान हाथ से निकल जायगा। अभी पिछले साल बनकर तैयार हुआ है। देहातों में, जंगलों में बद्दुओं की तरह मारे-मारे घूमना पड़ेगा। क्या जलावतनी कोई मामूली चीज़ है?

क़मर—दीन के लिए लोगों ने सल्तनतें तर्क कर दी हैं, सिर कटाये हैं, और हँसते-हँसते सूलियों पर चढ़ गये हैं। दीन की दुनिया पर हमेशा जीत रही है, और रहेगी।

अब्दु०—वहब, अपनी अम्माजान की बातें सुन रहे हो?

वहब—जी हाँ, सुन रहा हूँ, और दिल में फ़ख्र कर रहा हूँ कि मैं ऐसी दीन-परवर मा का बेटा हूँ। मैं आपसे सच अर्ज़ करता हूँ कि कीस, हज्जार, हुर, अशअरा-जैसे रऊसा को बैयत क़बूल करते देखकर मैं भी नीम राज़ी हो गया था, पर आपकी बातों ने हिम्मत मज़बूत कर दी। अब मैं सब कुछ झेलने को तैयार हूँ।

अब्दु०—वहब, दीन हम बूढ़ों के लिए है, जिन्होंने दुनिया के मज़े उठा लिये। जवानों के लिए दुनिया है। तुम अभी शादी करके लौटे हो, बहू की चूड़ियाँ भी मैली नहीं हुईं। जानते हो, वह एक रईस की बेटी है, नाज़ों में पली है, क्या उसे भी ख़ानावीरानी की मुसीबतों में डालना चाहते हो? हम और क़मर तो हज करने चले जायँगे। तुम मेरी जायदाद के वारिस हो, मुझे यह तसकीन रहेगा कि मेरी मिहनत रायगाँ नहीं हुई। तुमने मा की नसीहत पर अमल किया, तो मुझे बेहद सदमा होगा। पहले जाकर नसीमा से पूछो तो!

वह्ब—मुझे अपने ईमान के मामले में किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं। मुझे यक़ीन है कि ख़िलाफ़त के हक़दार हज़रत हुसैन हैं। यज़ीद की बैयत कभी न क़बूल करूँगा, जायदाद रहे या न रहे, जान रहे या न रहे।

क़मर—बेटा, तेरी मा तुझ पर फ़िदा हो, तेरी बातों ने दिल खुश कर दिया। आज मेरी-जैसी खुशनसीब मा दुनिया में न होगी। मगर बेटा, तुम्हारे अब्बाजान ठीक कहते हैं, नसीमा से पूछ लो, देखो, वह क्या कहती है। मैं नहीं चाहती कि हम लोगों की दीन-परवरी के बाइस उसे तकलीफ़ हो, और जंगलों की ख़ाक छाननी पड़े। उसकी दिलजोई करना तुम्हारा फ़र्ज़ है।

वह्ब—आप फ़रमाती हैं, तो मैं उससे भी पूछ लूँगा। मगर मैं साफ़ कहे देता हूँ कि मैं उसकी रज़ा का ग़ुलाम न बनूँगा। अगर उसे दीन के मुक़ाबले में ऐश व आराम ज़्यादा पसन्द है, तो शौक़ से रहे, लेकिन मैं बैयत की जिल्लत न उठाऊँगा।

[दरवाज़ा खोलकर बाहर चला जाता है।]

सातवाँ दृश्य

[अरब का एक गाँव—एक विशाल मन्दिर बना हुआ है, तालाब है, जिसके पक्के घाट बने हुए हैं, मनोहर बाग़ीचा, मोर, हरिण, गाय आदि पशु-पक्षी इधर-उधर विचर रहे हैं। साहसराय और उनके बन्धु तालाब के किनारे सन्ध्या-हवन, ईश्वर-प्रार्थना कर रहे हैं।]

गाना—स्तुति

आखिलेश अनंत विधाता हो, मंगलमय मोदप्रदाता हो;
भय-भंजन शिव जन त्राता हो, अविनाशी अद्भुत ज्ञाता हो।
तेरा ही एक सहारा हो,
हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।

बल, वीर्य, पराक्रम त्वेष रहे, सद्धर्म धरा पर शेष रहे ;
श्रुति भानु एकता वेश रहे, धन, ज्ञान, कलायुत देश रहे।
सर्वत्र प्रेम की धारा हो,
हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।
भारत तन-मन-धन सारा हो, उसकी सेवा सब द्वारा हो।
निज मान समान दुलारा हो, सबकी आँखों का तारा हो।
जीवन सर्वस्व हमारा हो,
हरि, धर्म प्राण से प्यारा हो।

[साहसराय प्रार्थना करते हैं]

भगवन्, हमें शक्ति प्रदान कीजिए कि सदैव अपने व्रत का पालन करें। अश्वत्थामा की सन्तान का निरन्तर सेवा-मार्ग का अवलम्बन करें, उनका रक्त सदैव दीनों की रक्षा में बहता रहे, उनके सिर सदैव न्याय और सत्य पर बलिदान होते रहें। और प्रभो! वह दिन आये कि हम प्रायश्चित-संस्कार से मुक्त होकर तपोभूमि भारत को प्रयाण करें, और ऋषियों के सेवा-सत्कार में मग्न होकर अपना जीवन सफल करें। हे नाथ, हमें सद्बुद्धि दीजिए कि निरन्तर कर्म-पथ पर स्थिर रहें, और उस कलंक-कालिमा को, जो हमारे आदि पुरुष ने हमारे मुख पर लगा दी है, अपनी सुकीर्ति से धोकर अपना मुख उज्ज्वल करें। जब हम स्वदेश-यात्रा करें, तो हमारे मुख पर आत्मगौरव का प्रकाश हो, हमारे स्वदेश-बन्धु सहर्ष हमारा स्वागत करें, और हम वहाँ पतित बनकर नहीं, समाज के प्रतिष्ठित अंग बनकर जीवन व्यतीत करें।

[सेवक का प्रवेश]

सेवक—दीनानाथ, समाचार आया है, अमीर आबिया के बेटे यज़ीद ने ख़िलाफ़त पर अधिकार कर लिया।

साहस०—यज़ीद ने ख़िलाफ़त पर अधिकार कर लिया! यह कैसे? उसका ख़िलाफ़त पर क्या स्वत्व था? ख़िलाफ़त तो हजरत अली के बेटे इमाम हुसैन को मिलनी चाहिए थी।

हरजसराय—हाँ, हक़ तो हुसैन ही का है। मुआविया से पहले इसी शर्त पर सन्धि हुई थी।

सिहदत्त—यज़ीद की शरारत है। मुझे मालूम है, वह अभिमानी, तामसी और विलास-भोगी मनुष्य है। विषय-वासना में मग्न रहता है। हम ऐसे दुर्जन की ख़िलाफ़त कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

पुण्यराय—(सेवक से) कुछ मालूम हुआ हुसैन क्या कर रहे हैं?

सेवक—दीनबन्धु, वह मदीना से भागकर मक्का चले गये हैं।

सिंह०—यह उनकी भूल है, तुरन्त मदीनावासियों को संगठित करके यजीद के नाज़िम का वध कर देना चाहिए था, इसके पश्चात् अपनी ख़िलाफ़त की घोषणा कर देनी थी। मदीना को छोड़कर उन्होंने अपनी निर्बलता स्वीकार कर ली।

रामसिंह—हुसैन धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। अपने बंधुओं का रक्त नहीं बहाना चाहते।

ध्रुवदत्त—जीव-हिंसा महापाप है। धर्मात्मा पुरुष कितने ही संकट में पड़े, किन्तु अहिंसा-व्रत को नहीं त्याग सकता।

भीरुदत्त—न्याय-रक्षा के लिए हिंसा करना पाप नहीं। जीव-हिंसा न्याय-हिंसा से अच्छी है।

साहस०—अगर वास्तव में यजीद ने ख़िलाफ़त का अपहरण कर लिया है, तो हमें अपने व्रत के अनुसार न्याय-पक्ष ग्रहण करना पड़ेगा। यज़ीद शक्तिशाली है, इसमें सन्देह नहीं, पर हम न्याय-व्रत का उल्लंघन नहीं कर सकते। हमें उसके पास दूत भेजकर इसका निश्चय कर लेना चाहिए कि हमें किस पथ का अनुसरण करना उचित है।

सिंहदत्त—जब यह सिद्ध है कि उसने अन्याय किया, तो उसके पास दूत भेजकर विलम्ब क्यों किया जाय। हमें तुरन्त उससे संग्राम करना चाहिए। अन्याय को भी अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए युक्तियों का अभाव नहीं होता।

हरजसराय—मैं पूछता हूँ, अभी समर की बात ही क्यों की जाय। राजनीति के तीनों सिद्धान्तों की परीक्षा कर लेने के पश्चात् ही शस्त्र ग्रहण

करना चाहिए। विशेषकर इस समय हमारी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि हम आत्मगौरव की दुहाई देते हुए रणक्षेत्र में कूद पड़ें। शस्त्र-ग्रहण सर्वदा अंतिम उपाय होना चाहिए।

सिंहदत्त—धन आत्मा की रक्षा के लिए ही है।

हरजसराय—आत्मा बहुत ही व्यापक शब्द है। धन केवल धर्म की रक्षा के लिए है।

रामसिंह—धर्म की रक्षा रक्त से नहीं होती; शील, विनय, सदुपदेश, सहानुभूति, सेवा ये सब उसके परीक्षित साधन हैं, और हमें स्वयं इन साधनों की सफलता का अनुभव हो चुका है।

सिंहदत्त—राजनीति के क्षेत्र में ये साधन उसी समय सफल होते हैं, जब शस्त्र उनके सहायक हों, अन्यथा युद्धलाभ से अधिक उनका मूल्य नहीं होता।

साहसराय—हमारा कर्त्तव्य अपनी वीरता का प्रदर्शन अथवा राज्य-प्रबन्ध की निपुणता दिखाना नहीं है, न हमारा अभीष्ट अहिंसा-व्रत का पालन करना है। हमने केवल अन्याय को दमन करने का व्रत धारण किया है, चाहे उसके लिए किसी उपाय का अवलम्बन करना पड़े। इसलिए सबसे पहले हमें दूतों द्वारा यज़ीद के मनोभाव का परिचय प्राप्त करना चाहिए। उसके पश्चात् हमें निश्चय करना होगा कि हमारा कर्तव्य क्या है। मैं रामसिंह और भीरुदत्त से अनुरोध करता हूँ कि ये आज ही शाम को यात्रा पर अग्रसर हो जायँ।

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

[हुसैन का क़ाफ़िला मक्का के निकट पहुँचता है। मक्का की पहाड़ियाँ नज़र आ रही हैं। लोग काबा की मसजिद के द्वार पर हुसैन का स्वागत करने को खड़े हैं।]

हुसैन—यह लो, मक्का शरीफ़ आ गया। यही वह पाक मुक़ाम है, जहाँ रसूल ने दुनिया में क़दम रखे। ये पहाड़ियाँ रसूल के सिजदों से पाक और उनके आँसुओं से रोशन हो गयी हैं। अब्बास, काबा को देखकर मेरे दिल में अजीब-सी धड़कन हो रही है, जैसे कोई ग़रीब मुसाफ़िर एक मुद्दत के बाद अपने वतन में दाख़िल हो।

[सब लोग घोड़ों से उतर पड़ते हैं।]

ज़ुबेर—आइए हज़रत हुसैन, हमारे शहर को अपने क़दमों से रोशन कीजिए।

[हुसैन सबसे गले मिलते हैं।]

हुसैन—मैं इस मेहमानेवाजी के लिए आपका मशकूर हूँ।

ज़ुबेर—हमारी जानें आप पर निसार हों। आपको देखकर हमारी आँखों में नूर आ गया है, और हमारे कलेजे ठंडे हो गये हैं। ख़ुदा गवाह है, आपने रसूल पाक ही का हुलिया पाया है। आइए, काबा हाथ फैलाये आपका इन्तज़ार कर रहा है।

[सब लोग मस्जिद में दाख़िल होते हैं। स्त्रियाँ हरम में जाती हैं।]

अली असग़र—अब्बा, इन पहाड़ों पर से तो हमारा घर दिखाई देता होगा?

हुसैन—नहीं बेटा, हम लोग घर से बहुत दूर आ गये हैं। तुमने कुछ नाश्ता नहीं किया?

अली अस०—मुझे भूख नहीं है। पहले मालूम होती थी, लेकिन अब ग़ायब हो गयी है।

हुसैन—तो तुम यहीं रहो कि तुम्हें भूख ही न लगे।

हबीब—या हज़रत, आप भी ज़रा आराम फ़रमा लें। हमारी बहुत दिनों से तमन्ना है कि आपके पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ें।

[ज़ुबेर और अब्बास को छोड़कर सब लोग वज़ू करने चले जाते हैं।]

हुसैन—क्यों ज़ुबेर, यहाँ के लोगों के क्या ख़यालात हैं?

ज़ुबेर—कुछ न पूछिए, मुझे यहाँ की कैफ़ियत बयान करते शरम आती है। यों ज़ाहिर में तो सब-के-सब आप पर निसार होने के लिए क़सम खायेंगे, बैयत लेने को भी तैयार नज़र आयेंगे, मगर दिल किसी का भी साफ़ नहीं।

हुसैन—क्या दग़ा का अंदेशा है?

ज़ुबेर—यह तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि कोई ऐसी बात देखने में नहीं आयी, लेकिन इधर-उधर की बातों से पता चलता है कि इनकी नीयत साफ़ नहीं। अजब नहीं कि यज़ीद दौलत और जागीर का लालच देकर इन्हें मिला ले। उस वक़्त यह ज़रूर आपके साथ दग़ा कर जायँगे। मैं तो आपको यही सलाह दूँगा कि आप मदीने वापस जायँ।

हुसैन—मुझे तो इनकी तरफ़ से दग़ा का गुमान नहीं होता। दग़ा में एक झिझक होती है, जो यहाँ किसी के चेहरे पर नज़र नहीं आती। दग़ा उसी तरह शक पैदा कर देती है, जैसे हमदर्दी एतबार पैदा करती है।

ज़ुबेर—मगर आपको यह भी तो मालूम होगा कि दग़ा गिरगिट की तरह कभी अपने असली रंग में नहीं दिखाई देती। वह हाथों का बोसा लेती है, पैरों-तले आँखें बिछाती है, और बातों से शकर बरसाती है।

अब्बास—दोस्त बनकर सलाह देती है, ख़ुद किनारे पर रहती है, पर दूसरों को दरिया में ढकेल देती है। आप हँसती है, पर दूसरों को रुलाती है, और अपनी सूरत को हमेशा ज़ाहिद के लिबास में छिपाये रहती है।

ज़ुबेर—ख़ुदा पाक की क़सम, आप मेरी तरफ़ इशारा कर रहे हैं। अगर आप जानते कि मैं हज़रत हुसैन की कितनी इज़्ज़त करता हूँ, तो मुझ

पर दग़ा का शक न करते। अगर मैं यज़ीद का दोस्त होता, तो अब तक दौलत से मालामाल हो जाता। अगर खुद बैयत की नीयत रखता, तो अब तक ख़ामोश न बैठा रहता। आप मुझ पर यह शुबहा करके बड़ा सितम कर रहे हैं।

हुसैन—अब्बास, मुझे तुम्हारी बातें सुनकर बड़ी शर्म आती है। जुबेर सबसे अलग-बिलग रहते हैं। किसी के बीच में नहीं पड़ते। एकान्त में बैठनेवाले आदमियों पर अक्सर लोग शुबहा करने लगते हैं। तुम्हें शायद यह नहीं मालूम है कि दग़ा गोशे से सोहबत को कहीं ज़्यादा पसन्द करती है।

[**हबीब का प्रवेश**]

हबीब—या हज़रत, मुझे अभी मालूम हुआ कि आपके यहाँ तशरीफ़ लाने की ख़बर यज़ीद के पास भेज दी गयी है, और मरवान यहाँ का नाज़िम बनाकर भेजा जा रहा है।

हुसैन—मालूम होता है, मरवान हमारी जान लेकर ही छोड़ेगा। शायद हम ज़मीन के परदे में चले जायँ, तो वहाँ भी हमें आराम न लेने देगा।

अब्बास—यहाँ उसे उसकी शामत ला रही है। कलाम पाक की क़सम, वह यहाँ से जान सलामत न ले जायगा। काबा में खून बहाना हराम ही क्यों न हो, पर ऐसे रूह-स्याह का खून यहाँ भी हलाल है।

हबीब—वलीद माजूल कर दिया गया। यहाँ का आलिम मदीने जा रहा है।

हुसैन—वलीद के माजूली का मुझे सख्त अफ़सोस है। वह इस्लाम का सच्चा दोस्त था। मैं पहले ही समझ गया था कि ऐसे नेक और दीनदार आदमी के लिए यज़ीद के दरबार में जगह नहीं है। अब्बास, वलीद की माजूली मेरी शहादत की दलील है।

हबीब—यह भी सुना गया है कि यज़ीद ने अपने बेटे को, जो आपका ख़ैरख्वाह है, नज़रबन्द कर दिया है। उसने खुल्लमखुल्ला यज़ीद की बेइन्साफ़ी का एतराज़ किया था। यहाँ तक कहा था कि खिलाफ़त पर तुम्हारा कोई हक़ नहीं है। यज़ीद यह सुनकर आगबबूला हो गया। उसे क़त्ल करना चाहता था, लेकिन रूमी ने बचा लिया।

अब्बास—ऐसे ज़ालिम का क़त्ल कर देना ऐन सवाब है।

हुसैन—अब्बास, यह खुदा की मंशा की दूसरी दलील है। यह उसकी बदनसीबी है कि तक़दीर ने उसे मेरी शहादत का वसीला बनाया है। अपने बेटे को क़ैद करने से किसी को खुशी नहीं हो सकती। जो आदमी अपने बेटे की ज़बान से अपनी तौहीन सुने, उससे ज़्यादा बदनसीब दुनिया में और कौन होगा।

ज़ुबेर—मेरे खयाल में अगर आप कूफ़े की तरफ़ जायँ, तो वहाँ आपको मददगारों की कमी न रहेगी।

हबीब—या हज़रत, मैं कूफ़ा के क़रीब का रहनेवाला हूँ, और कूफ़ियों की आदत से खूब वाकिफ़ हूँ। दग़ा उनकी खमीर में मिली हुई है। आप उनसे बचे रहिएगा। वह आपके पास अपनी बैयत के पैग़ाम भेजेंगे। उनके क़ासिद-पर-क़ासिद आयेंगे, और आपको चैन न लेने देंगे। उनके खतों से ऐसा मालूम होगा कि सारा मुल्क आप पर फ़िदा होने के लिए तैयार है। पर आप उनकी बातों में हर्गिज़ न आइएगा। भूलकर भी कूफ़ा की तरफ़ रुख न कीजिएगा। मेरी आपसे यही अर्ज़ है कि काबा से बाहर क़दम न रखिएगा, जब तक आप यहाँ रहेंगे, आप सब बलाओं से बचे रहेंगे। कूफ़ा-वाले वफ़ादारी से उतना ही महरूम हैं, जैसे चिड़िया दूध से।

हुसैन—मैं कूफ़ावालों से खूब वाक़िफ़ हूँ। तुमने और भी खबरदार कर दिया, इसके लिए मैं तुम्हारा मशकूर हूँ।

हबीब—मैं यही अर्ज़ करने के लिए आपकी खिदमत में हाज़िर हुआ हूँ। अगर वे लोग रोते हुए आकर आपके पैरों पर गिर पड़ें, तो भी आप उन्हें ठुकरा दीजिएगा। इसमें शक नहीं कि वे दिलेर हैं, दीनदार हैं, मेहमानेवाज़ हैं, पर दौलत के ग़ुलाम हैं। इस ऐब ने उनकी सारी खूबियों पर परदा डाल दिया है। वज़ीफ़े और जागीर के लालच और वज़ीफ़े तथा जागीर की ज़ब्ती का खौफ़ उनसे ऐसे क़ौल करा सकता है, जिसकी इन्सान से उम्मीद नहीं की जा सकती।

हुसैन—हबीब, मैं तुम्हारी सलाह को हमेशा याद रखूँगा।

ज़ुबेर—हबीब, तुमने कूफ़ियों के बारे में जो कुछ कहा, वह बहुत कुछ

दुरुस्त है, लेकिन तुम हज़रत हुसैन के दोस्त हो, तुमसे कहने में कोई खौफ़ नहीं कि मक्कावाले भी इस मामले में कूफ़ावालों ही के भाई-बंद हैं। इनके क़ौल और फ़ेल का भी कोई एतबार नहीं। कूफ़े की आबादी ज़्यादा है, वे अगर दिल से किसी बात पर आ जायँ, तो यज़ीद के दाँत खट्टे कर सकते हैं। मक्का की थोड़ी-सी आबादी अगर वफ़ादार भी रहे, तो उससे भलाई की कोई उम्मीद नहीं हो सकती। शाम की दो हज़ार फ़ौज इन्हें घेर लेने को काफ़ी है। भलाई या बुराई किसी खास मुल्क या क़ौम का हिस्सा नहीं होती। वही सिपाह जो एक बार मैदान में दिलेरी के जौहर दिखाती है, दूसरी बार दुश्मन को देखते ही भाग खड़ी होती है। इसमें सिपाह की खता नहीं। उसके फ़ेल की ज़िम्मेदारी उसके सरदार पर है। वह अगर दिलेर है, तो सिपाह में दिलेरी की रूह फूँक सकता है; कम-हिम्मत है, तो सिपाह की हिम्मत को भी पस्त कर देगा। आप रसूल के बेटे हैं, आपको भी खुदा ने वही अक्ल और कमाल अता किया है। यह क्योंकर मुमकिन है कि आपकी साहबत का उन पर असर न पड़े। कूफ़ा तो क्या, आप हक़ को भी हक़ के रास्ते पर ला सकते हैं। मेरे खयाल में आपको किसी से बदगुमान होने की ज़रूरत नहीं।

अब्बास—ज़ुबेर, सलाह कितनी ही माकूल हो, लेकिन उसमें ग़रज़ की बू आते ही उसकी मंशा फ़ौत हो जाती है।

हुसैन—अगर तुम्हारा इरादा यहाँ लोगों से बैयत लेने का हो, तो शौक़ से लो, मैं ज़रा भी दखल न दूँगा।

ज़ुबेर—या हज़रत, मेरा खुदा गवाह है कि मैं आपके मुक़ाबले में अपने को खिलाफ़त के लायक़ नहीं समझता। मैं यज़ीद की बैयत न करूँगा, लेकिन खुदा मुझे नजात न दे, अगर मेरे दिल में आपका मुक़ाबला करने का खयाल भी आया हो।

हबीब—या इमाम, अगर तकलीफ़ न हो, तो सहन में तशरीफ़ लाइए। अज़ान हो चुकी। लोग आपकी राह देख रहे हैं।

[सब लोग नमाज पढ़ने जाते हैं।]

दूसरा दृश्य

[यज़ीद का दरबार—यज़ीद, ज़ुहाक़, मुआविया, रूमी, हुर और अन्य सभासद बैठे हुए हैं। दो वेश्याएँ शराब पिला रही हैं।]

यज़ीद—तुममें से कोई बता सकता है, जन्नत कहाँ है ?

हुर—रसूल ने तो चौथे आसमान पर फ़रमाया है।

शम्स—मैं चौथे-पाँचवें आसमान का क़ायल नहीं। ख़ुदा का फ़ज़्ल और करम ही जन्नत है।

रूमी—ख़ुदा की निगाह कोई क़बरिस्तान नहीं है कि वहाँ मुर्दे दफ़न हों। जन्नत वहीं होगी, जहाँ लाशें दफ़न की जाती होंगी।

यज़ीद—उस्ताद, तुम भी चूक गये, फिर ज़ोर लगाना। अब की ज़ुहाक़ की बारी है। कहिए शेख़जी, जन्नत कहाँ है ?

ज़ुहाक़—बतलाऊँ ? इस शराब के प्याले में।

यज़ीद—पते पर पहुँचे, पर अभी कुछ कसर है। ज़रा और ज़ोर लगाओ।

ज़ुहाक़—उस प्याले में जो किसी नाज़नीन के हाथ से मिले।

यज़ीद—लाना हाथ। बस वही जन्नत है। मए-गुलफ़ाम हो, और किसी नाज़नीन का पंजए-मरजान हो। इस एक जन्नत पर रसूल की हज़ारों जन्नतें क़ुरबान हैं। अच्छा, अब बताओ, दोज़ख़ कहाँ है ?

हुर—या ख़लीफ़ा आपको दीन-हक़ की तौहीन मुनासिब नहीं।

यज़ीद—हुर, तुमने सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। आँखों की क़सम है, तुम मेरी मजलिस में बैठने के क़ाबिल नहीं हो। सारा मज़ा ख़ाक में मिला दिया। यज़ीद के सामने दीन का नाम लेना मना है। दीन उन मुल्लाओं के लिए है, जो मस्जिदों में पड़े हुए गोश्त की हड्डियों को तरसते हैं, दीन उनके लिए है, जो मुसीबतों के सबब से ज़िन्दगी से बेज़ार हैं, जो मुहताज हैं, बेबस हैं, भूखों मरते हैं, जो ग़ुलाम हैं, दुर्रे खाते हैं। दीन बूढ़े मरदों के लिए, राँड औरतों के लिए, दिवालिए सौदागरों के लिए है। इस ख़याल से उनके आँसू पुँछते हैं, दिल को तसकीन होती है। बादशाहों के लिए दीन नहीं है। उनकी नजात रसूल और ख़ुदा के निगाह-करम की मुहताज नहीं।

उनकी नजात उनके हाथों में है। दोस्तो, बतलाना हमारा पीर कौन है?

ज़ुहाक़—पीर मुग़ाँ (साक़ी)।

यज़ीद—लाना हाथ। हमारा पीर साक़ी है, जिसके दस्तेकरम से हमें यह नियामत मयस्सर हुई है। अच्छा, कौन मेरे सवाल का जवाब देता है, दोज़ख कहाँ है?

सम्स—किसी सूदखोर की तोंद में।

यज़ीद—बिल्कुल ग़लत।

रूमी—खलीफ़ा के ग़ुस्से में।

यज़ीद—(मुस्किराकर) इनाम के क़ाबिल जवाब है, मगर ग़लत।

क़ीस—किसी मुल्ला की नमाज़ में, जो ज़मीन पर माथा रगड़ते हुए ताकता रहता है कि कहीं से रोटियाँ आ रही हैं या नहीं।

यज़ीद—वल्लाह, खूब जवाब है, मगर ग़लत।

ज़ुहाक़—किसी नाज़नीन के रूठने में।

यज़ीद—ठीक, ठीक, बिल्कुल ठीक। लाना हाथ। दिल खुश हो गया—(वेश्याओं से) नरगिस, इस जवाब की दाद दो, ज़ुहरा, शेख़जी के हाथों मे बोसा दो। वह गीत गाओ, जिसमें शराब की बू हो, शराब का नशा हो, शराब की गर्मी हो।

नरगिस—आज खलीफ़ा से कोई बड़ा इनाम लूँगी।

[गाती है]

हाँ खुले साक़ी दरे-मैख़ाना आज,
ख़ैर हो, भर दे मेरा पैमाना आज।
नाज़ करता झूमता मस्ताना वार,
अब आता है, सूए-मैख़ाना आज।
बोसए-लब हुस्न के सदक़े में दे,
ऐ बुते तरसा हमें तरसा न आज।
इश्क़े-चश्मे-मस्त का देखो असर,
पाँव पड़ता है मेरा मस्ताना आज।

मेरे सीरो की इलाही ख़ैर हो,
है बहुत मुज़्तर दिले दीवाना आज ।
मुहतसिब का डर नहीं 'बिस्मिल' तुम्हें,
सूए-मस्जिद जाते हो रंदाना आज ।

[एक क़ासिद का प्रवेश ।]

क़ासिद्—अस्सलाम अलेक या इमाम, बिन ज़ियाद ने मुझे कूफ़ा से आपकी ख़िदमत में भेजा है ।

यज़ीद्—खत लाया है ?

क़ासिद्—खत इस ख़ौफ़ से नहीं लाया कि कहीं रास्ते में बाग़ियों के हाथों में गिरफ्तार न हो जाऊँ ।

यज़ीद्—क्या पैग़ाम लाया है ?

क़ासिद्—बिन ज़ियाद ने गुज़ारिश की है कि यहाँ के लोग हुज़ूर की बैयत क़बूल नहीं करते, और बग़ावत पर आमादा हैं । हुसैन बिन अली को अपनी बैयत लेने को बुला रहे हैं । तीन क़ासिद जा चुके हैं, मगर अभी तक हुसैन आने पर रज़ामन्द नहीं हुए, अब शहर के कई रऊसा खुद जा रहे हैं ।

यज़ीद्—बिन ज़ियाद से कहो, जो आदमी मेरी बैयत न मंजूर करे, उसे क़त्ल कर दे । मुझसे पूछने की ज़रूरत नहीं ।

रूमी—दुश्मन के साथ मुतलक़ रियायत की ज़रूरत नहीं । ज़ियाद को चाहिए कि तलवार का इस्तेमाल करने में दरेग़ न करे ।

हुर—मुझे ख़ौफ़ है कि बग़ावत हो जायगी ।

रूमी—सज़ा और सख्ती यही हुकूमत के दो गुर हैं । मेरी उम्र बादशाहत के इन्तज़ाम ही में गुज़री है, इससे बेहतर और कारगर कोई तदबीर न नज़र आयी । खुदा को भी अपना निज़ाम क़ायम रखने के लिए दोज़ख़ की ज़रूरत पड़ी । दोज़ख़ का ख़ौफ़ ही दुनिया को आबाद रखे हुए है । उसका रहम और इन्साफ़ फ़क़ीरों और बेकसों की तसकीन के लिए है । ख़ौफ़ ही सल्तनत की बुनियाद है । नरमी से सल्तनत का वक़ार मिट जाता है, लोग सरकश हो जाते हैं, फ़साद का बाज़ार गर्म हो जाता है । ज़ियाद से

कहना, क़त्ल करो और इस तरह क़त्ल करो कि देखनेवालों के दिल थर्रा जायँ। तीरों से छिदवाओ, कुत्तों से नुचवाओ, ज़िन्दा खाल खिंचवाओ, लाल लोहे से दाग़ दो। जो हुसैन का नाम ले, उसकी ज़बान तालू से खींच ली जाय। वह सज़ा सज़ा नहीं, जो सख़्त न हो।

यज़ीद—मैं इस हुक्म की ताईद करता हूँ। जा, और फिर ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए मेरे आराम में बाधा न डालना।

[क़ासिद का प्रस्थान।]

हुसैन का कूफ़ा आना मेरे लिए मौत के आने से कम नहीं। क़सम है आँखों की, वह कूफ़ा न आने पायेगा, अगर मेरा बस है।

शम्स—ताज्जुब यही है कि कूफ़ावालों ने तीन क़ासिद भेजे, और हुसैन जाने पर राज़ी नहीं हुए।

यज़दी—तैयारियाँ कर रहा होगा। वलीद अगर मेरे चचा का बेटा न होता, तो मैं अपने हाथों से उसकी आँखें निकाल लेता। उसने जान-बूझकर हुसैन को मक्का जाने दिया। मदीना ही में क़त्ल कर देता, तो मुझे आज इतनी परेशानी क्यों होती। कौन जाकर उसे गिरफ़्तार कर सकता है?

हुर—मैं इस ख़िदमत के लिए हाज़िर हूँ।

यज़ीद—अगर तुम यह काम पूरा कर दिखाओ, तो इसके सिले में मैं तुम्हें एक सूबा दूँगा, जिस पर जन्नत भी फ़िदा हो। मेरी फ़ौज से एक हज़ार चुने हुए आदमी ले लो, और जब आफताब निकले, तो तुम्हें यहाँ से बीस फ़र्सख़ पर देखें।

हुर—इंशाअल्लाह!

यज़ीद—जैसे शिकारी शिकार की तलाश करता है, उसी तरह हुसैन की तलाश करना। बीहड़ रास्ते, अँधेरी घाटियाँ, घने जंगल, रेतीले मैदान, सब छान डालना। दिन की फ़िक्र नहीं, पर रात को अपनी आँखों से नींद को यों भगा देना, जैसे कोई दीनदार आदमी अपने दरवाज़े से कुत्ते को भगाता है।

हुर—हुक्म की तामील करूँगा। (स्वगत) यज़ीद बदकार है, बेदीन

है, शराबी है; मगर खिलाफ़त को सँभाले हुए तो है। हुसैन की बैयत मुसलमानों में दुश्मनी पैदा कर देगी, खून का दरिया बहा देगी, और खिलाफ़त का निशान मिटा देगी। खिलाफ़त क़ायम करना व देखना मेरा पहला फ़र्ज़ है। खलीफ़ा कौन और कैसा हो, यह बाद को देखा जायगा।

[हुर का प्रस्थान।]

यज़ीद—नरगिस, रंदों में एक जाहिद था, वह खिसका, अब कोई मस्त करनेवाली ग़ज़ल गाओ। काश सल्तनत की फ़िक्र न होती, तो तुम्हारे हाथों शराब के प्याले पीता उम्र गुज़ार देता।

नर०—खौफ़ से काँपती हुई बुलबुल मस्ताना ग़ज़लें नहीं गा सकती। शाख़ पर है, तो उड़ जायगी, क़फ़स में है, तो मर जायगी। मैंने खौफ़ से गुलशन को आबाद होते नहीं, वीरान होते देखा है। मेरा वतन कूफ़ा है, और मैं कूफ़ियों को खूब जानती हूँ। उन पर सख्तियाँ करके आप हुसैन को बुला रहे हैं। हुसैन कूफ़े में दाखिल हो गये, तो फिर आप हमेशा के लिए इराक़ से हाथ धो बैठेंगे। कूफ़ावाले रियायतों से, जागीरों से, वज़ीफ़ों से, थपकियों से क़ाबू में आ सकते हैं, सख़्ती से नहीं। अगर एतबार न हो, तो मुझ पर अपनी ताक़त आजमा लो। अगर तुम्हारी दसों उँगलियाँ दस तलवारें हो जायँ, तो भी आप मेरे मुँह से एक सुर भी नहीं निकलवा सकते। कूफ़ा मुसीबत में मुब्तिला है, मैं यहाँ नहीं रह सकती।

[प्रस्थान।]

तीसरा दृश्य

[कूफ़ा की अदालत—क़ाज़ी और अमले बैठे हुए हैं। क़ाज़ी के सिर पर अमामा है, बदन पर कबा, कमर में कमरबंद, सिपाही नीचे कुरते पहने हुए हैं। अदालत से कुछ दूर पर एक मस्जिद है। मुक़द्दमे पेश हो रहे हैं। कई आदमी एक शरीफ़ आदमी की मुश्कें कसे लाते हैं।]

क़ाज़ी—इसने क्या खता की है?

ए० आ०—हुज़ूर, यह आदमी मस्जिद में खड़ा लोगों से कह रहा था कि किसी को फ़ौज में न दाख़िल होना चाहिए।

क़ाज़ी—गवाह है ?

ए० सि०—हुज़ूर, मैंने अपने कानों सुना है।

क़ाज़ी—इसे ले जाकर क़त्ल कर दो।

मुल०—हुज़ूर, बिल्कुल बेगुनाह हूँ। ये दोनो सिपाही मेरी दूकान से कपड़े उठाये लेते थे। मैंने छीन लिया, इस पर इन्होंने मुझे पकड़ लिया। हुज़ूर मेरे पड़ोस के दूकानदारों से पूछ लें। बेगुनाह मारा जा रहा हूँ। मेरे बाल-बच्चे तबाह हो जायँगे।

क़ाज़ी—इसे यहाँ से हटाओ।

मुल०—(चिल्लाकर) या रसूल, तुम क़यामत के लिए मेरा और इस क़ातिल का फ़ैसला करना।

[दोनो सिपाही उसे ले जाते हैं। मस्जिद की तरफ़ से आवाज़ आती है—]

"या खुदा हम बेकस तेरी बारगाह में फ़रियाद करने आये हैं। हमें ज़ालिम के फन्दे से आज़ाद कर।"

[चार सिपाही १५-२० आदमियों की मुश्कें कसे कोड़े मारते हुए लाते हैं।]

क़ाज़ी—इन पर क्या इलज़ाम है ?

ए० सि०—हुज़ूर, ये उन आदमियों में हैं, जिन्होंने हुसैन के पास क़ासिद भेजे थे।

क़ाज़ी०—संगीन जुर्म है। कोई गवाह ?

ए० सि०—हुज़ूर, कोई गवाह नहीं मिलता। शहरवालों के डर के मारे कोई गवाही देने पर राज़ी नहीं होता।

क़ा०—इन्हें हिरासत में रखो, और जब गवाह मिल जायँ, तो फिर पेश करो।

[सिपाही उन आदमियों को ले जाते हैं। फिर दो सिपाही एक औरत की दोनो कलाइयाँ बाँधे हुए लाते हैं।]

क़ा०—इस पर क्या इलज़ाम है ?

ए० सि०—हुज़ूर, जब हम लोग उन मुलज़िमों को गिरफ्तार कर रहे थे, जो अभी गये हैं, तो इसने ख़लीफ़ा को ज़ालिम कहा था।

क़ा०—गवाह ?

ए० औरत—हुज़ूर, ख़ुदा इसका मुँह न दिखाए, बड़ी बदज़बान है।

क़ा०—इसका मकान ज़ब्त कर लो, और इसके सर के बाल नोच लो।

मु० औ०—ख़ुदाबंद, मेरी आँखें फूट जायँ, जो मैंने किसी को कुछ कहा हो। यह औरत मेरी सौत है। इसने डाह से मुझे फँसा दिया है। ख़ुदा गवाह है कि मैं बेक़सूर हूँ।

क़ा०—इसे फ़ौरन् ले जाओ।

एक युवक—(रोता हुआ) या क़ाज़ी, मेरी मा पर इतना ज़ुल्म न कीजिए। आप भी तो किसी मा के बच्चे हैं। अगर कोई आपकी मा के बाल नोचवाता, तो आपके दिल पर क्या गुजरती ?

क़ा०—इस मलऊन को पकड़कर दो सौ दुर्रे लगाओ।

[कई सिपाही आदमियों के गोल को बाँधे हुए लाते हैं।]

क़ा०—इन्होंने ख़ुदा के किस हुक्म को तोड़ा है ?

ए० सि०—हुज़ूर, ये सब आदमी सामनेवाली मस्जिद में खड़े होकर रो रहे थे।

क़ा०—रोना कुफ़्र है। इन सबों की आँखें फोड़ डाली जायँ।

[सैकड़ों आदमी मस्जिद की तरफ़ से तलवारें और भाले लिये दौड़े आते हैं, और अदालत को घेर लेते हैं।]

सुलेमान—क़त्ल कर दो इस मरदूद मक्कार को, जो अदालत के मसनद पर बैठा हुआ अदालत का ख़ून कर रहा है।

मूसा—नहीं, पकड़ लो। इसे ज़िन्दा जलायेंगे।

[कई आदमी क़ाज़ी पर टूट पड़ते हैं।]

क़ा०—शरा के मुताबिक़ मुसलमान पर मुसलमान का ख़ून हराम है।

सुले०—तू मुसलमान नहीं है! इन सिपाहियों में से एक भी न जाने पाये।

ए० सि०—या सुलेमान, हमारी क्या खता है ? जिस आक़ा के ग़ुलाम हैं, उसका हुक्म न मानें, तो रोटियाँ क्योंकर चलें ?

मू०—जिस पेट के लिए तुम्हें खुदा के बन्दों को ईज़ा पहुँचानी पड़े, उसको चाक कर देना चाहिए।

[सिपाहियों और बाग़ियों में लड़ाई होने लगती है।]

सुले०—भाइयो, आपने इन ज़ालिमों के साथ वही सलूक किया, जो वाजिब था, मगर भूल न जाइए कि ज़ियाद इसकी इत्तिला यज़ीद को ज़रूर देगा, और हमें कुचलने के लिए शाम से फ़ौज आयेगी। आप लोग उसका मुक़ाबला करने को तैयार हैं ?

एक आवाज़—अगर तैयार नहीं हैं, तो हो जायँगे।

सुले०—हमने अभी तक यज़ीद की बैयत नहीं क़बूल की, और न करेंगे। इमाम हुसैन की ख़िदमत में बार-बार क़ासिद भेजे गये, मगर वह तशरीफ़ नहीं लाये। ऐसी हालत में हमें क्या करना चाहिए ?

हानी—हममें से चन्द खास आदमी खुद जायँ, और उन्हें साथ लायें।

मुख़्तार—हम लोगों ने रसूल की औलाद के साथ बार-बार ऐसी दग़ा की है कि हमारा एतबार उठ गया। मुझे ख़ौफ़ है कि हज़रत हुसैन यहाँ हर्गिज़ न आयेंगे।

सुले०—एक बार आख़िरी कोशिश करना हमारा फ़र्ज़ है। हम लोग चलकर उनसे अर्ज़ करें कि हम क़त्ल किये जा रहे हैं, लूटे जा रहे हैं, हमारी औरतों की आबरू भी सलामत नहीं। हमारी मुसीबत की कहानी सुनकर हुसैन को ज़रूर तरस आयेगा, उनका दिल इतना सख़्त नहीं हो सकता।

मुख़्तार—मगर वह तुम्हारी मुसीबतों पर तरस खाकर आये, और तुमने उनकी मदद न की, तो सब-के-सब रूस्याह कहलाओगे। हमने पहले जो दग़ाएँ की हैं, उनका फल पा रहे हैं, और फिर वही हरक़त की, तो हम दुनिया और दीन में कहीं भी मुँह न दिखा सकेंगे। खूब सोच लो, आख़ीर तक तुम अपने ईरादे पर क़ायम रह सकोगे ? अगर तुम्हारा दिल हामी भरे,

तो मैं दावे से कह सकता हूँ कि उन्हें खींच लाऊँगा। लेकिन अगर तुम्हारे दिल कच्चे हैं, तुम अपनी जानें निसार करने को तैयार नहीं हो, अगर तुम्हें ख़ौफ़ है कि तुम लालच के शिकार बन जाओगे, तो तुम उन्हें मक्के में पड़ा रहने दो।

हज्जाज़—खुदा की क़सम, हम उनके पैरों पर अपनी जानें निछावर कर देंगे।

हारिस—हम अपनी बदनामी के दाग़ मिटा देंगे।

मुख़्तार—खुदा को हाज़िर जानकर वादा करो कि अपने क़ौल पर क़ायम रहोगे।

कई आदमी एक साथ—अल्लाहोअकबर! हम हुसैन पर फ़िदा हो जायँगे।

सुले०—तो मैं उनकी ख़िदमत में ख़त लिखता हूँ।

[ख़त लिखता है।]

हज्जाज—इतना ज़रूर लिख देना कि हम आपके नाना मुहम्मद मुस्तफ़ा का वास्ता देकर आपसे अर्ज़ करते हैं कि हमारे ऊपर रहम कीजिए।

हारिस—यह और लिख देना कि हम बेशुमार अर्ज़ियाँ आपकी ख़िद-मत में भेज चुके, और आप तशरीफ़ न लाये। अगर आप अब भी न आये, तो हम कल क़यामत के रोज़ रसूल के हज़ूर में आपका दामन पकड़ेंगे।

हज्जाज़—और कहेंगे, या खुदा, हुसैन ने हम पर ज़ुल्म किया था। क्योंकि हम पर ज़ुल्म होते देखकर वह ख़ामोश बैठे रहे, तो उस वक्त आप क्या जवाब देंगे, और रसूल को क्या मुँह दिखायेंगे।

कीस—मेरे क़बीले में एक हज़ार जवान हैं, जो हुसैन के इन्तज़ार में बैठे हुए हैं।

हज्जाज़—शायद शाम तक ज़ियाद कुछ आदमी जमा कर ले।

हारिस—अभी वह ख़ामोश रहेगा। यज़ीद की फ़ौज आ जायगी, तब हमारे ऊपर हमला करेगा।

शिमर—क्यों न लगे हाथ उसका भी ख़ातमा कर दें, क़िस्सा पाक हो?

हारिस—वाह, अब तक वह यहाँ बैठा होगा।

सुले०—मैंने सारी दास्तान लिख दी। कौन इस ख़त को ले जायगा?

शिमर—मैं हाज़िर हूँ।

सुले०—किसके पास ऐसी साँड़नी है, जो थकना न जानती हो, जो इस तरह दौड़ सकती हो, जैसे ज़ियाद लूट के माल की तरफ़?

एक युवक—मेरे पास ऐसी साँड़नी है, जो तीन दिन में इस ख़त का जवाब ला सकती है। यह ख़िदमत बजा लाने का हक़ मेरा है, क्योंकि मुझसे ज़्यादा मज़लूम और कोई न होगा, जिसकी मा के बाल क़ाज़ी के हुक्म से अभी-अभी नोचे गये हैं।

सुले०—बेशक, तुम्हारा हक़ सबसे ज़्यादा है। यह ख़त लो, और इसके पहले कि हमारा पसीना ठंडा हो, मक्का की तरफ़ रवाना हो जाओ।

[युवक चला जाता है।]

आइए, हम लोग मस्जिद में नमाज़ अदा कर लें। ख़त का जवाब तीन दिन में आयेगा। हज़रत हुसैन के आने में अभी एक महीने की देर है। ज़ियाद भी शायद उसके पहले नहीं लौट सकता। ये दिन हमें अपनी तैयारियों में सर्फ़ करने चाहिए, क्योंकि यज़ीद की ख़िलाफ़त का फ़ैसला कूफ़ा में होगा। या तो वह ख़िलाफ़त के मसनद पर बैठेगा, या जाहिलों की इबादत का मज़ार बनेगा। अगर कूफ़ा ने ख़िलाफ़त को नबी के ख़ानदान में वापस कर दिया, तो उसका नाम हमेशा रोशन रहेगा।

[सब जाते हैं।]

चौथा दृश्य

[स्थान—काबा, मरदाना बैठक। हुसैन, ज़ुबेर, अब्बास, मुस्लिम, अली असग़र आदि बैठे दिखाई देते हैं।]

हुसैन—यह पाँचवीं सफ़ारत है। एक हज़ार से ज़्यादा ख़तूत आ चुके हैं। उन पर दस्तख़त करनेवालों की तादाद पन्द्रह हज़ार से कम नहीं है।

मु०—और सभी बड़े-बड़े क़बीलों के सरदार हैं। सुलेमान, हारिस, हज्जाज़, शिमर, मुख़्तार, हानी, ये मामूली आदमी नहीं हैं।

जुबेर—मैं तो अर्ज़ कर चुका कि मुसल्लम इराक़ आपकी बैयत क़बूल करने के लिए बेक़रार है।

हुसैन—मुझे तो अभी तक उनकी बातों पर एतबार नहीं होता। ख़ुदा जाने, क्यों मेरे दिल में उनकी तरफ़ से दग़ा का शुबहा घुसा हुआ है। मुझे हबीब की बातें नहीं भूलतीं, जो उसने चलते-चलते कही थीं।

मु०—गुस्ताख़ी तो है, पर आपका उन पर शक करना बेजा है। आख़िर आप उनकी वफ़ादारी का और क्या सबूत चाहते हैं ? वे क़समें खाते हैं, वादे करते हैं, साफ़ लिखते हैं कि आपकी मदद के लिए बीस हज़ार सूरमा तैयार बैठे हुए हैं। अब और क्या चाहिए ?

जुबेर—कम-से-कम मैं तो ऐसे सबूत पाकर पल की भी देर न करता।

अब्बास—मुझे तो इन कूफ़ियों पर उस वक्त भी एतबार न आयेगा, अगर उनके बीसों हज़ार आदमी यहाँ आकर आपकी बैयत की क़सम खा लें। अगर वह क़ुरान शरीफ़ हाथ में लेकर क़समें खायें, तो भी मैं उनसे दूर भागूँ।

[तारिक आता है।]

तारिक—अस्सलाम अलेक या हुसैन।

हुसैन—खुदा तुम पर रहमत करे। कहाँ से आ रहे हो ?

तारिक—कूफ़ा के मज़लूमों ने अपनी फ़रियाद सुनाने के लिए आपकी ख़िदमत में भेजा है। आफ़ताब डूबते चला था, और आफ़ताब डूबते आया हूँ, और आफ़ताब निकलने के पहले यहाँ से जाना है।

मु०—हवा पर आये हो या तख़्तए-सुलेमान पर ? क़सम है पाक रसूल की कि मैं उस घोड़े के लिए पाँच हज़ार दीनार पेश कर सकता हूँ।

तारिक—हुज़ूर, घोड़ी नहीं, साँड़नी है, जो सफ़र में खाना और थकना नहीं जानती।

[हुसैन के हाथ में ख़त देता है।]

हुसैन—(ख़त पढ़कर) आह, कितना दर्द-भरा हुआ ख़त है। जालिमों

ने दिल निकालकर रख दिया। यह कितना ग़ज़ब का जुमला है कि अगर आप न आयेंगे, तो हम आक़बत में आपसे इन्साफ़ का दावा करेंगे। आह! उन्होंने नाना का वास्ता दिया है। मैं नाना के नाम पर अपनी जान को यों फ़िदा कर सकता हूँ, जैसे कोई हरीस अपना ईमान फ़िदा कर देता है। इतना ज़ुल्म! इतनी सख़्ती! दिन दहाड़े लूट!! दिन दहाड़े औरतों की बेआबरूई! ज़रा-ज़रा-सी बातों पर लोगों का क़त्ल किया जाना! अब्बास, अब मुझे सब्र की ताब नहीं है। मैं अपने बैयत के लिए हर्गिज़ न जाता, पर मुसीबतज़्दों की हिमायत के लिए न जाऊँ, यह मेरी ग़ैरत गवारा नहीं करती।

मु०—या बिरादर, आप इसका कुछ ग़म न करें, मैं इसी क़ासिद के साथ वहाँ जाऊँगा, और वहाँ की कैफ़ियत की इत्तिला दूँगा। मेरा ख़त देखकर आप मुनासिब फ़ैसला कीजिएगा।

हुसैन—तब तक यज़ीद उन ग़रीबों पर ख़ुदा जाने क्या-क्या सितम ढाये। उसका अज़ाब मेरी गर्दन पर होगा। सोचो, जब क़यामत के दिन वे लोग फ़रियादी होंगे, तो मैं नाना को क्या मुँह दिखाऊँगा। वह जब मुझसे पूछेंगे कि तुझे जान इतनी प्यारी थी कि तूने मेरे बंदों पर ज़ुल्म होते देखे, और ख़ामोश बैठा रहा, उस वक़्त मैं उन्हें क्या जवाब दूँगा। मुस्लिम, मेरा जी चाहता है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ।

मु०—मुझे तो इसका यक़ीन है कि सुलेमान-जैसा आदमी कभी दग़ा नहीं कर सकता।

ज़ुबेर—हर्गिज़ नहीं।

मु०—पर मैं यही मुनासिब समझता हूँ कि पहले वहाँ जाकर अपना इतमीनान कर लूँ।

हुसैन—बच्चों को ग़ैब का इल्म होता है। इसका फ़ैसला अली असग़र पर छोड़ दिया जाय। क्यों बेटा, मैं भी मुस्लिम के साथ जाऊँ, या उनके ख़त का इन्तज़ार करूँ?

अली अस०—नहीं अब्बाजान, अभी मुस्लिम चचा ही को जाने दीजिए। आप चलेंगे, तो कई दिन तैयारियों में लग जायेंगे। ऐसा न हो, इतने दिनों में वे बेचारे निराश हो जायँ।

अब्बास—बेटा, तेरी उम्र दराज़ हो। तूने खूब फ़ैसला किया। खुदा तुझे बुरी नज़र से बचाये।

हुसैन—अच्छी बात है, मुस्लिम, तुम सवेरे रवाना हो जाओ। अपने साथ पाँच ग़ुलाम लेते जाओ। रास्ते में शायद इनकी ज़रूरत पड़े। मैं कूफ़ावालों के नाम यह खत लिख देता हूँ, उन्हें दिखा देना। इंशा अल्लाह, हम तुमसे जल्दी ही मिलेंगे। वहाँ बड़ी एहतियात से काम लेना, अपने को छिपाये रखना, और किसी ऐसे आदमी के घर उतरना, जो सबसे ज्यादा एतबार के लायक़ हो। मेरे पास एक खत रोज़ाना भेजना।

मु०—खुदा से दुआ कीजिए कि वह मेरी हिदायत करे। मैं बड़ी भारी ज़िम्मेदारी लेकर जा रहा हूँ। सुबह की नमाज़ पढ़कर मैं रवाना हो जाऊँगा। तब तक तारिक की साँड़नी भी आराम कर लेगी।

[हुसैन खत लिखकर मुस्लिम को देते हैं। मुस्लिम दरवाज़े की तरफ़ चलते हैं।]

हुसैन—**(मुस्लिम के साथ दरवाज़े तक आकर)** रात तो अँधेरी है।

मु०—उम्मीद की रोशनी तो दिल में है।

हुसैन—**(मुस्लिम से बग़लगीर होकर)** अच्छा भैया, जाओ। मेरा दिल तुम्हारे साथ रहेगा। जो कुछ होनेवाला है, जानता हूँ। इसकी खबर मिल चुकी है। तक़दीर से कोई चारा नहीं, नहीं जानता, यह तक़दीर क्या है! अगर खुदा का हुक्म है, तो छुपकर, सूरत बदलकर, दग़ाबाज़ों की तरह क्यों आती है। खुदा क्या साफ़ और खुले हुए अल्फ़ाज़ में अपना हुक्म नहीं भेजता। अपने बेकस बच्चों का शिकार टट्टी की आड़ से क्यों करता है? जाओ, कहता हूँ, पर जी चाहता है, न जाने दूँ। काश, तुम कह देते कि मैं न जाऊँगा। मगर तक़दीर ने तुम्हारी ज़बान बन्द कर रखी है। अच्छा, रुखसत। उम्मीद है कि अल्लाह हम दोनों को एक साथ शहादत का दर्जा देगा।

[मुस्लिम बाहर चला जाता है। हुसैन आँखें पोछते हुए हरम में दाखिल होते हैं।]

जैनब—भैया, आज फिर कोई क़ासिद आया था क्या?

हुसैन—हाँ जैनब, आया था। यज़ीद कूफ़ावालों पर बड़ा ज़ुल्म कर रहा है। मेरा वहाँ जाना लाज़िमी है। अभी तो मैंने मुस्लिम को वहाँ भेज

दिया है, पर ख़ुद भी बहुत जल्द जाना चाहता हूँ।

जैनब—आपने एकाएक क्यों अपनी राय बदल दी! कम-से-कम मुस्लिम के खत के आने का तो इन्तज़ार कीजिए। मैं तो आपको हर्गिज़ न जाने दूँगी। आपका वह ख़्वाब याद है, जो आपने रसूल की क़ब्र पर देखा था?

हुसैन—हाँ जैनब, खूब याद है, और इसी वजह से मैं जाने की जल्दी कर रहा हूँ। उस ख़्वाब ने मेरी तक़दीर को मेरे सामने खोलकर रख दिया। तक़दीर से बचने की भी कोई तदबीर है? खुदा का हुक्म भी टल सकता है? खिलाफ़त की तमन्ना को दिल से मिटा सकता हूँ, पर ग़ैरत को तो नहीं मिटा सकता, बेकसों की इमदाद से तो मुँह नहीं मोड़ सकता।

शहर०—आप जो कुछ करते हैं, उसमें खुदा और तक़दीर को क्यों खींच लाते हैं। जब आपको मालूम है कि कूफ़ा में लोग आपके साथ दग़ा करेंगे, तो वहाँ जाइए ही क्यों। तक़दीर आपको खींच तो न ले जायगी! बेकसों की इमदाद ज़रूर आपका और आप ही का नहीं, हरएक इन्सान का फ़र्ज़ है, लेकिन आपके कुनबे की भी तो कोई खबर लेनेवाला हो! इन्सान पर दुनिया से पहले खानदान का हक़ होता है।

हुसैन—ज़रा इस ख़त को पढ़ लो, और तब कहो कि मैंने जो फ़ैसला किया है, वह मुनासिब है या नहीं। **(शहरबानू के हाथ में ख़त देकर)** देखा! इससे क्या साबित होता है? लेकिन जितने आदमियों ने इस पर दस्तख़त किये हैं, उसके आधे भी मेरे साथ हो जायँगे, तो मैं यज़ीद का क़ाफ़िया तंग कर दूँगा। इस्लाम की खिलाफ़त इतना आला रुतबा है कि उसकी कोशिश में जान दे देना भी ज़िल्लत नहीं। जब मेरे हाथों में एक स्याहकार बेदीन आदमी को सज़ा देने का मौक़ा आया है, तो उससे फ़ायदा न उठाना परले सिरे की पस्तहिम्मती है। घर में आग लगते देखकर उसमें कूद पड़ना नादानी है, लेकिन पानी मिल रहा हो, तो उससे आग को न बुझाना उससे भी बड़ी नादानी है।

सकीना—मगर अब्बाजान, अब तो मुहर्रम का महीना आ रहा है। फूफीजान की बहुत दिनों से आरज़ू थी कि इस महीने में यहाँ रहतीं।

हुसैन—तुम लोगों को ले जाने का मेरा इरादा नहीं है।

जैनब—भैया, ऐसा भी हो सकता है कि आप वहाँ जायँ, और हम यहाँ रहें ! खुदा जाने, कैसी पड़े, कैसी न पड़े ।

सकीना—अब्बाजान दिल्लगी करते हैं, और आप लोग सच समझ गयीं ।

कुलसूम—और कोई चले, चाहे न चले, मैं तो ज़रूर ही जाऊँगी । मेरे दिल से लगी हुई है कि एक बार यज़ीद को खूब आड़े हाथों लेती ।

सकीना—मैं अपनी फ़तह का कसीदा लिखने के लिए बेताब हूँ ।

शहर०—आप समझते हैं कि हमारे साथ रहने से आपको तरद्दुद होगा, पर मैं पूछती हूँ, आपको वहाँ फँसाकर दुश्मनों ने इधर हमला कर दिया, तो हमारी हिफ़ाजत की फ़िक्र आपको चैन लेने देगी ?

जैनब—असग़र हुड़क-हुड़ककर जान दे देगा ।

सकीना—हम अपने ऊपर इस बदनामी का दाग़ नहीं लगा सकतीं कि रसूल के बेटों ने तो इस्लाम की हिमायत में जान दी, और बेटियाँ हरम में बैठी रहीं ।

हुसैन—(स्वगत) शहरबानू ने मार्के की बात कही, अगर दुश्मनों ने हरम पर हमला कर दिया, तो हम वहाँ बैठे-बैठे क्या करेंगे । इन्हें यहाँ छोड़ देना अपने क़िले की दीवार में शिग़ाफ़ कर देने से कम ख़तरनाक नहीं । (प्रकट) नहीं, मैं तुम लोगों पर ज़ब्र नहीं करता, अगर चलना चाहती हो, शौक़ से चलो ।

पाँचवाँ दृश्य

[यज़ीद का दरबार । मुआविया बेड़ियाँ पहने हुए बैठा हुआ है । चार गुलाम नंगी तलवारें लिये उसके चारों तरफ़ खड़े हैं । यज़ीद के तख़्त के क़रीब सरजून रूमी बैठा हुआ है ।]

मुआ०—(दिल में) नबी की औलाद पर यह जुल्म ? मुझी से तो इसका बदला लिया जायगा । बाप का क़र्ज़ बेटे ही को तो अदा करना पड़ता है ! मगर मेरे खून से इस जुल्म का दाग़ न मिटेगा । हर्गिज़ नहीं, इस

ख़ानदान का निशान मिट जायगा। कोई फ़ातिहा पढ़नेवाला भी न रहेगा। आह! नबी की औलाद पर यह ज़ुल्म! जिनके क़दमों की ख़ाक आँखों में लगानी चाहिए थी उनके तबाही के सामान है। ऐ रसूल पाक, मैं बेगुनाह हूँ, (प्रकट) आप जानते है, मौलाना रूमी, कि वालिद का मुझे कब तक इन्तज़ार करना पड़ेगा?

रूमी—आते ही होंगे। ज़ियाद से कुछ बातें हो रही हैं।

मुआ०—वालिद मुझसे चाहते है कि मैं इस मार्के में शरीक हो जाऊँ, लेकिन अगर ज़ालिमों के हाथ से अख्तियार छीनने के लिए, हक़ की हिमायत के लिए यह पहलू अख्तियार किया जाता, तो सबसे पहले मेरी तलवार म्यान से निकलती, सबसे पहले मैं ज़िहाद का झंडा उठाता, पर हक़ का ख़ून करने के लिए मेरी तलवार कभी बाहर न निकलेगी, और मेरी ज़बान उस वक़्त तक मलामत करती रहेगी, जब तक वह तालू से खींच न ली जाय। नबी की मसनद पर, जिसने दुनिया को हिदायत का चिराग़ दिखलाया, जिसने इस्लामी क़ौम की बुनियाद डाली, उस शख्स को बैठने का मजाज़ नहीं है, जो दीन को पैरों-तले कुचलता हो, जो इन्सानियत के नाम को दाग़ लगाता हो, चाहे वह मेरा बाप ही क्यों न हो। इस्लाम का खलीफ़ा उसे होना चाहिए, जिस पर इन्सानियत को ग़रूर हो, जो दीनदार हो, हक़परस्त हो, बेदार हो, बेलौस हो, दूसरों के लिए नमूना हो, जो ताक़त से नहीं, फ़ौज से नहीं, अपने कमाल से, अपने सिफ़ात से दूसरों पर अपना वक़ार जमाए।

[यज़ीज, ज़ुहाक, ज़ियाद, शरीक, शम्स आदि आते हैं।]

यज़ीद—आप लोग देखिए, यह मेरा सपूत बेटा है, जो अपने बाप को कुत्ते से भी ज़्यादा नापाक समझता है। मेरी फूलों की सेज में यही एक काँटा है, मेरे नियामतों के थाल में यही एक मक्खी है। आप लोग इसे समझाएँ, इसे क़ायल करें; इसी लिए मैंने इसे यहाँ बुलाया है। इसको समझाइए कि खलीफ़ा के लिए दीनदारी से ज़्यादा मुल्कदारी की ज़रूरत है। दीन मुल्लाओं के लिए है, बादशाहों के लिए नहीं। दीनदारी और मुल्कदारी दो अलग-अलग चीज़े हैं, और एक ही ज़ात में दोनों का मेल मुमकिन नहीं।

मुआ०—अगर हुकूमत करने के लिए दीन और हक़ का खून करना ज़रूरी है, तो मैं गदागरी करने को उससे बेहतर समझता हूँ। मुल्कदारी की मंशा इन्साफ़ और सच्चाई की हिफ़ाज़त करना है, उसका खून करना नहीं।

यज़ीद—आप लोग सुनते हैं इसकी बातें। यह मुझे मुल्कदारी का सबक़ सिखा रहा है। इसके सिर से अभी सौदा नहीं उतरा। इसे फिर वहीं ले जाओ। ऐसे आदमी को आज़ाद रखना ख़तरनाक है, चाहे वह तख़्त का वारिस ही क्यों न हो। बाज़ हालतें ऐसी होती हैं, जब इन्सान को अपने ही से बचाना ज़रूरी होता है। दीवाने को न रोको, तो वह अपना गोश्त काट खाता है। (**ग़ुलाम मुआविया को ले जाते हैं**) ज़ियाद, अब तुम अपनी दास्तान कहो। जब तक तुम मुझे इसका यक़ीन न दिला दोगे कि तुम कूफ़ा से अपनी जान के ख़ौफ़ से नहीं, मेरे फ़ायदे के ख़याल से आये हो, मैं तुम्हें मुआफ़ न करूँगा। ऐसे नाज़ुक मौक़े पर जब शहर में बग़ावत का हंगामा गर्म हो, सल्तनत के हरएक मुलाज़िम का—चाहे वह सूबे का आमिल हो या शाही महल का दरबान—यही फ़र्ज़ है कि वह अपनी जगह पर आख़िर तक खड़ा रहे, चाहे उसका जिस्म तीरों से छलनी क्यों न हो जाय।

ज़ियाद—या ख़लीफ़ा, मैं अपने फ़र्ज़ से वाक़िफ़ हूँ, पर मैं सिर्फ़ यह अर्ज़ करने के लिए हाज़िर हुआ हूँ कि इस वक़्त रियाया पर सख़्ती करने से हालत और भी नाज़ुक हो जायगी। जब सल्तनत को किसी दूसरे मुद्दई का ख़ौफ़ हो, तो बादशाह को रियाया के साथ नरमी का बर्ताव करके उसे अपना दोस्त बना लेना मुनासिब है। बिगड़ी हुई रियाया तिनके की तरह है, जो एक चिनगारी से जल उठती है। मेरी अर्ज़ है कि हमें इस वक़्त रियाया का दिल अपने हाथ में कर लेना चाहिए, उसकी गरदनें एहसानों से दबा देनी चाहिए, ताकि वह सिर न उठा सके।

यज़ीद—मेरी फ़ौज बाग़ियों का सिर कुचलने के लिए काफ़ी है।

रूमी—नाज़ुक मौक़े पर अगर कोई चीज़ सल्तनत को बचा सकती है, तो वह सख़्ती है। शायद और किसी हालत में सख़्ती की इतनी ज़्यादा ज़रूरत नहीं होती।

ज़ुहाक—बादशाह की रियाया उसकी ज़ौजा की तरह है। ज़ौजा पर हम निसार होते हैं, उसके तलवे सुहलाते हैं, उसकी बलाएँ लेते हैं, लेकिन जब उसे किसी रक़ीब से मुख़ातिब होते देखते हैं, तो उस वक़्त उसकी बलाएँ नहीं लेते। हमारी तलवार म्यान से निकल आती है, और या तो रक़ीब की गरदन पर गिरती है या बीवी की गरदन पर, या दोनो की गरदनों पर।

रूमी—बेशक, कूफ़ा को कुचल दो, कूफ़ा का कोफ़्त कर दो।

यज़ीद—कूफ़ा को कोफ्त में डाल दो। यहाँ से जाते-ही-जाते फ़ौजी क़ानून जारी कर दो। एक हज़ार आदमियों को तैयार रखो। जो आदमी ज़रा भी गर्म हो, उसे फ़ौरन् क़त्ल कर दो। सरदारों को एकबारगी गिरफ़्तार कर लो, फ़ौज को रोज़ाना शहर में गश्त करने का हुक्म दो, सबकी ज़बान बन्द कर दो, यहाँ तक कि कोई शायर शेर न पढ़ने पाये, मस्जिदों में ख़ुतबे न होने पायें, मक़तबों में कोई लड़का न जाने पाये। रईसों को ख़ूब ज़लील करो। ज़िल्लत सबसे बड़ी सज़ा है!

[एक क़ासिद आता है।]

शम्स—कहाँ से आते हो?

क़ासिद—ख़लीफ़ा पर मेरा सलाम हो, मुझे मक्का के अमीर ने आपकी ख़िदमत में यह अर्ज़ करने को भेजा है कि हुसैन का चचेरा भाई मुस्लिम कूफ़ा की तरफ़ रवाना हो गया है।

यज़ीद—कोई ख़त भी लाया है?

क़ासिद—आमिल ने ख़त इसलिए नहीं दिया की कहीं मुझे दुश्मन गिरफ़्तार न कर लें।

यज़ीद—ज़ियाद, तुम इसी वक़्त कूफ़ा चले जाओ। तुम्हें मेरे सबसे तेज़ घोड़े को ले जाने का अख़्तियार है। अगर मेरा क़ाबू होता, तो तुम्हें हवा के घोड़े पर सवार करता।

ज़ियाद—ख़लीफ़ा पर मेरी जान निसार हो, मुझे इस मुहिम पर जाने से मुआफ़ रखिए। ज़ुहाक या शम्स को तैनात फ़रमाएँ।

यज़ीद—इसके मानी यह हैं कि मैं अपनी एक आँख फोड़ लूँ।

रूमी—आख़िर तुम क्या चाहते हो?

ज़ियाद—मेरा सवाल सिर्फ़ इतना है कि इस मौक़े पर रियाया के साथ मुलायमियत का बर्ताव किया जाय, सरदारों को जागीरें दी जायँ, उनके वज़ीफ़े बढ़ाये जायँ, यतीमों और बेवाओं की परवरिश का इंतज़ाम किया जाय। मैंने कूफ़ावालों की ख़सलत का ग़ौर से मुताला किया है, वे हयादार नहीं हैं, दिलेर नहीं हैं, दीनदार नहीं हैं। चंद ख़ास आदमियों को छोड़कर सब-के-सब लोभी और ख़ुदग़रज़ हैं, बात पर अड़ना नहीं जानते, शान पर मरना नहीं जानते, थोड़े-से फ़ायदे के लिए भाई-भाई का गला काटने पर आमादा हो जाते हैं। कुत्तों को भगाने के लिए लाठी से ज़्यादा आसान हड्डी का एक टुकड़ा होता है। सब-के-सब उस पर टूट पड़ते और एक-दूसरे को भंभोड़ खाते हैं। खलीफ़ा का ख़ज़ाना दस-बीस हजार दीनारों के निकल जाने से ख़ाली न हो जायगा, पर एक क़ौम हमारे हाथ आ जायगी। सख़्ती कमज़ोरों के हक़ में वही काम करती है, जो ऐंठन तिनकों के साथ। हम ऐंठन के बदले हवा के एक झोंके से तिनकों को बिखेर सकते हैं। फ़ौज से फ़ौज कुचली जा सकती है, एक क़ौम नहीं।

रूमी—मैं तो हमेशा सख़्ती का हामी रहा, और रहूँगा।

शरीक—कामिल हकीम वह है, जो मरीज़ के मिज़ाज के मुताबिक दवा में तबदीली करता रहे। आपने उस हकीम का क़िस्सा नहीं सुना, जो हमेशा फ़स्द खोलने की तजवीज़ किया करता था। एक बार एक दीवाने का फ़स्द खोलने गया। दीवाने ने हकीम की गरदन इतने ज़ोर से दबायी कि हकीम साहब की ज़बान बाहर निकल आयी। मुल्कदारी के आईन मौक़े और ज़रूरत के मुताबिक बदलते रहते हैं।

यज़ीद—ज़ियाद, मैं इस मुआमले में तुम्हें मुख़्तार बनाता हूँ। मुझे भी कुछ-कुछ अंदेशा हो रहा है कि कहीं हुसैन के वादे कूफ़ावालों को लुभा न लें। तुम जो मुनासिब समझो, करो, लेकिन याद रक्खो, अगर कूफ़ा गया, तो तुम्हारी जान उसके साथ जायगी। यह शर्त मंजूर है?

ज़ियाद—मंजूर है।

यज़ीद—हुर को ताक़ीद कर दो कि बहुत नमाज़ न पढ़े, और मुस्लिम को इस तरह तलाश करे, जैसे कोई बख़ील अपनी खोयी मुर्ग़ी को तलाश

करता है । तुम्हारी नरमी कमजोरों की नरमी नहीं होनी चाहिए, जिसे खुशामद कहते हैं। उसमें हुकूमत की शान क़ायम रहनी चाहिए। बस, जाओ।

[ज़ियाद शरीक और क़ासिद चले जाते हैं।]

ज़ुहाक—नरगिस को बुलाओ, ज़रा ग़म ग़लत करें। (गुलाब के हाथ से शराब का प्याला लेकर) यह मेरी फ़तह का जाम है ।

रूमी—मुबारक हो, (दिल में) ज़ियाद तुम्हें डुबा देगा, तब नरमी का मज़ा मालूम होगा।

[नरगिस ज़ुहाक की पीठ पर बैठी हुई आती है ।]

यज़ीद—शाबाश नरगिस, शाबाश, क्या खूब खच्चर है। इसकी कोई तशबीह (उपमा) देना शम्स ।

शम्स—मुर्ग़ के सिर पर ताज है ।

रूमी—लीद पर मक्खी बैठी हुई है ।

नरगिस—(गर्दन पर से कूदकर) लाहौल-बिला-कूवत ।

यज़ीद—वल्लाह, इस तशबीह से दिल खुश हो गया । नरगिस, बस इसी बात पर एक मस्ताना ग़ज़ल सुनाओ । खुदा तुम्हारे दीवानों को तुम पर निसार करे ।

नरगिस गाती है—

शबे-वस्ल वह रूठ जाना किसी का,
वह रूठे को अपने मनाना किसी का।
कोई दिल को देखे न तिरछी नज़र से,
खता कर न जाये निशाना किसी का।
अभी थाम लोगे तुम अपने जिगर को,
सुनो तो सुनाएँ फ़िसाना किसी का।
ज़रा देख ले चल के सैयाद तू भी,
कि उठता है अब आब-दाना किसी का।
वह कुछ सोचकर हो लिये उसके पीछे,
जनाज़ा हुआ जब रवाना किसी का।

बुरा वक्त जिस वक्त आता है 'बिस्मिल',
नहीं साथ देता ज़माना किसी का।
[परदा गिरता है ।]

छठा दृश्य

[संध्या का समय । सूर्यास्त हो चुका है । कूफ़ा का शहर—कई सारवान ऊँट का गल्ला लिये दाखिल हो रहे हैं ।]

पहला—यार, गलियों से चलना, नहीं तो किसी सिपाही की नज़र पड़ जाय, तो महीनों बेगार झेलनी पड़े ।

दूसरा—हाँ-हाँ, वे बला के मूज़ी हैं । कुछ लादने को नहीं होता, तो यों ही बैठ जाते हैं, और दस-बीस कोस का चक्कर लगाकर लौट आते हैं । ऐसा अंधेर पहले कभी न होता था । मजूरी तो भाड़ में गयी, ऊपर से लात और गालियाँ खाओ ।

तीसरा—यह सब महज़ पैसे आँटने के हथकंडे हैं । न-जाने कहाँ के कुत्ते आके सिपाह में दाखिल हो गये । छोटे-बड़े एक ही रंग में रँगे हुए हैं ।

चौथा—अमीर के पास फ़रियाद लेकर जाओ, तो उलटे और बौछार पड़ती है । अजीब मुसीबत का सामना है । हज़रत हुसैन जब तक न आयेंगे, हमारे सिर से यह बला न टलेगी ।

[मुस्लिम पीछे से आते हैं ।]

मु०—क्यों यारो, इस शहर में कोई खुदा का बंदा ऐसा है, जिसके यहाँ मुसाफिरों को ठहरने की जगह मिल जाय ?

पहला—यहाँ के रईसों की कुछ न पूछो । कहने को दो-चार बड़े आदमी हैं, मगर किसी के यहाँ पूरी मजूरी नहीं मिलती । हाँ, ज़रा गालियाँ कम देते हैं ।

मु०—सारे शहर में एक भी सच्चा मुसलमान नहीं है ?

दूसरा—जनाब, यहाँ कोई शहर के क़ाज़ी तो हैं नहीं, हाँ, मुख्तार की निस्बत सुनते हैं कि बड़े दीनदार आदमी हैं। हैसियत तो ऐसी नहीं, मगर खुदा ने हिम्मत दी है। कोई ग़रीब चला जाय, तो भूखों न लौटेगा।

तीसरा—सुना है, उनकी जागीर जब्त कर ली गयी है।

मु०—यह क्यों ?

तीसरा—इसी लिए कि उन्होंने अब तक यज़ीद की बैयत नहीं ली।

मु०—तुममें से मुझे कोई उनके घर तक पहुँचा सकता है ?

चौथा—जनाब, यह ऊँटनियों के दुहने का वक्त है; हमें फ़ुरसत नहीं। सीधे चले जाइए, आगे लाल मस्जिद मिलेगी, वहीं उनका मकान है।

मु०—खुदा तुम पर रहमत करे। अब चला जाऊँगा।

[**परदा बदलता है। मस्जिद के क़रीब मुख़्तार का मकान**]

मु०—(**एक बुड्ढे से**) यही मुख़्तार का मकान है न ?

बुड्ढा—जी हाँ, ग़रीब ही का नाम मुख्तार है। आइए, कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं ?

मु०—मक्केशरीफ़ से।

मुख़०—(**मुस्लिम के गले से लिपटकर**) मुआफ़ कीजिएगा। बुढ़ापे की बीनाई शराबी की तोबा की तरह कमज़ोर होती है। आज बड़ा मुबारक दिन है। बारे हज़रत ने हमारी फ़रियाद सुन ली खैरियत से हैं न ?

मु०—(**घोड़े से उतरकर**) जी हाँ, सब खुदा का फ़ज़ल है।

मुख़०—खुदा जानता है, आपको देखकर आँखें शाद हो गयीं। हज़रत का इरादा कब तक आने का है ?

मु०—(**खत निकालकर मुख़्तार को देते हैं**) इसमें उन्होंने सब कुछ मुफ़स्सल लिख दिया है।

मुख०—(**खत को छाती और आँख से लगाकर पढ़ता है**) खुशनसीब कि हज़रत के क़दमों से यह शहर पाक होगा। मेरी बैयत हाज़िर है, और मेरे दोस्तों की तरफ़ से भी कोई अंदेशा नहीं।

[ग़ुलाम को बुलाता है ।]

ग़ुलाम—जनाब ने क्यों याद फ़रमाया ?

मुख़्त०—देखो, इसी वक़्त हारिस, हज्जाज, सुलेमान, शिमर, क़ीस, शैस और हानी के मकान पर जाओ, और मेरा यह रुक्क़ा दिखाकर जवाब लाओ ।

[ग़ुलाम रुक्क़ा लेकर चला जाता है ।]

पहले मुझे ऐसा मालूम होता था कि हज़रत का कोई क़ासिद आयेगा, तो मैं शायद दीवाना हो जाऊँगा, पर इस वक़्त आपको सामने देखकर भी ख़ामोश बैठा हुआ हूँ । किसी शायर ने सच कहा है—'जो मज़ा इन्तज़ार में देखा, वह नहीं वस्ले-यार में देखा ।' जन्नत का ख़याल कितना दिलफ़रेब है, पर शायद उसमें दाखिल होने पर इतनी ख़ुशी न रहे । आइए, नमाज़ अदा कर लें । इसके बाद कुछ आराम फ़रमा लीजिए । फिर दम मारने की फ़ुरसत न मिलेगी ।

[दोनो मकान के अन्दर चले जाते हैं । परदा बदलता है । मुस्लिम और मुख़्तार बैठे हुए हैं ।]

मु०—कितने आदमी बैयत लेने के लिये तैयार हैं ?

मुख़्त०—देखिए, सब अभी आ जाते हैं । अगर यज़ीद की जानिब से ज़ुल्म और सख़्ती इसी तरह होती रही, तो हमारे मददगारों की तादाद दिन-दिन बढ़ती जायगी । लेकिन कहीं उसने दिलजोई शुरू कर दी, तो हमें इतनी आसानी से कामयाबी न होगी ।

[सुलेमान का प्रवेश ।]

सुले०—अस्सलामअलेक हज़रत मुस्लिम, आपको देखकर आँखें रोशन हो गयीं; मेरे क़बीले के सौ आदमी बैयत लेने को हाज़िर हैं । और सब-के-सब अपनी बात पर मिटनेवाले आदमी हैं ।

मु०—आपको ख़ुदा नजात दे । इन आदमियों से कहिए, कल जामा मस्जिद मे जमा हों । आपका ख़त पढ़कर भैया को बहुत रंज हुआ । उन्होंने तो फैसला कर लिया था कि रसूल के मज़ार पर बैठे हुए ज़िन्दगी गुज़ार दें, पर आपके आख़िरी ख़त ने उन्हें बेक़रार कर दिया । सायल की हिमायत से वह कभी मुँह नहीं मोड़ सकते ।

[शैस, कीस, शिमर, साद और हज्जाज का प्रवेश ।]

शैस०—अस्सलामअलेक हज़रत, आपको देखकर जिगर ठंडा हो गया।

क़ीस—अस्सलामअलेक, आपके क़दमों से हमारे वीरान घर आबाद हो गये।

हज्जाज—अस्सलामअलेक, आपको देखकर हमारे मुर्दा तन में जान आ गयी।

मु०—(सबसे गले मिलकर) हज़रत इमाम ने मुझे यह ख़त देकर आपकी ख़िदमत में भेजा है।

[शिमर ख़त लेकर ऊँची आवाज़ से पढ़ता है, और सब लोग सिर झुकाये सुनते हैं ।]

शैस—हमारे ज़हे-नसीब, मैं तो अभी दस्तरख़्वान पर था। ख़बर पाते ही आपकी ज़ियारत करने दौड़ा।

हज्जाज—मैं तो अभी-अभी बसरे से लौटा हूँ, दम भी न मारने पाया था कि आपके तशरीफ़ लाने की खबर पायी। मेरे क़बीले के बहुत-से आदमी बैयत लेने को बाहर खडे हैं।

मु०—उन्हें कल जामा मस्जिद में बुलाइए।

शिमर—वह कौन-सा दिन होगा कि मलऊन यज़ीद के ज़ुल्म से नजात होगी।

शैस—हज़रत हुसैन ने हम ग़रीबों की आवाज सुन ली। अब हमारे बुरे दिन न रहेंगे।

क़ीस—हमारी क़िस्मत के सितारे अब रोशन होंगे। मेरी दिली तमन्ना है कि जियाद का सिर अपने पैरों के नीचे देखूँ।

शिमर—मैंने तो मिन्नत मानी है कि मलऊन ज़ियाद के मुँह में कालिख लगाकर सारे शहर में फिराऊँ।

क़ीस—मैं तो यज़ीद की नाक काटकर उसकी हथेली पर रख देना चाहता हूँ।

[हानी, कसीर और अशअस का प्रवेश ।]

हानी—या बिरादर हुसैन, आप पर ख़ुदा की रहमत हो।

क़ीस—अल्लाहताला आप पर साया रखे। हम सब आपकी राह देख रहे थे।

मु०—भाई साहब ने मुझे यह ख़त देकर आपकी तसकीन के लिए भेजा है।

[हानी ख़त लेकर आँखों से लगाता है, और आँखों में ऐनक लगाकर पढ़ता है।]

शिमर—अब ज़ियाद की खबर लूँगा।

क़ीस—मैं तो यज़ीद की आँखों में मिर्च डालकर उसका तड़पना देखूँगा।

मु०—आप लोग भी कल अपने क़बीलेवालों को जामा मस्जिद में बुलायें। कल तीन-चार हज़ार आदमी आ जायँगे?

शैस—खुदा झूठ न बुलवाये, तो इसके दसगुने हो जायँगे।

हानी—नबी की औलाद की शान ही और है। वह हुस्न, वह इख़लाक़, वह शराफ़त कहीं नज़र ही नहीं आती।

क़ीस—यज़ीद को देखो, ख़ासा हब्शी मालूम होता है।

हज्जाज—ज़ियाद तो ख़ासा सारवान है।

मु०—तो कल शाम को जामा मस्जिद में आने की ठहरी।

शिमर—तो हम लोग चलकर अपने क़बीलों को तैयार करें, ताकि जो लोग इस वक़्त यहाँ न हों, वे भी आ जायँ।

[सब लोग चले जाते हैं।]

मु०—(दिल में) ये सब कूफ़ा के नामी सरदार हैं। हमारी फ़तह ज़रूर होगी; और एक बार तक़दीर को जक उठानी पडेगी। बीस हज़ार आदमियों की बैयत मिल गयी, तो फिर हुसैन को ख़िलाफ़त की मसनद पर बैठने से कौन रोक सकता है, जरूर बैठेंगे।

सातवाँ दृश्य

[कूफ़ा के चौक में कई दूकानदार बातें कर रहे हैं।]

पहला—सुना, आज हज़रत हुसैन तशरीफ़ लानेवाले हैं।

दूसरा—हाँ, कल मुख्तार के मकान पर बड़ा जमघट था। मक्का से कोई साहब उनके आने की खबर लाये हैं।

तीसरा—खुदा करे, जल्द आवें। किसी तरह इन ज़ालिमों से पीछा छूटे। मैंने बैयत तो यज़ीद की ले ली है, लेकिन हज़रत आयँगे, तो फ़ौरन् फिर जाऊँगा।

चौथा—लोग कहते थे, बड़े धूमधाम से आ रहे हैं। पैदल और सवार फ़ौजें हैं। खेमे वग़ैरह ऊँटों पर लदे हुए हैं।

पहला—दूकान बढ़ाओ, हम लोग भी चलें। तक़दीर में जो कुछ बिकना था, बिक चुका। आक़बत की भी तो कुछ फ़िक्र करनी चाहिए। (चौंककर) अरे! ये बाजे की आवाज़ें कहाँ से आ रही हैं?

दूसरा—आ गये शायद।

[**सब दौड़ते हैं। ज़ियाद का जलूस सामने से आता है। ज़ियाद मिंबर पर खड़ा हो जाता है।**]

कई आवाज़ें—मुबारक हो, मुबारक हो, या हज़रत हुसैन!

ज़ियाद—दोस्तो, मैं हुसैन नहीं हूँ। हुसैन का अदना ग़ुलाम रसूल पाक के क़दमों पर निसार होनेवाला आपका नाचीज़ खादिम बिनज़ियाद हूँ।

एक आवाज़—ज़ियाद है, मलऊन ज़ियाद है।

दूसरा—गिरा दो मिंबर पर से; उतार दो मरदूद को।

तीसरा—लगा दो तीर का निशाना। ज़ालिम की ज़बान बन्द हो जाय।

चौथा—खामोश, खामोश। सुनो, क्या कहता है?

ज़ियाद—अगर आप समझते हैं कि मैं ज़ालिम हूँ, तो बेशक, मुझे तीर का निशाना बनाइए, पत्थरों से मारिए, क़त्ल कीजिए, हाज़िर हूँ। ज़ालिम गर्दनज़दनी है, और जो ज़ुल्म बर्दाश्त करे, वह बेग़ैरत है। मुझे ग़ुरूर है कि आपमें ग़ैरत है, जोश है।

कई आवाज़ें—सुनो-सुनो, खामोश।

ज़ियाद—हाँ, मैं ग़ैरत से, ग़ुरूर से नहीं डरता, क्योंकि यही वह ताक़त है, जो किसी क़ौम को ज़ालिम के हाथ से बचा सकती है। खुदा के लिए

उस ज़ुल्म क ाी नाक़दरी न कीजिए, जिसने आपकी ग़ैरत को जगाया। यही मेरी मंशा थी, यही यज़ीद की मंशा थी, और ख़ुदा का शुक्र कि हमारी तमन्ना पूरी हुई। अब हमें यक़ीन हो गया कि हम आपके ऊपर भरोसा कर सकते हैं। ज़ालिम उस्ताद की भी कभी-कभी ज़रूरत होती है। हज़रत हुसैन-जैसा पाक-नीयत, दीनदार बुज़ुर्ग आपको यह सबक़ न दे सकता था। यह हम-जैसे कमीना, ख़ुदग़रज आदमियों ही का काम था। लेकिन अगर हमारी नीयत ख़राब होती, तो आप आज मुझे यहाँ खड़े होकर उन रियायतों का ऐलान करते न देखते, जो मैं अभी-अभी करनेवाला हूँ। इन ऐलानों से आप पर मेरे क़ौल की सच्चाई रोशन हो जायगी।

कई आवाज़ें—ख़ामोश-ख़ामोश, सुनो-सुनो।

ज़ियाद—ख़लीफ़ा यज़ीद का हुक्म है कि कूफ़ा और बसरा का हरएक बालिग़ मर्द पाँच सौ दिरहम सालाना ख़ज़ाने से पाये।

बहुत-सी आवाज़ें—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह।

ज़ियाद—और कूफ़ा व बसरे की हरएक बालिग़ औरत दो सौ दिरहम पाये, जब तक उसका निकाह न हो।

बहुत-सी आवाज़ें—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह

ज़ियाद—और हरएक बेवा को सौ दिरहम सालाना मिलें, जब तक उसकी आँखें बन्द न हो जायँ, या वह दूसरा निकाह न कर ले।

बहुत-सी आ०—सुभानअल्लाह, सुभानअल्लाह।

ज़ियाद—यह मेरे हाथ में ख़लीफ़ा का फ़रमान है। देखिए, जिसे यक़ीन न हो। हरएक यतीम को बालिग़ होने तक सौ दिरहम सालाना मुक़र्रर किया गया है। हरएक जवान मर्द और औरत को शादी के वक़्त एक हज़ार दिरहम एकमुश्त खर्च के लिए दिया जायगा।

बहुत-सी आवाज़ें—ख़ुदा ख़लीफ़ा यज़ीद को सलामत रखे। कितनी फ़ैयाज़ी की है।

ज़ियाद—अभी और सुनिए, तब फ़ैसला कीजिए कि यज़ीद ज़ालिम है या रियाया-परवर? उसका हुक्म है कि हरएक क़बीले के सरदार को दरिया के किनारे की उतनी ज़मीन अता की जाय, जितनी दूर उसका तीर जा सके।

बहुत-सी आवाज़ें—हम यज़ीद की बैयत मंजूर करते हैं। यज़ीद हमारा ख़लीफ़ा है।

ज़ियाद—नहीं, यज़ीद, बैयत के लिए आपको रिश्वत नहीं देता। बैयत आपके अख़्तियार में है, जिसे जो चाहे, दीजिए। यज़ीद हुसैन से दुश्मनी करना नहीं चाहता। उसका हुक्म है कि नदियों के घाट काम हसूल मुआफ़ कर दिया जाय।

बहुत-सी आवाज़ें—हम यज़ीद को अपना ख़लीफ़ा तसलीम करते हैं।

ज़ियाद—नहीं-नहीं, यज़ीद कभी हुसैन के हक़ को जायल न करेगा। हुसैन मालिक हैं, फ़ाजिल हैं, आबिद हैं, ज़ाहिद हैं, यज़ीद को इसमें से कोई सिफ़त रखने का दावा नहीं। यज़ीद में अगर कोई सिफ़त है, तो यह कि वह ज़ुल्म करना जानता है, खासकर नाज़ुक वक्त पर, जब माल और जान की हिफ़ाजत करनेवाला कोई न हो, जब सब अपने हक़ और दावे पेश करने में मसरूफ़ हों।

बहुत-सी आवाज़ें—ज़ालिम यज़ीद ही हमारा अमीर है। हम दिल से उसकी बैयत क़बूल करते हैं।

ज़ियाद—सोचिए, और ग़ौर से सोचिए। अगर ख़िलाफ़त के दूसरे दावेदारों की तरह यज़ीद भी किसी गोशे में बैठे हुए बैयत की फ़िक्र करते, तो आज मुल्क की क्या हालत होती? आपकी जान व माल की हिफ़ाज़त कौन करता? कौन मुल्क को बाहर के हमलों से और अन्दर की लड़ाइयों से बचाता? कौन सड़कों और बन्दरगाहों को डाकुओं से महफ़ूज़ रखता? कौन क़ौम की बहू-बेटियों की हुरमत का ज़िम्मेदार होता? जिस एक आदमी की ज़ात से क़ौम और मुल्क को नाज़ुक मौके पर इतने फ़ायदे पहुँचे हों, और जिसने ख़लीफ़ा चुने जाने का इन्तज़ार न करके ये बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियाँ सिर पर ले ली हों, क्या वह इसी क़ाबिल है कि उसे मलऊन और मरदूद कहा जाय, उसे सरे बाज़ार गालियाँ दी जायँ?

एक आवाज़—हम बहुत नादिम हैं। खुदा हमारा गुनाह मुआफ़ करे।

शिमर—हमने ख़लीफ़ा यज़ीद के साथ बड़ी बेइन्साफी की है।

जियाद—हाँ, आपने ज़रूर बेइन्साफ़ी की है। मैं यह बिला खौफ़ कहता हूँ, ऐसा आदमी इससे कहीं अच्छे बर्ताव के लायक़ था। हुसैन की इज़्ज़त यज़ीद के और मेरे दिल में उससे ज़रा भी कम नहीं है, जितनी और किसी के दिल में होगी। अगर आप उन्हें अपना ख़लीफ़ा तस्लीम करते हैं, तो मुबारक हो। हम खुश, हमारा खुदा खुश। यज़ीद सबसे पहले उनकी बैयत मंजूर करेगा, उसके बाद मैं हूँगा। रसूल पाक ने खिलाफ़त के लिए इन्तख़ाब की शर्त लगा दी है। मगर हुसैन के लिए इसकी क़ैद नहीं।

क़ीस—है। यह क़ैद सबके लिए एकसाँ है।

ज़ियाद—अगर है, तो इन्तख़ाब का इससे बेहतर और कौन मौक़ा होगा। आप अपनी रजा और रग़बत से किसी का लिहाज़ और मुरौवत किये बग़ैर जिसे चाहे ख़लीफा तसलीम कर लें। मैं कसरत राय को मानकर यज़ीद को इसकी इत्तिला दे दूँगा।

एक तरफ़ से—हम यज़ीद को खलीफ़ा मानते हैं।

दूसरी तरफ़ से—हम यज़ीद की बैयत क़बूल करते हैं।

तीसरी तरफ़ से—यज़ीद, यज़ीद, यज़ीद।

ज़ियाद—खामोश, हुसैन को कौन ख़लीफ़ा मानता है!

[**कोई आवाज़ नहीं आती**]

ज़ियाद—आप जानते हैं, यज़ीद आबिद नहीं।

कई आवाजें—हमें आबिद की ज़रूरत नहीं।

ज़ियाद—यज़ीद आलिम नहीं, फाज़िल नहीं, हाफ़िज़ नहीं।

कई आवाजें—हमें आलिम-फाज़िल की ज़रूरत नहीं।

हज्जाज—कितना फ़ैयाज़ है।

शिमर—किसी खलीफ़ा ने इतनी फ़ैयाज़ी नहीं की।

शीस—आबिद कभी फ़ैयाज़ नहीं होता।

अशअस—अजी, कुछ न पूछो, मस्जिदों के मुल्लाओं को देखो, रोटियों पर जान देते हैं।

ज़ियाद—अच्छा, यज़ीद को आपने अपना खलीफ़ा तो मान लिया, लेकिन हेजाज, मिस्र, यमन के लोग किसी और को खलीफ़ा मान लें तो?

ब० आ०—हम खलीफ़ा यज़ीद के लिए जान दे देंगे।

ज़ियाद—बहुत मुमकिन है कि हज़रत हुसैन ही को वे लोग अपना खलीफ़ा बनायें, तो आप अपना क़ौल निभायेंगे ?

ब० आ०—निभायेंगे। यज़ीद के सिवा और कोई खलीफ़ा नहीं हो सकता।

ज़ियाद—मैंने सुना है, हज़रत हुसैन ने अपने चचेरे भाई मुस्लिम को आपकी बैयत लेने के लिए भेजा है। और, शायद खुद भी आ रहे हैं। यज़ीद को गोशे में बैठकर खुदा की याद करना इससे कहीं अच्छा मालूम होगा कि वह इस्लाम में निफ़ाक़ की आग भड़कायें। अभी मौक़ा है, आप लोग खूब ग़ौर कर लें।

शिमर—हमने खूब गौर कर लिया है।

हज्जाज—हुसैन को न-जाने क्यों खिलाफ़त की हवस है। बैठे हुए खुदा को इबादत क्यों नहीं करते ?

क़ीस—हुसैन मदीनावालों के साथ जो सलूक करेंगे, वह कभी हमारे साथ नहीं कर सकते।

शीस—उनका आना बला का आना है।

ज़ियाद—अगर आप चाहते हैं कि मुल्क में अमन रहे, तो खबरदार, इस वक्त एक आदमी भी जामा मस्जिद में न जाय। हुसैन आयें हमारे सिर-आँखों पर। हम उनकी ताज़ीम करेंगे, उनकी खिदमत करेंगे, लेकिन उन्हें खिलाफ़त का दावा पेश करते देखेंगे, तो मुल्क में अमन रखने के लिए हमें आपकी मदद की ज़रूरत होगी। यही आपकी आज़माइश का वक्त होगा, और इसी में पूरा उतरने पर इस्लाम की ज़िन्दगी का दार-मदार है।

[मिंबर पर से उतर आता है।]

शीस—बड़ी ग़लती हुई कि हुसैन को खत लिखा।

शिमर—मैं तो अब जामा मस्जिद न जाऊँगा।

क़ीस—यहाँ कौन जाता है।

शीस—काश, इन्हीं रियायतों का चंद रोज़ पहले एलान कर दिया गया होता, तो खत लिखने की नौबत ही क्यों आती ?

शिमर—दीन की फ़िक्र मोटे आदमी करें, यहाँ दुनिया की फ़िक्र का है।

[सब जाते हैं।]

आठवाँ दृश्य

[नौ बजे रात का समय। कूफ़ा की जामा मस्जिद। मुस्लिम, मुख़्तार, सुलेमान और हानी बैठे हुए हैं। कुछ आदमी द्वार पर बैठे हुए हैं।]

सुले०—अब तक लोग नहीं आये ?

हानी—अब आने की कम उम्मीद है।

मुख़्०—आज ज़ियाद का लौटना सितम हो गया। उसने लोगों को वादों के सब्ज़ बाग़ दिखाये होंगे।

सुले०—इसी को तो सियासत का आईन कहते हैं।

मु०—इन ज़ालिमों ने सियासत को ईमान से बिलकुल जुदा कर दिया है। दूसरे खलीफ़ों ने इन दोनो को मिलाया था। सियासत को दग़ा से पाक कर दिया था।

मुख़्०—हज़रत मुस्लिम, अब आप अपनी तक़रीर शुरू कीजिए, शायद लोग जमा हो जायँ।

[मुस्लिम मिंबर पर चढ़कर व्याख्यान देते हैं।]

"शुक्र है उस पाक खुदा का, जिसने हमें आज दीन इस्लाम के लिए एक ऐसे बुज़ुर्ग को खलीफ़ा चुनने का मौक़ा दिया है, जो इस्लाम का सच्चा दोस्त......."

[बहुत-से आदमी मस्जिद में घुस पड़ते हैं।]

पहला—बस हज़रत मुस्लिम, ज़बान बन्द कीजिए।

दूसरा—जनाब, आप चुपके से मदीने की राह लें। यज़ीद हमारे खलीफ़ा हैं, और ज़ियाद हमारा इमाम है।

सुले०—मुझे मालूम है कि ज़ियाद ने आज तुम्हारी पीठ पर खूब हाथ फेरे हैं, और हरी-हरी घास दिखायी है, पर याद रखो, घास के नीचे जाल बिछा हुआ है।

[बहार से ईंट और पत्थर की वर्षा होने लगती है।]

एक आ०—मारो-मारो, यह क़ौम का दुश्मन है।

सुले०—ज़ालिमो, यह खुदा का घर है। इसकी हुरमत का तो खयाल रखो।

दू० आ०—खुदा का घर नहीं, इस्लाम के दुश्मनों का अड्डा है।

तीसरा—मारो-मारो, अभी तक इसकी ज़बान बन्द नहीं हुई।

[सुलेमान ज़ख्मी होकर गिर पड़ते हैं। मुस्लिम बाहर आकर कहते हैं]

"ऐ बदनसीब क़ौम, अगर तू इतनी जल्द रसूल की नसीहतों को भूल सकती है, और तुझ में नेक व बद की तमीज़ नहीं रही, अगर तू इतनी जल्द जुल्म और ज़िल्लत को भूल सकती है, तो तू दुनिया में कभी सुर्खरू न होगी।"

एक आ०—इस्लाम का दुश्मन है।

दूसरा—नहीं-नहीं, हज़रत हुसैन के चचेरे भाई हैं। इनकी तौहीन मत करो।

तीसरा—इन्हें पकड़कर शहर की किसी अँधेरी गली में छोड़ दो। हम इनके खून से हाथ न रँगेंगे।

[कई आदमी मुस्लिम पर टूट पड़ते, और उन्हें खींचते हुए ले जाते हैं, और साथ ही परदा भी बदलता है।]

मुस०—(दिल में) ज़ालिमों ने कहाँ लाकर छोड़ दिया। कुछ नहीं सूझता। रास्ता नहीं मालूम। कहाँ जाऊँ? कोई आदमी नज़र नहीं आता कि उससे रास्ता पूछूँ!

[हानी आता हुआ दिखायी देता है।]

मु०—ऐ खुदा के नेक बन्दे, मुझे यहाँ से निकलने का रास्ता बता दो।

हानी—हज़रत मुस्लिम! क्या अभी आप यहीं खड़े हैं?

मु०—आप हैं, हानी? रसूले पाक की क़सम, इस वक्त तन में जान

पड़ गयी। मुझे तो कई आदमियों ने पकड़ लिया, और यहाँ छोड़कर चल दिये।

हानी—वे मेरे ही आदमी थे। मैंने वहाँ की हालत देखी, तो आपको वहाँ से हटा देना मुनासिब समझा। मैंने उन्हे तो ताक़ीद की थी कि आपको मेरे घर पहुँचा दें।

मु०—पहले आपके आदमी होंगे, अब नहीं हैं। ज़ियाद की तक़रीर ने उन पर भी असर किया है।

हानी—ख़ैर, कोई मुज़ायका नहीं, मेरा मकान क़रीब है; आइए। हम सियासत के मैदान में ज़ियाद से नीचा खा गये। उसने यह ख़बर मशहूर कर दी है कि हुसैन आ रहे हैं। इस हीले से लोग जमा हो गये, और उसे उनको फ़रेब देने का मौक़ा मिल गया।

मु०—मुझे तो अब चारो तरफ़ अँधेरा ही-अँधेरा नज़र आता है।

हानी—ज़ियाद की तक़रीर ने सूरत बदल दी। जिन आदमियों ने हज़रत के पास ख़त भेजने पर ज़ोर दिया था, वे भी फ़रेब मे आ गये।

[सुलेमान और मुख़्तार आते हैं। सुलेमान के सिर में पट्टी बँधी हुई है।]

मुख़्ता०—शुक्र है, आप ख़ैरियत से पहुँच गये। ज़ियाद के आदमी आपको तलाश करते फिरते है।

मु०—हानी, ऐसी हालत में यहाँ रहकर मैं आपको ख़तरे में नहीं डालना चाहता। मुझे रुख़सत कीजिए। रात को किसी मस्जिद में पड़ रहूँगा।

हानी—मुआज़ अल्लाह, यह आप क्या फ़रमाते हैं! यह आपका घर है। मैं और मेरा सब कुछ हज़रत हुसैन के क़दमों पर निसार है।

[शरीक का प्रवेश।]

शरीक—अस्सलामअलैक या हज़रत मुस्लिम, मैं भी हुसैन के ग़ुलामों में हूँ।

हानी—हज़रत मुस्लिम, आपने शरीक का नाम सुना होगा। आप हज़रत अली के पुराने ख़ादिम हैं, और उनकी शान में कई क़सीदे लिख चुके हैं।

मुस०—(**शरीक से गले मिलकर**) ऐसा कौन बदनसीब होगा, जिससे आपका कलाम न देखा गया हो।

शरीक—मैं हज़रत का खादिम और नबी का ग़ुलाम हूँ। बसरेवालों की फ़रियाद लेकर यज़ीद के पास गया था। वहाँ मालूम हुआ कि आप मक्का से रवाना हो गये हैं। मैं ज़ियाद के साथ ही इधर चल पड़ा कि शायद आपकी कुछ खिदमत कर सकूँ। यज़ीद ने अब सख़्ती की जगह नरमी और रियायत से काम लेना शुरू किया है। और, आज ज़ियाद की तक़दीर का असर देखकर मुझे यक़ीन हो गया है कि यहाँ के लोग हज़रत हुसैन से ज़रूर दग़ा कर जायँगे। हमें भी फ़रेब का जवाब फ़रेब ही से देना लाज़िम है।

मु०—क्योंकर ?

शरीक—इसकी आसान तरकीब है। मैं ज़ियाद को अपनी बीमारी की खबर दूँगा। वह यहाँ मेरी मिज़ाज-पुरसी करने ज़रूर आवेगा, आप उसे क़त्ल कर दीजिए।

मु०—अल्लाहताला ने फ़रमाया है कि मुसलमान को मुसलमान का ख़ून करना जायज़ नहीं।

शरीक—मगर अल्लाहताला ने यह भी तो फ़रमाया है कि बेदीन को अमन देना साँप का पालना है।

मु०—पर मेरी इन्सानियत इसकी इजाज़त नहीं देती।

शरीक—बेदीन को क़त्ल करना ऐन सबाब है। ज़िहाद में इन्सानियत को दख़ल नहीं, हक़ का रास्ता डाकुओं और लुटेरों से ख़ाली नहीं है। और उनका ख़ौफ़ है, तो इस रास्ते पर क़दम ही न रखना चाहिए। आप इस मसले को सोचिए।

[**बाहर से आदमियों का एक गिरोह हानी का दरवाज़ा तोड़कर अन्दर घुस आता है।**]

एक आ०—इन्हीं ने हुसैन को खत लिखा था। पकड़ लो इन्हें।

मु०—(**सामने आकर**) यहाँ से चले जाओ।

दू० आ०—यही हज़रत मुस्लिम हैं। इन्हें गिरफ़्तार कर लो।

मु०—हाँ, मैं ही मुस्लिम हूँ। मैं ही तुम्हारा खतावार हूँ। अगर चाहते हो, तो मुझे क़त्ल करो। (**कमर से तलवार फेककर**) यह लो, अब तुम्हें मुझसे कोई खौफ़ नहीं है। अगर तुम्हारा खलीफ़ा मेरे खून से खुश हो, तो उसे खुश करो। मगर खुदा के लिए हुसैन को लिख दो कि आप यहाँ न आयें। उन्हें खिलाफ़त की हवस नहीं है। उनका मंशा सिर्फ़ आपकी हिमायत करना था। वह आप पर अपनी जान निसार करना चाहते थे। उनके पास फ़ौज नहीं थी, हथियार नहीं थे, महज़ आपके लिए अपनी जान दे देने का जोश था, इसी लिए उन्होंने अपने गोशे को छोड़ना मंज़ूर किया। अब आपको उनकी ज़रूरत नहीं है, तो उन्हें मना कर दीजिए कि यहाँ मत आओ। उन्हें बुलाकर शहीद कर देने से आपको नदामत और अफ़सोस के सिवा और कुछ हाथ न आयेगा। उनकी जान लेनी मुश्किल नहीं; यहाँ की कैफ़ियत देखकर वह इस सदमे से खुद ही मर जायँगे। वह इसे आपका क़सूर नहीं, अपना क़सूर समझेंगे कि वही उम्मत, जो मेरे नाना पर जान देती थी, अगर आज मेरे खून की प्यासी हो रही है, तो यह मेरी खता है। यह ग़म उनका काम तमाम कर देगा। आपका और आपके अमीर का मंशा खुद-ब-खुद पूरा हो जावेगा। बोलो, मंजूर है ? उन्हें लिख दूँ कि आपने जिनकी हिमायत के लिए शहीद होना क़बूल किया था, वह अब आपको शहीद करने की फ़िक्र में हैं। आप इधर रुख न कीजिए।

[**कोई नहीं बोलता** ।]

मु०—खामोशी नीम रज़ा है। आप कहते है कि यह कैफ़ियत उन्हें लिख दी जाय।

कई आवाज़ें—नहीं, नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं।

मु०—तो क्या आप यहीं उनकी लाश को अपनी आँखों के सामने तड़पती देखना चाहते हैं।

एक आ०—मुआज़अल्लाह, हम हज़रत हुसैन के क़ातिल न होंगे।

मु०—ऐसा न कहिए, वरना रसूल को जन्नत मे भी तकलीफ़ होगी। आप अपनी खरज़ के ग़ुलाम हैं, दौलत के ग़ुलाम हैं। रसूल ने आपको हमेशा सब्र और सन्तोष की हिदायत की। आप जानते हैं, वह खुद कितनी

सादगी से ज़िन्दगी बसर करते थे। आपको पहले खलीफ़ा का हाल मालूम है, हज़रत फ़ारूक के हालात से भी आप वाक़िफ़ हैं। अफ़सोस! आप उस उसूल को भूल गये, जो तवहीद के बाद इस्लाम का सबसे पाक उसूल है, वरना आप वसीक़ों और जागीरों के जाल में न फँस जाते। आपने एक पल के लिए भी खयाल नहीं किया कि वे जागीरें और वसीक़े किसके घर से आयेंगे। दूसरों से, जो कई पुश्तों से अपनी ज़मीन पर क़ाबिज़ हैं, वे ज़मीनें छीनकर आपको दी जायँगी। दूसरों से जबरन् रुपए वसूल करके आपको वसीक़े दिये जायँगे। आपको खुश करने के लिए दूसरों को तबाह करने का बहाना हाथ आ जायगा। आप अपने भाइयों के हक़ छीनकर अपनी हवस की प्यास बुझाना चाहते हैं। यह दीन-परवरी नहीं है, यह भाई-बंदी नहीं है, इसका कुछ और ही नाम है।

कई आवाज़ें—नहीं-नहीं, हम हराम का माल नहीं चाहते।

मु०—मैं यज़ीद का दुश्मन नहीं हूँ, मैं ज़ियाद का दुश्मन नहीं हूँ; मैं इस्लाम का दोस्त हूँ। जो आदमी इस्लाम को पैरों से कुचलता है, चाहे वह यज़ीद हो, ज़ियाद हो, या खुद हुसैन हो, उसका दुश्मन हूँ। जो शख्स क़ुरान की और रसूल की तौहीन करता है, वह मेरा दुश्मन है।

कई आ०—हम भी उसके दुश्मन हैं। वह मुसलमान नहीं, काफ़िर है।

मु०—बेशक, और कोई मुसलमान—अगर वह मुसलमान है, काफ़िर को खलीफ़ा न तस्लीम करेगा, चाहे वह उसका दामन हीरे व जवाहिर से भर दे।

कई आ०—बेशक, बेशक।

मु०—उससे एक सच्चा दीनदार आदमी कहीं अच्छा खलीफ़ा होगा, चाहे वह चिथड़े ही पहने हुए हो।

कई आ०—बेशक, बेशक।

मु०—तो आप तस्लीम करते हैं कि खलीफ़ा उसे होना चाहिए, जो इस्लाम का सच्चा पैरो हो। वह नहीं, जो एक का घर लूटकर दूसरे का दिल भरता हो।

कई आ०—बेशक, बेशक।

मु०—किसी मुसलमान के लिए इससे बड़ी शरम की बात नहीं हो सकती कि वह किसी को महज़ दौलत या हुकूमत की बदौलत अपना इमाम समझे। इमाम के लिए सबसे बड़ी शर्त क्या है? इस्लाम का सच्चा पैरो होना। इस्लाम ने दौलत को हमेशा हक़ीर समझा है। वह इस्लाम की मौत का दिन होगा, जब वह दौलत के सामने सिर झुकायेगा। खुदा हमको और आपको वह दिन देखने के लिए ज़िन्दा न रखे। हमारा दुनिया से मिट जाना इससे कहीं अच्छा है। तुम्हारा फ़र्ज़ है कि बैयत लेने से पहले तहक़ीक़ कर लो, जिसे तुम खलीफ़ा बना रहे हो, वह रसूल की हिदायतों पर अमल करता है या नहीं। तहक़ीक़ करो, वह शराब तो नहीं पीता।

कई आ०—क्या खलीफ़ा यज़ीद शराब पीते हैं?

मुस०—यह तहक़ीक़ करना तुम्हारा काम है। जाँच करो कि तुम्हारा खलीफ़ा ज़िनाकार तो नहीं।

कई आ०—क्या यज़ीद ज़िनाकार है?

मु०—यह जाँच करना तुम्हारा काम है। दर्याफ्त करो कि वह नमाज़ पढ़ता है, रोज़े रखता है, आलिमों की इज़्ज़त करता है, खज़ाने का बेजा इस्तेमाल तो नहीं करता? अगर इन बातों की जाँच किये बग़ैर तुम महज़ जागीरों और वसीकों की उम्मीद पर किसी की बैयत क़बूल करते हो, तो तुम क़यामत के रोज़ खुदा के सामने शर्मिन्दा होगे। जब वह पूछेगा कि तुमने इन्तख़ाब के हक़ का क्यों बेजा इस्तेमाल किया, तो तुम उसे क्या जवाब दोगे? जब रसूल तुम्हारा दामन पकड़कर पूछेंगे कि तुमने उसी अमानत को, जो मैंने तुम्हें दी थी, क्यों मिटा दिया, तो तुम उन्हें कौन-सा मुँह दिखाओगे?

कई आ०—हमें ज़ियाद ने धोखा दिया। हम यज़ीद की बैयत से इनकार करते हैं।

मु०—पहले खूब जाँच लो। मैं किसी पर इलज़ाम नहीं लगाता। कौन खड़ा होकर कह सकता है कि यज़ीद इन बुराइयों से पाक है।

कई आ०—हम जाँच कर चुके।

मु०—तो तुम्हें किसकी बैयत मंजूर है?

शोर—हुसैन की! रसूल के नवासे की।

मुस०—उनके बारे में तुमने उन बातों की जाँच कर ली ? तुम्हें यक़ीन है कि हुसैन उन बुराइयों से पाक हैं ?

कई आ०—हमने जाँच कर ली। हुसैन मे कोई बुराई नहीं। हम हुसैन को अपना ख़लीफ़ा तसलीम करते हैं। ज़ियाद ने हमें गुमराह कर दिया था।

एक आ०—पहले ज़ियाद को क़त्ल कर दो।

दू० आ०—बेशक, उसी ने हमें गुमराह किया था।

मु०—नहीं तुम्हें रसूल का वास्ता है। मोमिन पर मोमिन का ख़ून हराम है।

[सब आदमी वहीं बैठ जाते हैं, और मुस्लिम के हाथों पर हुसैन की बैयत करते हैं।]

नवाँ दृश्य

[दोपहर का समय। हानी का मकान। शरीक एक चारपाई पर पड़े हुए हैं। सामने ताक़ पर शीशियाँ और दवा के प्याले रखे हुए हैं। मुस्लिम और हानी फ़र्श पर बैठे हुए हैं।]

शरीक—ज़ियाद अब आता ही होगा। मुस्लिम, तलवार को तेज़ रखना।

हानी—मैं खुद उसे क़त्ल करता, पर जईफ़ी ने हाथों में क़ूवत बाक़ी नहीं रखी।

शरीक—इसमें पसोपेश की मुतलक़ ज़रूरत नहीं। हक़ की हिमायत के लिए, इस्लाम की हिमायत के लिए, क़ौम की हिमायत के लिए अगर ख़ून का दरिया बहा दिया जाय, तो उसमे फ़रिश्ते वज़ू करेंगे, औलिया की रूहें उसमें नहायेंगी। जो हाथ हक़ की हिमायत में न उठे, वह अन्धी आँखों से, बुझे हुए चिराग़ से, दिन के चाँद से भी ज़्यादा बेकार है। इस्लाम की ख़िद-मत का इससे बेहतर मौक़ा आपको फिर न मिलेगा। शायद फिर कभी किसी को न मिलेगा। कूफ़ा और बसरा पर कब्ज़ा करके आप यज़ीद की बड़ी-से-

बड़ी फौज का मुक़ाबला कर सकते हैं। यजीद की खिलाफ़त इस्लाम को दुनियादारी और ग़ुलामी की तरफ़ ले जायगी और हुसैन की खिलाफ़त हक़ और सचाई की तरफ़। क्या यह आपको मंजूर है कि यजीद के हाथों इस्लाम तबाह हो जाय ?

[ज़ियाद आता है, और मुस्लिम बग़ल की कोठरी में छिप जाते हैं।]

ज़ियाद—अस्सलामअलेक, या शरीक, तुम्हारी हालत तो बहुत ख़राब नज़र आती है।

हानी—कल से आँखें नहीं खोलीं। सारी रात कराहते गुज़री है।

शरीक—खुदा फ़रमाता है—हक़ के वास्ते जो तलवार उठाता है, उसके लिए जन्नत का दरवाज़ा खुला हुआ है।

ज़ियाद—शरीक, शरीक! कैसी तबियत है ?

शरीक—शौक़ कहता था कि हाँ, हसरत यह कहती थी, नहीं;
मैं इधर मुश्किल में था, क़ातिल उधर मुश्किल में था।

हानी—आँखें खोलो। अमीर तुम्हारी मुलाक़ात को आये हैं।

शरीक—सब्र की क़ूवत तड़पने की, तड़पता किस तरह;
एक दिल में, दूसरा ख़ंजर कफ़े क़ातिल में था।

ज़ियाद—क्या रात भी यही इनकी हालत थी ?

हानी—जी हाँ, यों ही बकते रहे।

शरीक—गले पर छुरी क्यों नहीं फेर देते,
हक़ीक़त पर अपनी नज़र करनेवाले।

ज़ियाद—किसी हकीम को बुलाना चाहिए।

शरीक—कौन आया है, ज़ियाद !
हुजूमे-आरज़ू से बढ़ गईं बेताबियाँ दिल की;
अरे ओ छिपनेवाले, यह हिजाबे जाँ सिताँ कब तक।

ज़ियाद—तुम्हारे घरवालों को ख़बर दी जाय ?

शरीक—मैं यहीं मरूँगा, मैं यहीं मरूँगा।
मेरी ख़ुशी पर आसमाँ हँसता है, और हँसे न क्यों;
बैठा हूँ जाके चैन से दोस्त की बज़्मे-नाज़ में।

ज़ियाद—खुदा किसी ग़रीब को बेवतनी में मरीज़ न बनाये। हानी, मैंने सुना है, मुस्लिम मक्के से यहाँ आये हैं। खलीफ़ा ने मुझे सख्त ताकीद की है कि उन्हें गिरफ़्तार कर लूँ। आप शहर के रईस हैं, उनका कुछ सुराग़ मिले, तो मुझे इत्तिला दीजिएगा। मुझे आपके ऊपर पूरा भरोसा है। आप समझ सकते हैं कि उनके आने से मुल्क में कितना शोर-शर पैदा होगा। क़सम है कलाम पाक की, इस वक़्त जो उनका सुराग़ लगा दे, उसका दामन जवाहरात से भर दूँ। मैं इसी फ़िक्र में जाता हूँ। आप भी तलाश में रहिए।

[चला जाता है।]

शरीक—हज़रत मुस्लिम, आपसे आज जो ग़लती हुई है, उस पर आप मरते दम तक पछतायेंगे, और आपके बाद मुसलमान क़ौम इसका खमियाज़ा उठायेगी। तुम क़यास नहीं कर सकते कि तुमने इस्लाम को आज कितना बड़ा नुक़सान पहुँचाया है। शायद खुदा को यही मंजूर है कि रसूल का लगाया हुआ बाग़ यज़ीद के हाथों बरबाद हो जाय।

मुस०—शरीक, मैंने कभी दग़ा नहीं की, और मुझे यक़ीन है कि हज़रत हुसैन मेरी इस हरकत को कभी पसन्द न करते। इस्लाम का दरख्त हक़ के बीज से उगा है। दग़ा से उसकी आबपाशी करने में अन्देशा है कि कहीं दरख्त सूख न जाय। हक़ पर क़ायम रहते हुए अगर इस्लाम का नामो-निशान दुनिया से मिट जाय, तो भी इससे कहीं बेहतर है कि उसे ज़िन्दा रहने के लिए दग़ा का सहारा लेना पड़े। (**हानी से**) भाई साहब को इत्तिला दे दूँ कि यहाँ १८ हज़ार आदमियों ने आपकी बैयत क़बूल कर ली है!

हानी—ज़रूर। मेरा ग़ुलाम इस खिदमत के लिए हाज़िर है।

मु०—(**दिल में**) यह ग़ैरमुमकिन है कि इतने आदमी बैयत लेकर फिर उसे तोड़ दें। कल मुझे चारो तरफ़ अँधेरा-ही-अँधेरा नज़र आता था। आज चारो तरफ़ रोशनी नज़र आती है। मेरी ही तहरीक पर हुसैन यहाँ आने के लिए राज़ी हुए। खुदा का हज़ार शुक्र है कि मेरा दावा सही निकला और मेरी उम्मीद पूरी हुई।

———

दसवाँ दृश्य

[सन्ध्या का समय। ज़ियाद का दरबार]

ज़ियाद—तुम लोगों में ऐसा एक आदमी भी नहीं है, जो मुस्लिम का सुराग़ लगा सके। मैं वादा करता हूँ कि पाँच हज़ार दीनार उसकी नज़र करूँगा।

एक दर०—हुज़ूर, कहीं सुराग़ नहीं मिलता। इतना पता तो मिलता है कि कई हज़ार आदमियों ने उनके हाथ पर हुसैन की बैयत की है। पर वे कहाँ ठहरे हैं, इसका पता नहीं चलता।

[मुअक्किल का प्रवेश।]

मुअ०—हुज़ूर को खुदा सलामत रखे, एक खुशखबरी लाया हूँ। अपना ऊँट लेकर शहर के बाहर चारा काटने गया था कि एक आदमी को बड़ी तेज़ी के साँड़नी पर जाते देखा। मैंने पहचान लिया, वह साँड़नी हानी की थी। उनकी खिदमत में कई साल रह चुका हूँ। शक हुआ कि यह आदमी उधर कहाँ जा रहा है। उसे एक हीले से रोककर पकड़ लिया। जब मारने की धमकी दी, तो उसने क़बूल किया कि मुस्लिम का खत लेकर मक्के जा रहा हूँ। मैंने वह खत उससे छीन लिया, यह हाज़िर है। हुक्म हो, तो क़ासिद को पेश करूँ।

ज़ियाद—(खत पढ़कर) क़सम खुदा की, मैं मुस्लिम को ज़िन्दा न छोड़ूँगा। मैं यहाँ मौजूद रहूँ, और १८ हज़ार आदमी हुसैन की बैयत क़बूल कर लें। (क़ासिद से) तू किसका नौकर है?

क़ासिद—अपने आक़ा का।

ज़ियाद—तेरा आक़ा कौन है?

क़ासिद—जिसने मुझे मिस्रियों के हाथ से खरीदा था।

ज़ियाद—किसने तुझे खरीदा?

क़ासिद—जिसने रुपए दिये।

ज़ियाद—किसने रुपए दिये?

क़ासिद—मेरे आक़ा ने।

ज़ियाद्—तेरा आक़ा कहाँ रहता है ?

क़ासिद्—अपने घर में ।

ज़ियाद्—उसका घर कहाँ है ?

क़ासिद्—जहाँ उसके बुज़ुर्गों ने बनवाया था ।

ज़ियाद्—क़सम खुदा की, तू एक ही शैतान है। मैं जानता हूँ कि तुझ-आदमियों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए। (जल्लाद से) इसे ले जाकर क़त्ल कर दे।

मुअ०—हुज़ूर, मैं खूब पहचानता हूँ कि यह साँड़नी हानी की है।

ज़ियाद्—अगर तू मुस्लिम का सुराग़ लगा दे, तो तुझे आज़ाद कर दूँ, और पाँच हज़ार दीनार इनाम दूँ।

मुअ०—(दिल में) ये बड़े-बड़े हाकिम बड़ी-बड़ी थैलियाँ हड़प करने ही के लिए हैं। अक्ल ख़ाक नहीं होती। जब साँड़नी मौजूद है, तो उसके मालिक का पता लगाना क्या मुश्किल है ? आज किसी भले आदमी का मुँह देखा था। चलकर साँड़नी पर बैठ जाता हूँ, और उसकी नकेल छोड़ देता हूँ। आप ही अपने घर पहुँच जायगी। वहीं मुस्लिम का पता लग जायगा।

[चला जाता है।]

ज़ियाद्—(दिल में) अगर यह साँड़नी हानी की है, तो साफ़ ज़ाहिर है कि वह भी इस साज़िश में शरीक है। मैं अब तक उसे अपना दोस्त समझता था। खुदा, कुछ नहीं मालूम होता कि कौन मेरा दोस्त है, और कौन दुश्मन। मैं अभी उसके घर गया था। अगर शरीक भी हानी का मददगार है, तो यही कहना पड़ेगा कि दुनिया में किसी पर भी एतबार नहीं किया जा सकता।

ग्यारहवाँ दृश्य

[१० बजे रात का समय। ज़ियाद् के महल के सामने सड़क पर सुलेमान मुख़्तार और हानी चले आ रहे हैं।]

सुले०—ज़ियाद के बर्ताव में अब कितना फ़र्क़ नज़र आता है।

मुख०—हाँ, वरना हमें मशविरा देने के लिए क्यों बुलाता।

हानी०—मुझे तो ख़ौफ़ है कि उसे मुस्लिम की बैयत लेने की खबर मिल गयी है। कहीं उसकी नीयत ख़राब न हो।

मुख०—शक और एतबार साथ-साथ नहीं होता। वरना वह आज आपके घर न जाता।

हानी०—उस वक़्त भी शायद भेद लेने ही के इरादे से गया हो। मुझसे ग़लती हुई कि अपने क़बीले के कुछ आदमियों को साथ न लाया, तलवार भी नहीं ली।

सुले०—यह आपका बहम है।

[ज़ियाद के मकान में वे सब दाखिल होते हैं। वहाँ क़ीस, शिमर, हज्जाज आदि बैठे हुए हैं।]

ज़ियाद—अस्सलामअलेक। आइए, आप लोगों से एक खास मुआमले में सलाह लेनी है। क्यों शेख़ हानी, आपके साथ खलीफ़ा यज़ीद ने जो रियायतें कीं, क्या उनका यह बदला होना चाहिए था कि आप मुस्लिम को अपने घर में ठहरायें, और लोगों को हुसैन की बैयत करने पर आमादा करें? हम आपका रुतबा और इज़्ज़त बढ़ाते हैं, और आप हमारी जड़ खोदने की फ़िक्र में हैं?

हानी—या अमीर, खुदा जानता है, मैंने मुस्लिम को खुद नहीं बुलाया, वह रात को मेरे घर आये, और मेरी पनाह चाही। यह इन्सानियत के खिलाफ़ था कि मैं उन्हें घर से निकाल देता। आप खुद सोच सकते हैं कि इसमें मेरी क्या ख़ता थी।

ज़ियाद—तुम्हें मालूम था कि हुसैन खलीफ़ा यज़ीद के दुश्मन हैं।

हानी—अगर मेरा दुश्मन भी मेरी पनाह में आता, तो मैं दरवाज़ा न बन्द करता।

ज़ियाद—अगर तुम अपनी खैरियत चाहते हो, तो मुस्लिम को मेरे हवाले कर दो। वरना कलाम पाक की क़सम, तुम फिर आफ़ताब की रोशनी न देखोगे।

हानी—या अमीर, अगर आप मेरे जिस्म के टुकड़े-टुकड़े कर डालें,

और उन टुकड़ों को आग में जला डालें तो भी मैं मुस्लिम को आपके हवाले न करूँगा। मुरौवत इसे कभी क़बूल नहीं करती कि अपनी पनाह में आनेवाले आदमी को दुश्मन के हवाले किया जाय। यह शराफ़त के ख़िलाफ़ है। अरब की आन के ख़िलाफ़ है। अगर मैं ऐसा करूँ, तो अपनी ही निगाह में गिर जाऊँगा। मेरे मुँह पर हमेशा के लिए स्याही का दाग़ लग जायगा। और, आनेवाली नस्लें मेरे नाम पर लानत करेंगी।

क़ीस—(**हानी को किनारे ले जाकर**) हानी, सोचो, इसका अंजाम क्या होगा? तुम पर, तुम्हारे ख़ानदान पर, तुम्हारे क़बीले पर आफ़त आ जायगी। इतने आदमियों को क़ुरबान करके एक आदमी की जान बचाना कहाँ की दानाई है?

हानी—क़ीस, तुम्हारे मुंह से ये बातें ज़ेबा नहीं। मैं हुसैन के चचेरे भाई के साथ कभी दग़ा न करूँगा, चाहे मेरा सारा ख़ानदान क़त्ल कर दिया जाय।

ज़ियाद—शायद तुम अपनी ज़िन्दगी से बेज़ार हो गये हो।

हानी—आप मुझे अपने मकान पर बुलाकर मुझे क़त्ल की धमकी दे रहे हैं। मैं कहता हूँ कि मेरा एक क़तरा ख़ून इस आलीशान इमारत को हिला देगा। हानी बेकस, बेज़ार और बेमददगार नहीं है।

ज़ियाद—(**हानी के मुँह पर सोंटे से मारकर**) ख़लीफ़ा का नायब किसी के मुँह से अपनी तौहीन न सुनेगा, चाहे वह दस हज़ार क़बीले का सरदार क्यों न हो।

हानी—(**नाक से ख़ून पोंछते हुए**) ज़ालिम! तुझे शर्म नहीं आती कि तू एक निहत्थे आदमी पर वार कर रहा है। काश मैं जानता कि तू दग़ा करेगा, तो तू यों न बैठा रहता।

सुले०—ज़ियाद! मैं तुम्हें ख़बरदार किये देता हूँ कि अगर हानी को क़ैद किया, तो तू भी सलामत न बचेगा।

[**ज़ियाद सुलेमान को मारने उठता है, लेकिन हज्जाज उसे रोक लेता है।**]

ज़ियाद—तुम लोग बैठे मुँह क्या ताक रहे हो, पकड़ लो इस बुड्ढे को।

[**बाहर की तरफ़ शोर मचता है।**]

यह शोर कैसा है ?

क़ीस—(**खिड़की से बाहर की तरफ़ झाँककर**) बाग़ियों की एक फ़ौज इस तरफ़ बढ़ती चली आ रही है।

ज़ियाद—कितने आदमी होंगे ?

क़ीस—क़सम खुदा की, दस हज़ार से कम नहीं हैं।

ज़ियाद—(**सिपाही को बुलाकर**) हानी को ले जाओ और उस कोठरी में बंद कर दो, जहाँ कभी आफ़ताब की किरणें नहीं पहुँचतीं।

सुले०—ज़ियाद, मैं तुझे खबरदार किये देता हूँ, कि तुझे खुद न उसी कोठरी में क़ैद होना पड़े।

[**सुलेमान और मुख़तार बाहर चले जाते हैं।**]

क़ीस—बाग़ियों की एक फ़ौज बड़ी तेज़ी से बढ़ती चली आ रही है। बीस हज़ार से कम न होगी। मुस्लिम झंडा लिये हुए सबके आगे हैं।

ज़ियाद—दरवाज़े बन्द कर लो। अपनी-अपनी तलवारें लेकर तैयार हो जाओ। क़सम खुदा की, मैं इस बग़ावत का मुक़ाबला ज़बान से करूँगा। (**छत पर चढ़कर बाग़ियों से पूछता है**) तुम लोग क्यों शोर मचाते हो ?

एक आ०—हम तुझसे हानी के ख़ून का बदला लेने आये है।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम, जीते-जागते आदमी के ख़ून का बदला आज तक कभी किसी ने न लिया। अगर मैं झूठा हूँ, तो तुम्हारे शहर का क़ाज़ी तो झूठ न बोलेगा। (**क़ाज़ी को नीचे से बुलाकर**) बाग़ियों से कह दो, हानी ज़िन्दा है।

क़ाज़ी—या अमीर ! मैं हानी को जब तक अपनी आँखों से न देख लूँ, मेरी ज़बान से यह तसदीक़ न होगी।

ज़ियाद—क़लाम पाक की क़सम, मैं तमाम मुल्लाओं को वासिल जहन्नुम कर दूँगा। जा देख आ, जल्दी कर।

[**क़ाज़ी नीचे जाता है, और क्षण-भर में लौट आता है।**]

क़ाज़ी—ऐ कूफ़ा के बाशिन्दो ! मैं ईमान की रू से तसदीक़ करता हूँ कि शेख़ हानी ज़िन्दा हैं। हाँ, उनकी नाक से ख़ून जारी है।

मु०—बढ़े चलो। महल पर चढ़ जाओ। क्या कहा, ज़ीने नहीं हैं? जवाँमरदों को कभी ज़ीने का मुहताज नहीं देखा। तुम आप ज़ीने बन जाओ।

ज़ियाद—(दिल में) ज़ालिम एक-दूसरों के कन्धों पर चढ़ रहे हैं। (प्रकट) दोस्तो, यह हंगामा किस लिए है? मैं हुसैन का दुश्मन नहीं हूँ, मुस्लिम का दुश्मन नहीं हूँ। अगर तुमने हुसैन की बैयत क़बूल की है, तो मुबारक हो। वह शौक़ से आयें। मैं यज़ीद का गुलाम नहीं हूँ। जिसे क़ौम ख़लीफ़ा बनाये, उसका ग़ुलाम हूँ, लेकिन इसका तसफ़िया हंगामे से न होगा, इस मकान को पस्त करने से न होगा, अगर ऐसा हो, तो सबसे पहले इस पर मेरा हाथ उठेगा। मुझे क़त्ल करने से भी फ़ैसला न होगा, अगर ऐसा हो, तो मैं अपने हाथो अपना सिर क़लम करने को तैयार हूँ। इसका फ़ैसला आपस की सलाह से होगा।

मु०—ठहरो, बस, थोड़ी कसर और है। ऊपर पहुँचे कि तुम्हारी फ़तह है।

सुले०—ऐं! ये लोग भागे कहाँ जाते हैं? ठहरो-ठहरो, क्या बात है?

एक सि०—देखिए, क़ीस कुछ कह रहा है।

क़ीस—(खिड़की से सिर निकालकर) भाइयो, हम और तुम एक शहर के रहनेवाले हैं। क्या तुम हमारे खून से अपनी तलवारों की प्यास बुझाओगे? तुम में कितने ही मेरे साथ खेले हुए हैं। क्या यह मुनासिब है कि हम एक दूसरे का खून बहायें? हम लोगों ने दौलत के लालच से, रुतबे के लालच से और हुकूमत के लालच से यज़ीद की बैयत नहीं क़बूल की है, बल्कि महज़ इसलिए कि कूफ़ा की गलियों में खून के नाले न बहें।

कई आ०—हम ज़ियाद से लड़ना चाहते हैं, अपने भाइयों से नहीं।

मु०—ठहरो-ठहरो। इस दग़ाबाज़ की बातों में न आओ।

सुले०—अफ़सोस, कोई नहीं सुनता। सब भागे चले जाते हैं। वह कौन बदनसीब है, जिसके आदमी इतनी आसानी से बहकाये जा सकते हैं।

—मेरी नादानी थी कि इन पर एतबार किया।

सुले०—मैं हज़रत हुसैन को कौन मुँह दिखाऊँगा। ऐसे लोग दग़ा देते जा रहे हैं, जिनको मैं तक़दीर से ज़्यादा अटल समझता था। क़ीस गया,

हज्जाज गया, हारिस गया, शीश ने दग़ा दी, अशअस ने दग़ा दी। जितने अपने थे, सब बेगाने हो गये।

मुख़०—अब हमारे साथ कुल तीस आदमी और रह गये। (**यज़ीद के सिपाही महल से निकलते हैं।**) खुदा, इन मूज़ियों से बचाओ। हज़रत मुस्लिम, मुझे अब कोई ऐसा मकान नज़र नहीं आता, जहाँ आपकी हिफ़ाज़त कर सकूँ। मुझे यहाँ की मिट्टी से भी दग़ा की बू आ रही है।

कसीर—ग़रीब का मकान हाज़िर है।

मुख़०— अच्छी बात है। हज़रत मुस्लिम, आप इनके साथ जायँ। हमें रुख़सत कीजिए। हम दो-चार ऐसे आदमियों का रहना ज़रूरी है, जो हज़रत हुसैन पर अपनी जान निसार कर सकें। हमें अपनी जान प्यारी नहीं, लेकिन हुसैन की ख़ातिर उसकी हिफ़ाज़त करनी पड़ेगी।

[**वे दोनो एक गली में ग़ायब हो जाते हैं।**]

बारहवाँ दृश्य

[**६ बजे रात का समय। मुस्लिम एक अँधेरी गली में खड़े हैं। थोड़ी दूर पर एक चिराग़ जल रहा है। तौआ अपने मकान के दरवाज़े पर बैठी हुई है।**]

मुस्लिम—(**स्वगत**) उफ़्! इतनी गरमी मालूम होती है कि बदन का ख़ून आग हो गया। दिन-भर गुज़र गया, कहीं पानी का एक बूँद भी न नसीब हुआ। एक दिन, सिर्फ़ एक दिन पहले २० हज़ार आदमियों ने मेरे हाथों पर हुसैन की बैयत ली थी। आज किसी से एक बूँद पानी माँगते हुए ख़ौफ़ होता है कि कहीं गिरफ्तार न हो जाऊँ। साए पर दुश्मन का गुमान होता है। खुदा से अब मेरी यही दुआ है कि हुसैन मक्के से न चले हों। आह कसीर! ख़ुदा तुम्हें जन्नत मे जगह दे। कितना दिलेर, कितना जाँबाज़! दोस्त की हिमायत का पाक फ़र्ज़ इतनी जवाँमरदी से किसने पूरा किया होगा! तुम दोनो बाप और बेटे इस दग़ा और फ़रेब की दुनिया में रहने के लायक़ न थे। तुम्हारी मज़ार पर हूरें फ़ातिहा पढ़ने आयेंगी। आह! अब प्यास के

मारे नहीं रहा जाता। दुश्मन की तलवार से मरना इतना खौफ़नाक नहीं है, जितना प्यास से तड़प-तड़पकर मरना। चिराग़ नज़र आता है। वहाँ चलकर पानी माँगूँ, शायद मिल जाय। (**प्रकट**) ऐ नेक बीबी, मेरा प्यास के मारे बुरा हाल है, थोड़ा-सा पानी पिला दो।

तौआ—आओ, बैठो, पानी लाती हूँ।

[**वह पानी लाती है, और मुस्लिम पीकर दीवार से लगकर बैठते हैं।**]

तौआ—ऐ खुदा के बन्दे, क्या तूने पानी नहीं पिया ?

मु०—पी चुका।

तौआ—तो अब घर जाओ ? यहाँ अकेले खड़ा रहना मुनासिब नहीं है। ज़ियाद के सिपाही चक्कर लगा रहे हैं, ऐसा न हो, तुम्हें शुबहे में पकड़ लें।

मु०—चला जाऊँगा।

तौआ—हाँ बेटा, ज़माना खराब है, अपने घर चले जाओ।

मु०—चला जाऊँगा।

तौआ—रात गुज़रती जाती है। तुम चले जाओ, तो मैं दरवाज़ा बन्द कर लूँ।

मु०—चला जाऊँगा।

तौआ—सुभानअल्लाह ! तुम भी अजीब आदमी हो। मैं तुमसे बार-बार घर जाने को कहती हूँ, और तुम उठते ही नहीं। मुझे तुम्हारा यहाँ पड़ा रहना पसन्द नहीं। कहीं कोई वारदात हो जाय, तो मैं खुदा के दरगाह में गुनहगार बनूँ।

मु०—ऐ नेक बीबी, जिसका यहाँ घर ही न हो, वह किसके घर चला जाय। जिसके लिए घरों के दरवाज़े नहीं, सड़कें बन्द हो गयी हों, उसका कहाँ ठिकाना है। अगर तुम्हारे घर में जगह और दिल में दर्द हो, तो मुझे पनाह दो। शायद मैं कभी इस नेकी का बदला दे सकूँ।

तौआ—तुम कौन हो ?

मु०—मैं वही बदनसीब आदमी हूँ, जिसकी आज घर-घर तलाश हो रही है। मेरा नाम मुस्लिम है।

तौआ—या हज़रत, तुम पर मेरी जान फ़िदा हो। जब तक तौआ ज़िन्दा है, आपको किसी दूसरे घर जाने की ज़रूरत नहीं है। खुशनसीब कि मरने के वक्त आपकी ज़ियारत हुई। मैं ज़ियाद से क्यों डरूँ? जिसके लिए मौत के सिवा और कोई आरज़ू नहीं। आइए, आपको अपने मकान के दूसरे हिस्से में ठहरा दूँ, जहाँ किसी का गुज़र नहीं हो सकता। [**मुस्लिम तौआ के साथ जाते हैं।**] यहाँ आप आराम कीजिए, मैं खाना लाती हूँ।

[**बलाल का प्रवेश।**]

बलाल—अम्मा, आज ज़ियाद ने लोगों की खताएँ माफ़ कर दीं, सबको तसल्ली दी, और इतमीनान दिलाया कि तुम्हारे साथ कोई सख्ती न की जायगी। हज़रत मुस्लिम का न-जाने क्या हाल हुआ।

तौआ—जो हुसैन का दुश्मन है, उसके क़ौल का क्या एतबार।

बलाल—नहीं अम्मा, छोटे-बड़े खातिर से पेश आये। उसकी बातें ऐसी होती हैं कि एक-एक लफ्ज़ दिल में चुभ जाता है। हज़रत मुस्लिम का बचना अब मुझे भी मुश्किल जान पड़ता है। अब खयाल होता है, उनके यहाँ आने से हम लोगों में निफ़ाक़ पैदा हो गया। ज़ियाद ने वादा किया है कि जो उन्हें गिरफ्तार करा देगा, उसे बहुत कुछ इनाम-एकराम मिलेगा।

तौआ—बेटा, कहीं तेरी नीयत तो नहीं बदल गयी। खुदा की क़सम, मैं तुझे कभी दूध न बख्शूँगी।

बलाल—अम्मा, खुदा न करे, मेरी नीयत में फ़र्क़ आये। मैं तो सिर्फ़ बात कह रहा था। आज सारा शहर ज़ियाद को दुआएँ दे रहा है।

[**तौआ प्याले में खाना लेकर मुस्लिम को दे आती है।**]

बलाल—हज़रत हुसैन तशरीफ़ न लायें, तो अच्छा हो। मुझे खौफ़ है कि लोग उनके साथ दग़ा करेंगे।

तौआ—ऐसी बातें मुँह से न निकाल। मुँह-हाथ धो ले। क्या तुझे भूख नहीं लगी, या ज़ियाद ने दावत कर दी?

बलाल—खुदा मुझे उसकी दावत से बचाये। खाना ला।

[**तौआ उसके सामने खाना रख देती है, और फिर प्याले में कुछ लेकर मुस्लिम को दे आती है।**]

बलाल—यह पिछवाड़े की तरफ़ बार-बार क्यों जा रही हो अम्मा ?

तौआ—कुछ नहीं बेटा ! यों ही एक ज़रूरत से चली गयी थी।

बलाल—हज़रत मुस्लिम पर न-जाने क्या गुज़री।

[खाना खाकर चारपाई पर लेटता है, तौआ बिस्तर लेकर मुस्लिम की चारपाई पर बिछा आती है।]

बलाल—अम्मा, फिर तुम उधर गयीं, और कुछ लेकर गयीं। आख़िर माजरा क्या है ? कोई मेहमान तो नहीं आया है ?

तौआ—बेटा, मेहमान आता, तो क्या उसके लिए यहाँ जगह न थी ?

बलाल—मगर कोई-न-कोई बात है ज़रूर। क्या मुझसे भी छिपाने की ज़रूरत है ?

तौआ—तू सो जा, तुझसे क्या।

बलाल—जब तक बतला न दोगी, तब तक मैं न सोऊँगा।

तौआ—किसी से कहेगा तो नहीं ?

बलाल—तुम्हें मुझ पर भी एतबार नहीं ?

तौआ—क़सम खा।

बलाल—ख़ुदा की क़सम है, जो किसी से कहूँ।

तौआ—(बलाल के कान में) हज़रत मुस्लिम हैं।

बलाल—अम्मा, ज़ियाद को खबर मिल गयी, तो हम तबाह हो जायेंगे।

तौआ—खबर कैसे हो जायगी। मैं तो कहूँगी नहीं। हाँ तेरे दिल की नहीं जानती। करती क्या, एक तो मुसाफ़िर, दूसरे हुसैन के भाई। घर में जगह न होती, तो दिल मे बैठा लेती।

बलाल—(दिल में) अम्मा ने मुझे यह राज़ बता दिया, बड़ी ग़लती की। मैंने ज़िद करके पूछा, मुझसे ग़लती हुई। दिल पर क्योंकर क़ाबू रख सकता हूँ। एक बार से बादशाहत मिलती हो, तो ऐसा कौन हाथ है, जो न उठ जायगा। एक बात से दौलत मिलती हो, ज़िन्दगी के सारे हौसिले पूरे होते हों, तो वह कौन ज़ुबान है, जो चुप रह जायगी। ऐ दिल, गुमराह न हो, तूने सख्त क़समें खायी है। लानत का तौक़ गले में न डाल। लेकिन होगा तो वही, जो मुक़द्दर में है। अगर मुस्लिम की तक़दीर में बचना लिखा

है, तो बचेंगे, चाहे सारी दुनिया दुश्मन हो जाय। मरना लिखा है, तो मरेंगे चाहे सारी दुनिया उन्हें बचाये।

[**उठकर तौआ की चारपाई की तरफ़ देखता है, और चुपके-से दरवाज़ा खोलकर चला जाता है।**]

तौआ—(**चौंककर उठ बैठती है**) आह! ज़ालिम, मा से भी दग़ा की! तुझे यह भी शर्म न आयी कि हुसैन का भाई मेरे मकान में गिरफ़्तार हो। आक़बत के दिन खुदा को कौन-सा मुँह दिखायेगा। एक कसीर था कि अपनी और अपने बेटे की जान अपने मेहमान पर निसार कर दी, और एक बदनसीब मैं हूँ कि मेरा बेटा उसी मेहमान को दुश्मनों के हवाले करने जा रहा है!

[**बाहर शोर सुनायी देता है। मुस्लिम तौआ के कमरे में आते हैं।**]

मु०—तौआ, यह शोर कैसा है?

तौआ—या हज़रत! क्या बताऊँ, मेरा बेटा मुझसे दग़ा कर गया। वह बुरी सायत थी कि मैंने अपने घर में आपको पनाह दी। काश अगर मैंने उस वक्त बेमुरौवती की होती, तो आप इस ख़तरे में न पड़ते। अगर कभी किसी मा को बेटा जनने पर अफ़सोस हुआ है, तो वह बदनसीब मा मैं हूँ। अगर जानती कि यह यों दग़ा करेगा, तो ज़च्चेख़ाने ही में उसका गला घोंट देती।

मु०—नेक बीबी, शरमिन्दा न हो। तेरे बेटे की ख़ता नहीं, सब कुछ वही हो रहा है, जो तक़दीर में था, और जिसकी मुझे ख़बर थी। लेकिन दुनिया में रहकर इन्साफ़, इज़्ज़त और ईमान के लिए प्राण देना हरएक सच्चे मुसलमान का फ़र्ज़ है। खुदा नबियों के हाथों हिदायत के बीज बोता है, और शहीदों के खून से उसे सींचता है। शहादत वह आला-से-आला रुतबा है, जो खुदा इन्सान को दे सकता है। मुझे अफ़सोस सिर्फ़ यह है, कि जो बात एक दिन पहले होनी चाहिए थी, वह आज दो खुदा के बंदों का खून बहाने के बाद हो रही है।

[**ज़ियाद के आदमी बाहर से तौआ के घर में आग लगा देते हैं, और मुस्लिम बाहर निकलकर दुश्मनों पर टूट पड़ते हैं।**]

एक सिपाही—तलवार क्या है, बिजली है। खुदा बचाये।

[मुस्लिम का हाथ पकड़ता है, और वहीं गिर पड़ता है।]

दूसरा सिपाही—अब इधर चला, जैसे कोई मस्त शेर डकारता हुआ चला आता हो। बन्दा तो घर की राह लेता है, कौन जान दे।

[भागता है।]

तीसरा सिपाही—अर....र....र....या हज़रत मैं ग़रीब मुसाफ़िर हूँ, देखने आया था कि यहाँ क्या हो रहा है।

[मुस्लिम का हाथ पकड़ता है, और वहीं गिर पड़ता है]

चौथा सिपाही—जहन्नुम मे जाय ऐसी नौकरी। आदमी आदमी से लड़ता है कि देव से। या हज़रत, मैं सिपाही नहीं हूँ, मैं तो हुज़ूर के हाथों पर बैयत करने आया था।

[मुस्लिम का हाथ पकड़ता है, और वहीं गिर पड़ता है।]

पाँचवाँ सिपाही—किधर से भागें, कहीं जगह नहीं मिलती। या हज़रत, अपनी बूढ़ी मा का अकेला लड़का हूँ। जान बख्श दें, तो हुज़ूर की जूतियाँ सीधी करूँगा।

[तलवार पड़ते ही गिर पड़ता है। सिपाहियों में भगदड़ पड़ जाती है।]

क़ीस—जवानो, हिम्मत न हारो। तुम तीन सौ हो। कितनी शर्म की बात है कि एक आदमी से इतना डर रहे हो।

एक सिपाही—बड़े बहादुर हो, तो तुम्हीं क्यों नहीं उससे लड़ आते? दुम दबाये पीछे क्यों खड़े हो? क्या तुम्हीं को अपनी जान प्यारी है?

क़ीस—हज़रत मुस्लिम, अमीर ज़ियाद का हुक्म है कि अगर आप हथियार रख दें, तो आपको पनाह दी जाय। (**सिपाहियों से**) तुम सब छतों पर चढ़ जाओ, और ऊपर से पत्थर फेको।

मु०—ऐ खुदा और रसूल के दुश्मन, मुझे तेरी पनाह की ज़रूरत नहीं है। मैं यहाँ तुझसे पनाह माँगने नहीं आया हूँ, तुझे सचाई के रास्ते पर लाने

आया हूँ। (एक पत्थर सिर पर आता है) ऐ गुमराहो ! क्या तुमने इस्लाम से मुँह फेरकर शराफ़त और इन्सानियत से भी मुँह फेर लिया। क्या तुम्हें शर्म नहीं आती कि तुम अपने रसूल पाक के अज़ीज़ पर पत्थर फेक रहे हो। हमारे साथ तुम्हारा यह कमीनापन !

[तलवार लेकर टूट पड़ते हैं।]

कूचे में रास्ती के हम अब गदा हुए हैं,
क्या ख़ौफ़ मौत का है, हक़ पर फ़िदा हुए हैं।
ईमाँ है अपना मुस्लिम मकरोदग़ा से नफ़रत,
दुनिया से फेरकर मुँह नक़्शे-वफ़ा हुए हैं।
क्या उनपे हाथ उठाऊँ जो मौत से हैं ख़ायफ़,
जो राहे-हक़ से फिरकर सरफ़े-दग़ा हुए हैं।
दुनिया में आके इक दिन हर शख़्स को है मरना,
जन्नत है उनकी, जो याँ वक़्फ़े-ज़फ़ा हुए हैं।

क़ीस—कलामे पाक की क़सम, हम आपसे फ़रेब न करेंगे। अगर हम आपसे झूठ बोलें, तो हमारी नजात न हो।

मु०—वल्लाह! मुझे ज़िन्दा गिरफ़्तार करके ज़ियाद के तानों का निशाना न बना सकेगा।

क़ीस—(आहिस्ते से) यह शेर इस तरह क़ाबू में न आयगा। इसका सामना करना मौत का लुक़मा बनना है। यहाँ गहरा गड्ढा खोदो। जब तक वह औरों को गिराता हुआ आये, तब तक गड्ढा तैयार हो जाना चाहिए। यहाँ अँधेरा है, वह जोश में इधर आते ही गिर जायगा।

एक सि०—ज़ियाद पर लानत हो, जिसने हमें शेर से लड़ने के लिए भेजा। या हज़रत, रहम, रहम !

दू० सि०—ख़ुदा ख़ैर करे। क्या जानता था, यहाँ मौत का सामना करना पड़ेगा। बाल-बच्चों की खबर लेनेवाला कोई नहीं।

[मुस्लिम गड्ढे में गिर पड़ते हैं।]

मु०—जालिमो, आखिर तुमने दग़ा की !

क़ीस—पकड़ लो, पकड़ लो, निकलने न पाये। ख़बरदार, क़त्ल न करना; ज़िन्दा पकड़ लो।

अशअस—तलवार का हक़दार मैं हूँ।

क़ीस—जिरह मेरा हिस्सा है।

अश०—ख़ोद उतार लो, साद को देंगे।

मु०—प्यास! बड़े ज़ोरों की प्यास है। ख़ुदा के लिए एक घूँट पानी पिला दो।

क़ीस—अब जहन्नुम के सिवा यहाँ पानी का एक क़तरा भी न मिलेगा।

मुस०—तुफ़ है तुझ पर ज़ालिम, तुझे शरीफ़ों की तरह ज़बह करने की भी तमीज़ नहीं। मरनेवालों से ऐसी दिल-ख़राश बातें की जाती हैं? अफ़सोस।

अश०—अब अफ़सोस करने से क्या फ़ायदा। यह तुम्हारे फ़ेल का नतीजा है।

मु०—आह! मैं अपने लिए अफ़सोस नहीं करता। रोता हूँ हुसैन के लिए, जिसे मैंने तुम्हारी मदद के लिए आमादा किया। जो मेरी ही मिन्नतों से अपने गोशे पर निकलने को राज़ी हुआ। जब कि ख़ानदान के सभी आदमी तुम्हारी दग़ाबाज़ी का ख़ौफ़ दिला रहे थे, मैंने ही उन्हें यहाँ आने पर मजबूर किया। रोता हूँ कि जिस दग़ा ने मुझे तबाह किया, वह उन्हें और उनके साथ उनके ख़ानदान को भी तबाह कर देगी। क्या तुम्हारे ख़याल में यह रोने की बात नहीं है? तुमसे कुछ सवाल करूँ?

अश०—हुसैन की बैयत के सिवा और जो सवाल चाहे कर सकते हो।

मु०—हुसैन को मेरी मौत की इत्तिला दे देना।

अश०—मंज़ूर है।

[कई सिपाही मुस्लिम को रस्सियों से बाँधकर ले जाते हैं।]

तेरहवाँ दृश्य

[प्रातःकाल का समय। ज़ियाद का दरबार। मुस्लिम को कई आदमी मुश्क कसे लाते हैं।]

मु०—मेरा उस पर सलाम है, जो हिदायत पर चलता है, आक़बत से डरता है, और सच्चे बादशाह की बन्दगी करता है।

चोबदार—मुस्लिम ! अमीर को सलाम करो।

मु०—चुप रह ! अमीर, मेरा मालिक, मेरा आक़ा, मेरा इमाम हुसैन है।

ज़ियाद—तुमने कूफ़ा में आकर क़ानून के मुताबिक़ क़ायम की हुई बादशाहत को उखाड़ने की कोशिश की, बाग़ियों को भड़काया, और रियासत में निफ़ाक़ पैदा किया।

मु०—कूफ़ा क़ानून के मुताबिक़ न कोई सल्तनत क़ायम थी, न है। मैं उस शख़्स का क़ासिद हूँ, जो चुनाव के क़ानून से, विरासत के क़ानून से और लियाक़त से अमीर है। कूफ़ावालों ने खुद उसे अमीर बनाया। अगर तुमने लोगों के साथ इन्साफ़ किया होता, तो बेशक, तुम्हारा हुक्म जायज़ था। रियाया की मर्ज़ी और सब हक़ों को मिटा देती है। मगर तुमने लोगों पर वे ज़ुल्म किये कि क़ैसर ने भी न किये थे। बेगुनाहों को सजाएँ दीं, जुरमाने के हीले से उनकी दौलत लूटी, अमन रखने के हीले से उनके सरदारों को क़त्ल किया। ऐसे ज़ालिम हाकिम का, चाहे वह किसी हक़ के बिना पर हुकूमत करता हो, हुकूमत करने का कोई हक़ नहीं रहता, क्योंकि हैवानी ताक़त कोई हक़ नहीं है। ऐसी हुकूमत को मिटाना हर सच्चे आदमी का फ़र्ज़ है। और, जो इस फ़र्ज़ से खौफ़ या लालच के कारण मुँह मोड़ता है, वह इन्सान और खुदा, दोनों ही की निगाहों में गुनहगार है। मैंने अपने मक़दूर-भर रियाया को तेरे पंजे से छुड़ाने की कोशिश की, और मौक़ा पाऊँगा, तो फिर करूँगा।

ज़ियाद—वल्लाह, तू फिर इसका मौक़ा न पायेगा। तूने बग़ावत की है। बग़ावत की सज़ा क़त्ल है। और, दूसरे बाग़ियों की इबरत के लिए मैं तुझे इस तरह क़त्ल कराऊँगा, जैसे कोई अब तक न किया गया होगा।

मु०—बेशक। यह लियाक़त तुझी में है।

ज़ियाद०—इस गुस्ताख को ले जाओ, और सबसे ऊँची छत पर क़त्ल करो।

मु०—साद, तुमको मालूम है कि तुम मेरे कराबतमन्द हो ?

साद०—मालूम है।

मु०—मैं तुमसे कुछ वसीयत करना चाहता हूँ।

साद०—शौक़ से करो।

मु०—मैंने यहाँ कई आदमियों से क़र्ज़ लेकर अपनी ज़रूरतों पर खर्च किया था। इस काग़ज़ पर उनके नाम और रक़में दर्ज हैं। तुम मेरा घोड़ा और मेरे हथियार बेचकर यह क़र्ज़ अदा कर देना, वरना हिसाब के दिन मुझे इन आदमियों से शर्मिन्दा होना होगा।

साद०—इसका इतमीनान रखिए।

मु०—मेरी लाश को दफ़न करा देना।

साद०—यह मेरे इमकान में नहीं है।

[जल्लाद आकर मुस्लिम को ले जाता है।]

अश०—या अमीर, मुस्लिम क़त्ल हुए। अब बग़ावत का कोई अन्देशा नहीं। अब आप हानी की जानबख़्शी कीजिए।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम, अगर मेरी नजात भी होती हो, तो हानी को नहीं छोड़ सकता।

अश०—लोग बिगड़ खड़े हों, तो ?

ज़ियाद०—जब क़ौम के सरदार मेरे तरफ़दार हैं, तो रियाया की तरफ़ से कोई अन्देशा नहीं। (जल्लाद को बुलाकर) तूने मुस्लिम को क़त्ल किया ?

जल्लाद—अमीर के हुक्म की तामील हो गयी। खुदावन्द किसी को इतनी दिलेरी से जान देते नहीं देखा। पहले नमाज़ पढ़ी, तब मुझसे मुस्किराकर कहा—'तू अपना काम कर'।

ज़ियाद—तूने उसे नमाज़ क्यों पढ़ने दिया ? किसके हुक्म से ?

जल्लाद०—ग़रीबपरवर, आख़िर नमाज़ के रोकने का अज़ाब जल्लादों के लिए भी भारी है, जिस्म को सिर से अलग कर देना इतना बड़ा गुनाह नहीं है, जितना किसी को खुदा की इबादत से रोकना।

ज़ियाद—चुप रह नामाक़ूल। तू क्या जानता है, किसको क्या सज़ा

देनी चाहिए। ग़ैरतमन्दों के लिए रूहानी ज़िल्लत क़त्ल से कहीं ज़्यादा तकलीफ़ देती है। ख़ैर, अब हानी को ले जा, और चौराहे पर क़त्ल कर डाल।

एक आ०—ख़ुदावन्द, यह ख़िदमत मुझे सुपुर्द हो।

ज़ियाद०—तू कौन है ?

आ०—हानी का ग़ुलाम हूँ। मुझ पर उसने इतने ज़ुल्म किये हैं कि मैं उसके ख़ून का प्यासा हो गया हूँ। आपकी निगाह हो जाय, तो मेरी पुरानी आरज़ू पूरी हो। मैं इस तरह क़त्ल करूँगा कि देखनेवाले आँखें बन्द कर लेंगे।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम, तेरा सवाल ज़रूर पूरा करूँगा।

[ग़ुलाम हानी को पकड़े हुए ले जाता है। कई सिपाही तलवारें लिये साथ-साथ जाते हैं।]

ग़ुलाम—(हानी से) मेरे प्यारे आक़ा, मैंने ज़िन्दगी-भर आपका नमक खाया, कितनी ही ख़ताएँ कीं, पर आपने कभी कड़ी निगाहों से नहीं देखा। अब आपके जिस्म पर किसी बेदर्द क़ातिल का हाथ पड़े, यह मैं नहीं देख सकता। मैं इस हालात में भी आपकी ख़िदमत करना चाहता हूँ। मैं आपकी रूह को इस जिस्म की क़ैद से इस तरह आज़ाद करूँगा कि ज़रा भी तकलीफ़ न हो। ख़ुदा आपको जन्नत दे, और ख़ता माफ़ करे।

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[दोपहर का समय। रेगिस्तान में हुसैन के क़ाफ़िले का पड़ाव। बगूले उड़ रहे हैं। हुसैन असग़र को गोद में लिये अपने ख़ेमे के द्वार पर खड़े हैं।]

हुसैन—(मन में) उफ़्, यह गर्मी! निगाहें जलती हैं। पत्थर की चट्टानों से चिनगारियाँ निकल रही हैं। झीलें, कुएँ, सब सूखे पड़े हुए हैं, गोया इन्हें गर्मी ने जला दिया हो। हवा से बदन झुलसा जाता है। बच्चों के चेहरे कैसे सँवला गये हैं। यह सफ़ेदी, यह रेगिस्तान, इसकी कहीं हद भी है या नहीं! जिन लोगों ने प्यास के मारे हौक-हौककर पानी पी लिया है, उनके कलेजे में दर्द हो रहा है। अब तक कूफ़ा से कोई क़ासिद नहीं आया। ख़ुदा जाने, मुस्लिम का क्या हाल हुआ। करीने से ऐसा मालूम होता है कि इराक़वालों ने उनसे दग़ा की, और उनको शहीद कर दिया, वरना यह ख़ामोशी क्यों? अगर वह जन्नत को सिधारे हैं, तो तेरे लिए भी दूसरा रास्ता नहीं है। शहादत मेरा इन्तज़ार कर रही है। कोई मुझसे मिलने आ रहा है।

[फ़र्ज़ूक़ का प्रवेश।]

फ़०—अस्सलामअलेक। या हज़रत हुसैन, मैंने बहुत चाहा कि मक्के ही में आपकी ज़ियारत करूँ, लेकिन अफ़सोस, मेरी कोशिश बेकार हुई।

हुसैन—अगर इराक़ से आये हो, तो वहाँ की क्या ख़बर है?

फ़०—या हज़रत! वहाँ की ख़बरें वे ही हैं, जो आपको मालूम हैं। लोगों के दिल आपके साथ हैं, क्योंकि आप हक़ पर हैं। और उनकी तलवारें यज़ीद के साथ हैं, क्योंकि उसके पास दौलत है।

हुसैन—और मेरे भाई मुस्लिम की भी कुछ ख़बर लाये हो?

फ़०—उनकी रूह जन्नत में है, और सिर क़िले की दीवार पर।

मातम है कई दिन से मुसलमानों के घर में ;
ख़न्दक़ में है लाश उनकी व सिर क़िले की दर में ।

हुसैन—(**सीने पर हाथ रखकर**) आह ! मुस्लिम, वही हुआ, जिसका मुझे खौफ़ था। अब तक तुम्हें कफ़न भी नसीब नहीं हुआ। क्या तुम्हारी नेकनीयती का यही सिला था ? आह ! तुम इतने दिनों तक मेरे साथ रहे, पर मैंने तुम्हारी क़द्र न जानी। मैंने तुम्हारे ऊपर ज़ुल्म किया, मैंने जान-बूझकर तुम्हारी जान ली। मेरे अज़ीज़ और दोस्त सब-के-सब मुझे कूफ़ावालों से होशियार कर रहे थे, पर मैंने किसी की न सुनी, और तुम्हें हाथ से खोया। मैं उनके बेटों को और उनकी बीवी को कौन मुँह दिखाऊँगा।

[**मुस्लिम की लड़की फ़ातिमा आती है ।**]

आओ बेटी, बैठो, मेरी गोद में चली आओ। कुछ खाया कि नहीं ?

फ़ातिमा—बुआ ने शहद और रोटी तो दी थी। चचाजान, अब हम लोग के दिन में अब्बा के पास पहुँचेंगे ? पाँच-छह दिन तो हो गये !

हुसैन—(**दिल में**) आह ! कलेजा मुँह को आता है। इस सवाल का क्या जवाब दूँ। कैसे कह दूँ कि अब तेरे अब्बा जन्नत में मिलेंगे। (**प्रकट**) बेटी, खुदा की जब मरज़ी होगी।

अली०—अहा ! तुम अब्बाजान की गोद में बैठ गयी। उतरिए चटपट।

फ़ातिमा—तुम मेरे अब्बाजान की गोद में बैठोगे, तो मैं भी उतार दूँगी।

हुसैन—बेटी, ही तुम्हारा अब्बाजान हूँ। तुम बैठी रहो। इसे बकने दो।

फ़ातिमा—आप मेरी तरफ़ देखकर आँखों में आँसू क्यों भरे हुए हैं ? आप मेरा इतना प्यार क्यों कर रहे हैं ? आप यह क्यों कहते हैं कि मैं ही अब्बाजान हूँ ? ऐसी बातें तो यतीमों से की जाती हैं।

हुसैन—(**रोकर**) बेटी, तेरे अब्बा को खुदा ने बुला लिया।

[**फ़ातिमा रोती हुई अपनी मा के पास जाती है। औरतें रोने लगती हैं।**]

जैनब—(**बाहर आकर**) भैया, यह क्या ग़ज़ब हो गया ?

हुसैन—बहन, क्या कहूँ, सितम टूट पड़ा। मुस्लिम तो शहीद हो गये। कूफ़ावालों ने दग़ा की।

जैनब—तो ऐसे दग़ाबाजों से मदद की क्या उम्मीद हो सकती है? मैं तुमसे मिन्नत करती हूँ कि यहीं से वापस चलो। कूफ़ावालों ने कभी वफ़ा नहीं की।

[**मुस्लिम के बेटे अब्दुल्ला का प्रवेश।**]

अब्दुल्ला—फूफीजान, अब तो अगर तक़दीर भी रास्ते में खड़ी हो जाय, तो भी मेरे क़दम पीछे न हटेंगे। तुफ़् है मुझ पर, अगर अपने बाप का बदला न लूँ! हाय वह इन्सान, जिसने कभी किसी से बदी नहीं की, जो रहम और मुरौवत का पुतला था, जो दिल का इतना साफ़ था कि उसे किसी पर शुबहा न होता था, इतनी बेदरदी से क़त्ल किया जाय!

[**अब्बास का प्रवेश।**]

अब्बास—बेशक, अब कूफ़ावालों को उनकी दग़ा की सज़ा दिये बग़ैर लौट जाना ऐसी ज़िल्लत है, जिससे हमारी गर्दन हमेशा झुकी रहेगी। खुदा को जो कुछ मंजूर है, वह होगा। हम सब शहीद हो जायँ, रसूल के ख़ानदान का निशान मिट जाय, पर यहाँ से लौटकर हम दुनिया को अपने ऊपर हँसने का मौक़ा न देंगे। मुझे यक़ीन है कि यह शरारत कूफ़ा के रईसों और सरदारों की है, जिन्हें ज़ियाद के वादों ने दीवाना बना रखा है। आप जिस वक्त कूफ़ा में क़दम रखेंगे, रियाया अपने सरदारों से मुँह फेरकर आपके क़दमों पर झुकेगी। और, वह दिन दूर नहीं, जब यज़ीद का नापाक सिर उसके तन से जुदा होगा। आप खुदा का नाम लेकर खेमे उखड़वाइए। अब देर करने का मौक़ा नहीं है। हक़ के लिए शहीद होना वह मौत है, जिसके लिए फ़रिश्तों की रूहें तड़पती हैं।

जैनब—भैया, मैं तुझ पर सदक़े। घर वापस चलो।

हुसैन—आह! अब यहाँ से वापस होना मेरे अख़्तियार की बात नहीं है। मुझे दूर से दुश्मन की फ़ौज का ग़ुबार नज़र आ रहा है। पुश्त की तरफ़ भी दुश्मन ने रास्ता रोक रखा है। दाहने-बायें कोसों तक बस्ती का निशान नहीं। हम अब कूफ़ा के सिवा कहीं नहीं जा सकते। कूफ़ा में हमें

तख्त नसीब हो या तख्ता, हमारे लिए कोई दूसरा मुक़ाम नहीं है। अब्बास, जाकर मेरे साथियों से कह दो, मैं उन्हें खुशी से इजाज़त देता हूँ, जहाँ जिसका जी चाहे, चला जाय। मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है। चलो, हम लोग खेमे उखाड़ें।

दूसरा दृश्य

[**सन्ध्या का समय। हुसैन का क़ाफ़िला रेगिस्तान में चला जा रहा है।**]

अब्बास—अल्लाहोअकबर! वह कूफ़ा के दरख्त नज़र आने लगे।

हबीब—अभी कूफ़ा दूर है। कोई दूसरा गाँव होगा।

अब्बास—रसूल पाक की क़सम, फ़ौज है। भालों की नोकें साफ़ नज़र आ रही हैं।

हुसैन—हाँ, फ़ौज ही है। दुश्मनों ने कूफ़े से हमारी दावत का यह सामान भेजा है। यहीं, उस टीले के क़रीब, खेमे लगा दो। अजब नहीं कि इसी मैदान में क़िस्मतों का फ़ैसला हो।

[**क़ाफ़िला रुक जाता है। खेमे गड़ने लगते हैं। बेगमें ऊँटों से उतरती हैं। दुश्मन की फ़ौज क़रीब आ जाती है।**]

अब्बास—ख़बरदार, कोई एक क़दम आगे न रखे। यहाँ हज़रत हुसैन के खेमे हैं।

अली अक०—अभी जाकर इन बेअदबों की तंबीह करता हूँ।

हुसैन—अब्बास, पूछो, ये लोग कौन हैं, और क्या चाहते हैं?

अब्बास—(**फ़ौज से**) तुम्हारा सरदार कौन है?

हुर—(**सामने आकर**) मेरा नाम हुर है। हज़रत हुसैन का गुलाम हूँ।

अब्बास—दोस्त दुश्मन बनकर आये, तो वह भी दुश्मन है।

हुर—या हज़रत, हाकिम के हुक्म से मजबूर हूँ, बैयत से मजबूर हूँ, नमक की क़ैद से मजबूर हूँ, लेकिन दिल हुसैन ही का ग़ुलाम है।

हुसैन—(**अब्बास से**) भाई, आने दो, इसकी बातों में सचाई की बू आती है।

हुर—या हज़रत, आपको कूफ़ावालों ने दग़ा दी है! ज़ियाद और यज़ीद दोनों आपको क़त्ल करने की तैयारियाँ कर रहे हैं। चारो तरफ़ से फ़ौजें जमा की जा रही हैं। कूफ़ा के सरदार आपसे जंग करने के लिए तैयार बैठे हैं।

हुसैन—पहले यह बतलाओ कि तुम्हारे सिपाही क्यों इतने निढाल और परेशान हो रहे हैं?

हुर—या हज़रत, क्या अर्ज़ करूँ। तीन पहर से पानी का एक बूँद न मिला। प्यास के मारे सबों के दम लबों पर आ रहे हैं।

हुसैन—(**अब्बास से**) भैया, प्यासों की प्यास बुझानी एक सौ नमाजों से ज़्यादा सबाब का काम है। तुम्हारे पास पानी हो, तो इन्हें पिला दो। क्या हुआ, अगर मेरे ये दुश्मन हैं, हैं तो मुसलमान—मेरे नाना के नाम पर मरनेवाले!

अब्बास—या हज़रत, आपके साथ बच्चे हैं, औरतें हैं, और पानी यहाँ उनका है।

हुसैन—इन्हें पानी पिला दो, मेरे बच्चों का खुदा है।

[**अब्बास, अली अकबर, हबीब पानी की मशकें लाकर सिपाहियों को पानी पिलाते हैं।**]

अब्बास—हुर, अब यह बतलाओ कि तुम हमसे सुलह करना चाहते हो या जंग?

हुर—हज़रत, मुझे आपसे न जंग का हुक्म दिया गया है, न सुलह का। मैं सिर्फ़ इसलिए भेजा गया हूँ कि हज़रत को ज़ियाद के पास ले जाऊँ, और किसी दूसरी तरफ़ न जाने दूँ।

अब्बास—इसके मानी यह हैं कि तुम जंग करना चाहते हो। हम किसी खलीफ़ा या आमिल के हुक्म के पाबन्द नहीं हैं कि किसी खास तरफ़ जायँ। मुल्क खुदा का है। हम आज़ादी से जहाँ चाहेंगे, जायँगे। अगर हमको कोई रोकेगा, तो उसे काँटों की तरह रास्ते से हटा देंगे।

हुसैन—नमाज़ का वक्त आ गया। पहले नमाज़ अदा कर लें, उसके बाद और बातें होंगी। हुर, तुम मेरे साथ नमाज़ पढ़ोगे या अपनी फ़ौज के साथ?

हुर—या हज़रत, आपके पीछे खड़े होकर नमाज़ अदा करने का सवाब न छोड़ूँगा, चाहे मेरी फ़ौज मुझसे जुदा क्यों न हो जाय।

———

तीसरा दृश्य

[सन्ध्या का समय—नसीमा बग़ीचे में बैठी आहिस्ता-आहिस्ता गा रही है।]

दफ़्न करने ले चले थे जब मेरे घर से मुझे,
काश तुम भी झाँक लेते रौज़ने घर से मुझे।
साँस पूरी हो चुकी दुनिया से रुख़सत हो चुका,
तुम अब आये हो उठाने मेरे बिस्तर से मुझे!
क्यों उठाता है मुझे मेरी तमन्ना को निकाल,
तेरे दर तक खींच लायी थी यही घर से मुझे।
हिज्र की शब कुछ यही मूनिस था मेरा ऐ क़ज़ा—
एक ज़रा रो लेने दे मिल-मिल के बिस्तर से मुझे।
याद है तस्कीन अब तक वह ज़माना याद है,
जब छुड़ाया था फ़लक ने मेरे दिलवर से मुझे।

[वहब का प्रवेश—नसीमा चुप हो जाती है।]

वहब—ख़ामोश क्यों हो गयीं? यही सुनकर मैं आया था।

नसीमा—मेरा गाना मेरा ख़याल है, तनहाई का मूनिस। अपना दर्द क्यों सुनाऊँ, जब कोई सुनना न चाहे।

वहब—नसीमा, शिक़वे करने का हक़ मेरा है, तुम इसे ज़बरदस्ती छीन लेती हो।

नसीमा—तुम मेरे हो, तुम्हारा सब-कुछ मेरा है, पर मुझे इसका यक़ीन नहीं आता। मुझे हरदम यही अन्देशा रहता है कि तुम मुझे भूल जाओगे, तुम्हारा दिल मुझसे बेज़ार हो जायगा, मुझसे बेएतनाई करने लगोगे। यह खयाल दिल से नहीं निकलता। बहुत चाहती हूँ कि निकल जाय, पर वह

किसी पानी से भीगी हुई बिल्ली की तरह नहीं निकलता। तब मैं रोने लगती हूँ, और ग़मनाक ख़याल मुझे चारों तरफ़ से घेर लेते हैं। तुमने न-जाने मुझ पर कौन-सा जादू कर दिया है कि मैं अपनी नहीं रही। मुझे ऐसा गुमान होता है कि हमारी बहार थोड़े ही दिनों की मेहमान है। मैं तुमसे इल्तजा करती हूँ कि मेरी तरफ़ से निगाहें न मोटी करना, वरना मेरा दिल पाश-पाश हो जायगा। मुझे यहाँ आने के पहले कभी न मालूम हुआ था कि मेरा दिल इतना नाज़ुक है।

वहब—मेरी कैफ़ियत इससे ठीक उल्टी है। मेरे दिल में एक नयी क़ूवत आ गयी है, मुझे ख़याल होता है कि अब दुनिया की कोई फ़िक्र, कोई तर्ग़ीब, कोई आरज़ू मेरे दिल पर फ़तह नहीं पा सकती। ऐसी कोई ताक़त नहीं है, जिसका मैं मुक़ाबला न कर सकूँ। तुमने मेरे दिल की क़ूवत सौगुनी कर दी। यहाँ तक कि अब मुझे मौत का भी ग़म नहीं है। मुहब्बत ने मुझे दिलेर, बेख़ौफ़, मज़बूत बना दिया है, मुझे तो ऐसा गुमान होता है कि मुहब्बत क़ूवते-दिल की कीमिया है।

नसीमा—वहब, इन बातों से वहशत हो रही है, शायद हमारी तबाही के सामान हो रहे हैं। वहब, मैं तुम्हें न जाने दूँगी, कलाम पाक की क़सम, कहीं न जाने दूँगी। मुझे इसकी फ़िक्र नहीं कि कौन ख़लीफ़ा होता है और कौन अमीर। मुझे माल व जर की, इलाक़े व जागीर की मुतलक़ परवा नहीं। मैं तुम्हें चाहती हूँ, सिर्फ़ तुम्हें।

[**क़मर का प्रवेश** ।]

क़मर—वहब, देख, दरवाज़े पर ज़ालिम ज़ियाद के सिपाही क्या ग़ज़ब कर रहे हैं। तेरे वालिद को गिरफ्तार कर लिया है, और जामा मस्जिद की तरफ़ खींचे लिये जाते हैं।

नसीमा—हाय सितम, इसी लिए तो मुझे वहशत हो रही थी।

[**वहब उठ खड़ा होता है। नसीमा उसका हाथ पकड़ लेती है** ।]

वहब—नसीमा, मैं अभी लौटा आता हूँ, तुम घबराओ नहीं।

नसीमा—नहीं-नहीं, तुम यहाँ मुझे ज़िन्दा छोड़कर नहीं जा सकते। मैं

ज़ियाद को जानती हूँ, तुमको भी जानती हूँ। ज़ियाद के सामने जाकर फिर तुम नहीं लौट सकते।

क़मर—बेटा, अगर नसीमा तुझे नहीं जाने देती, तो मत जा। मगर याद रख, तेरे चेहरे पर हमेशा के लिए स्याही का दाग़ लग जायगा। खुद जाती हूँ। नसीमा, शायद हमारी-तुम्हारी फिर मुलाक़ात न हो, यह आख़िरी मुलाक़ात है। रुख़सत। वहब, घर-बार तुझे सौंपा, खुदा तुझे नेकी की तौफ़ीक़ दे, तेरी उम्र दराज़ हो।

वहब—अम्मा, मैं भी चलता हूँ।

क़मर—नहीं, तुझ पर अपनी बीवी का हक़ सबसे ज्यादा है।

वहब—नसीमा, खुदा के लिए....।

नसीमा—नहीं। मेरे प्यारे आक़ा, मुझे ज़िन्दा छोड़कर नहीं!

[**क़मर चली जाती है। वहब सिर थामकर बैठ जाता है।**]

नसीमा—प्यारे, तुम्हारी मुहब्बत की खतावार हूँ, जो सज़ा चाहे दो। मुहब्बत खुदग़रज़ होती है। मैं अपने चमन को हवा के झोंकों से बचाना चाहती हूँ। काश तक़दीर ने मुझे इस गुलज़ार में न बिठाया होता, काश मैंने इस चमन में अपना घोसला न बनाया होता, तो आज बर्क़ और सैयाद का इतना खौफ़ क्यों होता! मेरी बदौलत तुम्हें यह नदामत उठानी पड़ी, काश मैं मर जाती!

[**नसीमा वहब के पैरों पर सिर रख देती है।**]

———

चौथा दृश्य

[**आधी रात का समय। अब्बास हुसैन के ख़ेमे के सामने खड़े पहरा दे रहे हैं। हुर आहिस्ता से आकर ख़ेमे के क़रीब खड़ा हो जाता है।**]

हुर—(दिल में) खुदा को क्या मुँह दिखाऊँगा? किस मुँह से रसूल के सामने जाऊँगा? आह ग़ुलामी, तेरा बुरा हो। जिस बुज़ुर्ग ने हमें ईमान की रोशनी दी, खुदा की इबादत सिखायी, इन्सान बनाया, उसी के बेटे से

जंग करना मेरे लिए कितनी शर्म की बात है। यह मुझसे न होगा। मैं जानता हूँ, यज़ाद मेरे खून का प्यासा हो जायगा, मेरी जागीरें छीन ली जायँगी, मेरे लड़के रोटियों के मुहताज़ हो जायँगे, मगर दुनिया खोकर रसूल की निगाह का हक़दार हो जाऊँगा। मुझे न मालूम था कि यज़ीद की बैयत लेकर मैं अपनी आक़बत बिगाड़ने पर मजबूर किया जाऊँगा। अब यह जान हज़रत हुसैन पर निसार है। जो होना है, हो। यज़ीद की खिलाफ़त पर कोई हक़ नहीं। मैंने उसकी बैयत लेने में खास ग़लती की। उसके हुक्म की पाबन्दी मुझ पर फ़र्ज़ नहीं। खुदा के दरबार में मै इसके लिए गुनहगार न ठहरूँगा।

[आगे बढ़ता है।]

अब्बास—कौन है? खबरदार, एक क़दम आगे न बढ़े, वरना लाश ज़मीन पर होगी।

हुर—या हज़रत, आपका ग़ुलाम हुर हूँ। हज़रत हुसैन की खिदमत मे कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ।

अब्बास—इस वक्त वह आराम फ़रमा रहे हैं।

हुर—मेरा उनसे इसी वक्त मिलना ज़रूरी है।

अब्बास—(दिल में) दग़ा का अन्देशा तो नहीं मालूम होता। मैं भी इसके साथ चलता हूँ। ज़रा भी हाथ-पाँव हिलाया कि सिर उड़ा दूँगा। (प्रकट) अच्छा, आओ।

[अब्बास खेमे से बाहर हुसैन को बुला लाते हैं।]

हुर—या हज़रत, मुआफ़ कीजिएगा। मैंने आपको नावक्त तकलीफ़ दी। मैं यह अर्ज़ करने आया हूँ कि आप कूफ़ा की तरफ़ न जायँ। रात का वक्त है, मेरी फ़ौज सो रही है, आप किसी दूसरी तरफ़ चले जायँ। मेरी यह अर्ज़ क़बूल कीजिए।

हुसैन—हुर, यह अपनी जान बचाने का मौक़ा नहीं है, इस्लाम की आबरू को क़ायम रखने का सवाल है।

हुसैन—आप यमन की तरफ चले जायँ, तो वहाँ आपको काफ़ी मदद मिलेगी। मैंने सुना है, सुलेमान और मुखतार वहाँ आपकी मदद के लिए फ़ौज जमा कर रहे हैं।

हुसैन—हुर, जिस लालच ने कूफ़ा के रईसों को मुझसे फेर दिया, क्या वह यमन में अपना असर न दिखाएगा ? इन्सान की ग़फ़लत सब जगह एक-सी होती है। मेरे लिए कूफ़ा के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है। अगर तुम न जाने दोगे, तो ज़बर्दस्ती जाऊँगा। यह जानता हूँ कि वहीं मुझे शहादत नसीब होगी। इसकी खबर मुझे नाना की ज़बान मुबारक से मिल चुकी है। क्या खौफ़ से शहादत के रुतबे को छोड़ दूँ ?

हुर—अगर आप जाना ही चाहते हैं, तो मस्तूरात को वापस कर दीजिए।

हुसैन—हाय, ऐसा मुमकिन होता, तो मुझसे ज्यादा खुश कोई न होता। मगर इनमें से कोई भी मेरा साथ छोड़ने पर तैयार नहीं है।

[**किसी तरफ़ से ॐ ॐ की आवाज आ रही है।**]

हुर—या हज़रत, यह आवाज़ कहाँ से आ रही है ? इसे सुनकर दिल पर रोब तारी हो रहा है।

[**एक योगी भभूत रमाये, जटा बढ़ाये, मृग-चर्म कंधे पर रखे हुए आते हैं।**]

योगी—भगवन् ! मैं उस स्थान को जाना चाहता हूँ, जहाँ महर्षि मुहम्मद की समाधि है।

हुसैन—तुम कौन हो ? यह कैसी शक्ल बना रक्खी है ?

योगी—साधु हूँ। उस देश से आ रहा हूँ, जहाँ प्रथम ओंकार-ध्वनि की सृष्टि हुई थी। महर्षि मुहम्मद ने उसी ध्वनि से संपूर्ण जगत् को निनादित कर दिया है। उनके अद्वैतवाद ने भारत के समाधि-मग्न ऋषियों को भी जागृति प्रदान कर दी है। उसी महात्मा की समाधि का दर्शन करने के लिए मैं भारत से आया हूँ, कृपा कर मुझे मार्ग बता दीजिए।

हुसैन—आइए, खुशनसीब कि आपकी ज़ियारत हुई। रात का वक्त है, अँधेरा छाया हुआ है। इस वक्त यहीं आराम कीजिए। सुबह मैं आपके, साथ अपना एक आदमी भेज दूँगा।

योगी—(**ग़ौर से हुसैन के चेहरे को देखकर**) नहीं महात्मन्, मेरा व्रत है कि उस पावन भूमि का दर्शन किये बिना कहीं विश्राम न करूँगा। प्रभो

आपके मुखारविंद पर भी मुझे उसी महर्षि के तेज का प्रतिबिंब दिखायी देता है। आप उनके आत्मीय हैं?

हुसैन—जी हाँ, उनका नेवासा हूँ। मगर आपने नाना को तो देखा ही नहीं, फिर आपको कैसे मालूम हुआ कि मेरी सूरत उनसे मिलती है?

योगी—(हँसकर) भगवन्! मैंने उनका स्थूल शरीर नहीं देखा, पर उनके आत्मशरीर का दर्शन किया है। आत्मा द्वारा उनकी पवित्र वार्ता सुनी है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि आपमें वही पवित्र आत्मा अवतरित हुई है। आज्ञा दीजिए, आपके चरण रज से अपने मस्तक को पवित्र करूँ।

हुसैन—(**पैरों को हटाकर**) नहीं-नहीं, मैं इन्सान हूँ, और रसूल पाक की हिदायत है कि इन्सान को इन्सान की इबादत वाजिब नहीं।

योगी—धन्य है! मनुष्य के ब्रह्मत्व का कितना उच्च आदर्श है! वह ज्ञान-ज्योति, जो इस देश से उद्भासित हुई है, एक दिन समस्त भूमंडल को आलोकित करेगी, और देश-देशांतरों में सत्य और न्याय का मुख उज्ज्वल करेगी। हाँ, इस महर्षि की सन्तान न्याय-गौरव का पालन करेगी। अब मुझे आज्ञा दीजिए, आपके दर्शनों से कृतार्थ हो गया।

[**योगी चला जाता है।**]

हुसैन—अब मुझे अपने मरने का ग़म नहीं रहा। मेरे नाना की उम्मत हक़ और इन्साफ़ की हिमायत करेगी। शायद इसी लिए रसूल ने अपनी औलाद को हक़ पर क़ुरबान करने का फ़ैसला किया है। हुर, तुमने इस फ़क़ीर की पेशगोई सुनी?

हुर—या हज़रत, आपका रुतबा आज जैसा समझा है, ऐसा कभी न समझा था। हुजूर रसूल पाक से मेरे हक़ में दुआ करें कि मुझ रूहस्याह के गुनाह मुआफ़ करे।

[**चला जाता है।**]

हुसैन—अब्बास, अब हमें कूफ़ावालों को अपने पहुँचने की इत्तिला देनी चाहिए।

अब्बास—बजा है।

हुसैन—कौन जा सकता है ?

अब्बास—सैदावी को भेज दूँ ?

हुसैन—बहुत अच्छी बात है।

[अब्बास सैदावी को बुला लाते हैं।]

अब्बास—सैदावी, तुम्हें हमारे पहुँचने की खबर लेकर क़ूफ़ा जाना पड़ेगा। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि यह बड़े ख़तरे का काम है।

सैदावी—या हज़रत, जब आपकी मुझ पर निगाह है, तो फिर खौफ़ किस बात की।

हुसैन—शाबाश, यह ख़त लो, और वहाँ किसी ऐसे सरदार को देना, जो रसूल का सच्चा बंदा हो। जाओ, खुदा तुम्हें खैरियत से ले जाय।

[सैदावी जाता है।]

हुसैन—(दिल में) सैदावी, जाते हो, मगर मुझे शक है कि तुम जिन्दा लौटोगे ! तुमने, जिसे न दीन की हिफ़ाज़त का खयाल है, न हक़ का, जिसे दुश्मनों ने चारों तरफ़ से घेर नहीं रखा है, जिसको शहीद करने के लिए फ़ौजें नहीं जमा की जा रही हैं, जो दुनिया में आराम से ज़िन्दगी बसर कर सकता है, महज़ वफ़ादारी का हक़ अदा करने के लिए जान-बूझकर मौत के मुँह में क़दम रक्खा है, तो मैं मौत से क्यों डरूँ।

[गाते हैं।]

मौत का क्या उसको ग़म है, जो मुसल्माँ हो गया ;
जिसकी नीयत नेक है, जो सिद्क़ इमाँ हो गया।
कब दिलेरों को सताए फ़िक्र ज़र और ख़ौफ़ का ;
अज़्म सादिक़ उसका है, जो पाक दामाँ हो गया।
क्यों नदामत हो मुझे, दुनिया में गर ज़िन्दा रहा ;
जाय ग़म क्या है, जो नज़रे-तेग़ बुर्रां हो गया।
हो अदू दुनिया में रुसवा, आख़िरत में ग़म नसीब ;
मुनहरिफ़ दीं से हुआ, औ' नंग-दौराँ हो गया।

पाँचवाँ दृश्य

[रात का समय। हुसैन अपने ख़ेमे में सोये हुए हैं। वह चौंक पड़ते हैं, और लेटे हुए, चौकन्नी आँखों से, इधर-उधर ताकते हैं।]

हुसैन—(दिल में) यहाँ तो कोई नज़र नहीं आता। मैं हूँ, शमा है, और मेरा धड़कता हुआ दिल है। फिर मैंने आवाज़ किसकी सुनी! सिर में कैसा चक्कर आ रहा है। ज़रूर कोई था। ख़्वाब पर हक़ीक़त का धोखा नहीं हो सकता। ख़्वाब के आदमी शबनम के परदे में ढकी हुई तसवीरों की तरह होते हैं। ख़्वाब की आवाज़ें ज़मीन के नीचे से निकलनेवाली आवाज़ों की तरह मालूम होती हैं। उनमें यह बात कहाँ! देखूँ, कोई बाहर तो खड़ा नहीं है। (ख़ेमे से बाहर निकलकर) उफ़्, कितनी गहरी तारीकी है, गोया मेरी आँखों ने कभी रोशनी देखी ही नहीं। कैसा गहरा सन्नाटा है, गोया सुनने की ताक़त ही से महरूम हूँ। गोया यह दुनिया अभी-अभी अदम के ग़ार से निकली है (प्रकट) कोई है ?

[अली अकबर का प्रवेश।]

अली०—हाज़िर हूँ अब्बाजान, क्या इरशाद है ?

हुसैन—यहाँ से अभी कोई सवार तो नहीं गुज़रा ?

अली०—अगर मेरे होश-हवास बजा हैं, तो इधर कोई जानदार नहीं गुज़रा।

हुसैन—ताज्जुब है, अभी लेटा हुआ था, और जहाँ तक मुझे याद है, मेरी पलकें तक नहीं झपकीं, पर मैंने देखा, एक आदमी मुश्की घोड़े पर सवार सामने खड़े होकर मुझसे कह रहा है कि 'ऐ हुसैन! इराक़ जाने की जल्दी कर रहे हो, और मौत तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ी जा रही है।' बेटा, मालूम हो रहा है, मेरी मौत क़रीब है!

अली०—बाबा, क्या हम हक़ पर नहीं हैं ?

हुसैन—बेशक, हम हक़ पर हैं, और हक़ हमारे साथ है।

अली०—अगर हम हक़ पर हैं, तो मौत का क्या डर। क्या परवा, अगर हम मौत की तरफ़ जायँ या मौत हमारी तरफ़ आये।

हुसैन—बेटा, तुमने दिल खुश कर दिया। खुदा तुमको वह सबसे बड़ा इनाम दे, जो बाप बेटे को दे सकता है।

[**ज़हीर, हबीब, अब्दुल्ला, कलबी और उसकी स्त्री का प्रवेश।**]

अली०—कौन इधर से जा रहा है?

ज़हीर—हम मुसाफ़िर हैं। ये खेमे क्या हज़रत हुसैन के हैं?

अली०—हाँ।

ज़हीर—खुदा का शुक्र है कि हम मंज़िल मक़सूद पर पहुँच गये। हम उन्हीं की ज़ियारत के लिए कूफ़ा से आ रहे हैं।

हुसैन—जिसके लिए आप कूफ़ा से आ रहे हैं, वह खुद आपसे मिलने के लिए कूफ़ा जा रहा है। मैं ही हुसैन बिन अली हूँ।

ज़हीर—हमारे ज़हे-नसीब कि आपकी ज़ियारत हुई। हम सब-के-सब आपके ग़ुलाम हैं। कूफ़ा में इस वक्त दर व दीवार आपके दुश्मन हो रहे हैं। आप उधर क़स्द न फ़रमायें। हम इसी लिए चले आये हैं कि वहाँ रहकर आपकी कुछ खिदमत नहीं कर सकते। हमने हज़रत मुस्लिम के क़त्ल का खूनी नज़ारा देखा है, हानी को क़त्ल होते देखा है, और ग़रीब तौआ की बोटियाँ कटते देखी हैं। जो लोग आपकी दोस्ती का दम भरते थे, वे आज ज़ियाद के दाहने बाज़ू बने हुए हैं।

हुसैन—खुदा उन्हें नेक रास्ते पर लाये। तक़दीर मुझे कूफ़ा लिये जाती है, और अब कोई ताक़त मुझे वहाँ जाने से रोक नहीं सकती। आप लोग चलकर आराम फ़रमायें। कल का दिन मुबारक होगा, क्योंकि मैं उस मुक़ाम पर पहुँच जाऊँगा, जहाँ शहादत मेरे इन्तज़ार में खड़ी है।

[सब जाते हैं।]

छठा दृश्य

[**कर्बला का मैदान। एक तरफ़ फ़ेरात नदी लहरें मार रही है। हुसैन मैदान में खड़े हैं। अब्बास और अली अकबर भी उनके साथ हैं।**]

अली अकबर—दरिया के किनारे खेमे लगाये जायँ, वहाँ ठंडी हवा आयेगी।

अब्बास—बड़ी फ़िज़ा की जगह है।

हुसैन—(**आँखों में आँसू भरे हुए**) भाई, लहराते हुए दरिया को देख-कर खुद-ब-खुद दिल भरा आता है। मुझे खूब याद है कि इसी जगह एक बार वालिद मरहूम की फ़ौज उतरी थी। बाबा बहुत ग़मगीन थे। उनकी आँखों से आँसू न थमते थे। न खाना खाते थे, न सोते थे। मैंने पूछा—या हज़रत, आप क्यों इस क़दर बेताब हैं? मुझे छाती से लपटाकर बोले—बेटा, तू मेरे बाद एक दिन यहाँ आयेगा, उस दिन तुझे मेरे रोने का सबब मालूम होगा। आज मुझे उनकी वह बात याद आती है। उनका रोना बेसबब नहीं था। इसी जगह हमारे खून बहाये जायँगे, इसी जगह हमारी बहनें और बेटियाँ क़ैद की जायँगी, इसी जगह हमारे आदमी क़त्ल होंगे और हम ज़िल्लत उठायेंगे। खुदा की क़सम, इसी जगह मेरी गरदन की रगें कटेंगी, और मेरी दाढ़ी खून में रंगी जायँगी। इसी जगह का वादा मेरे नाना से अल्लाह-ताला ने किया है, और उसका वादा तक़दीर की तहरीर है।

[गाते हैं।]

देगा जगह कोई मेरे मुश्ते-ग़ुबार को,
बैठेगा कौन लेके किसी बेक़रार को।
दर सैकड़ों क़फ़स में हैं, फिर भी असीर हूँ,
कैसा मकाँ मिला है ग़रीबे-दयार को।
दिल-सोज़ कौन है, जो ज़माने के ज़ुल्म से
देखे मेरी बुझी हुई शमए-मज़ार को।
आख़िर है दास्तान शबे-ग़म कि याद मर्ग
करता है बद दीदए-अख़्तर शुमार को।
आवाज़ए-चमन की उमीद और मेरे बाद—
चुप कर दिया फ़लक ने ज़बाने-बहार को।
राहत कहाँ नसीब कि सहराए-ग़म की धूप—

देती है आग हर शजरे सायादार को।
खुद आसमाँ को नक़्शे-वफ़ा से है दुश्मनी,
तुम क्यों मिटा रहे हो निशाने-मज़ार को।
इस हादिसे से क़ब्ल कि मैं फिर कुछ न कह सकूँ,
सुन लो बयान हालेदिले-बेकरार को।
[जेनब खेमे से बाहर निकल आती है।]

जैनब—भैया, यह कौन-सा सहरा है कि इसे देखकर खौफ़ से कलेजा मुँह को आ रहा है। बानू बहुत घबराई हुई हैं, और असग़र छाती से मुँह नहीं लगाता।

हुसैन—बहन! यही कर्बला का मैदान है।

जैनब—(दोनो हाथों से सिर पीटकर) भैया, मेरी आँखों के तारे, तुम पर मेरी जान निसार हो। हमें तक़दीर ने यहाँ कहाँ लाके छोड़ा, क्यों कहीं और नहीं चलते?

हुसैन—बहन, कहाँ जाऊँ? चारों तरफ़ से नाके बंद हैं। ज़ियाद का हुक्म है कि मेरा लश्कर यहीं उतरे। मजबूर हूँ, लड़ाई में बहस नहीं करना चाहता।

जैनब—हाय भैया! यह बड़ी मनहूस जगह है। मुझे लड़कपन से यहाँ की खबर है। हाय भैया, इस जगह तुम मुझसे बिछुड़ जाओगे। मैं बैठी देखूँगी, और तुम बर्छियाँ खाओगे। मुझे मदीने भी न पहुँचा सकोगे? रसूल की औलाद यहीं तबाह होगी, उनकी नामूस यहीं लुटेगी। हाय तक़दीर!

इस दश्त में तुम मुझसे बिछुड़ जाओगे भाई,
गर खाक भी छानूँ, तो न हाथ आवेगा भाई।
बहनों को मदीने में न पहुँचाओगे भाई,
मैं देखूँगी, और बरछियाँ तुम खाओगे भाई।
औलाद से बानू की यह छूटने की जगह है,
नामूसे-नबी की यही लुटने की जगह है।
[बेहोश हो जाती है। लोग पानी के छींटे देते हैं।]

अली० अक०—या हज़रत, खेमे कहाँ लगाये जायँ?

अब्बास—मेरी सलाह तो है कि दरिया के किनारे लगें।

हुसैन—नहीं भैया, दुश्मन हमें दरिया के किनारे न उतरने देंगे। इसी मैदान में खेमे लगाओ, खुदा यहाँ भी है, और वहाँ भी। उसकी मर्ज़ी पूरी होकर रहेगी।

[**जैनब को औरतें उठाकर खेमे में ले जाती हैं।**]

बानू—हाय-हाय! बाजीजान को क्या हो गया। या खुदा, हम मुसीबत के मारे हुए हैं, हमारे हाल पर रहम कर!

हुसैन—बानू, यह मेरी बहन नहीं, मा है। अगर इस्लाम में बुतपरस्ती हराम न होती, तो मैं इसकी इबादत करता। यह मेरे खानदान का रोशन सितारा है। मुझ-सा खुशनसीब भाई दुनिया में और कौन होगा, जिसे खुदा ने ऐसी बहन अता की। (**जैनब के मुँह पर पानी के छींटे देते हैं।**)

सातवाँ दृश्य

[**नसीमा अपने कमरे में अकेली बैठी हुई है—समय १२ बजे रात का।**]

नसीमा—(**दिल में**) वह अब तक नहीं आये। गुलाम को उन्हें साथ लाने के लिए भेजा, वह भी वहीं का हो रहा। खुदा करे, वह आते हों। दुनिया में होते हुए हमारे ऊपर मुल्क की हालत का असर न पड़े। मुहल्ले में आग लगी हो, तो अपना दरवाज़ा बन्द करके बैठ रहना खतरे से नहीं बचा सकता। मैंने अपने तईं इन झगड़ों से कितना बचाया था, यहाँ तक कि अब्बाजान और अम्मा जब यज़ीद की बैयत न क़बूल करने के ज़ुर्म में जला-वतन कर दिये गये, तब भी मैं अपना दरवाज़ा बन्द किये बैठी रही, पर कोई तदबीर कारगर न हुई। बैयत की बला फिर गले पड़ी। वहब मेरे लिए सब कुछ करने को तैयार है। वह यज़ीद की बैयत भी क़बूल कर लेता, चाहे उसके दिल को कितना ही सदमा हो। पर जो कुछ हो रहा है, उसे देखकर अब मेरा दिल भी यज़ीद की बैयत की तरफ मायल नहीं होता, उससे नफ़रत होती है। मुस्लिम कितनी बेदरदी से क़त्ल किये गये, हानी को

ज़ालिम ने किस बुरी तरह क़त्ल कराया। यह सब देखकर, अगर यज़ीद की बैयत क़बूल कर लूँ, तो शायद मेरा ज़मीर मुझे कभी मुआफ न करेगा। हमेशा पहलू में ख़लिश होती रहेगी। आह! इस ख़लिश को भी सह सकती हूँ, पर वहब की रूहानी कोफ्त अब नहीं सही जाती। मैंने उन पर बहुत ज़ुल्म किये। अब उनकी मुहब्बत की जंजीर को और न खींचूँगी। जिस दिन से अब्बा और अम्मा निकाले गये हैं, मैंने वहब को कभी दिल से खुश नहीं देखा। उनकी वह ज़िन्दादिली ग़ायब हो गयी। यों वह अब भी मेरे साथ हँसते हैं, गाते हैं, पर मैं जानता हूँ यह मेरी दिलजोई है। मैं उन्हें जब अकेले बैठे देखती हूँ, तो वह उदास और बेचैन नज़र आते हैं....वह आ गये, चलूँ, दरवाज़ा खोल दूँ।

[**जाकर दरवाज़ा खोल देती है। वहब अन्दर दाखिल होता है।**]

नसीमा—तुम आ गये, वरना मैं खुद आती। तबियत बहुत घबरा रही थी। ग़ुलाम कहाँ रह गया?

वहब—क़त्ल कर दिया गया। नसीमा, मैंने किसी को इतनी दिलेरी से जान देते नहीं देखा। इतनी लापरवाही से कोई कुत्ते के सामने लुक़मा भी न फेंकता होगा। मैं तो समझता हूँ, वह कोई औलिया था।

नसीमा—हाय, मेरे वफ़ादार और ग़रीब सालिम! खुदा तुझे जन्नत नसीब करे। जालिमों ने उसे क्यों क़त्ल किया?

वहब—आह! मेरे ही कारण उस ग़रीब की जान गयी। जामा मस्जिद में हज़ारों आदमी जमा थे। ख़बर है, और तहक़ीक़ ख़बर है कि हज़रत हुसैन मक्के से बैयत लेने आ रहे हैं। ज़ालिमों के होश उड़े हुए हैं। जो पहले बच रहे थे, उनसे अब यज़ीद की खिलाफ़त का हलफ़ लिया जा रहा है। ज़ियाद ने जब मुझसे हलफ़ लेने को कहा, तो मैं राज़ी हो गया। इनकार करता, तो उसी वक़्त क़ैदखाने में डाल दिया जाता। ज़ियाद ने खुश होकर मेरी तारीफ़ की, और यज़ीद के हामियों की सफ़ में ऊँचे दरजे पर बिठाया, जागीर में इज़ाफ़ा किया, और कोई मनसब भी देना चाहते हैं। उसकी मंशा यह भी है कि सब हामियों को एक सफ़ में बिठाकर एकबारगी सबसे हलफ़ ले लिया जाय। इसी लिए मुझे देर हो रही थी। इसी असना में सालिम

पहुँचा, और मुझे यज़ीदवालों की सफ़ में बैठे देखकर मुझसे बदजबानी करने लगा। मुझे दग़ाबाज़, ज़मानासाज़ बेशर्म, ख़ुदा जाने, क्या-क्या कहा, और उसी जोश में यज़ीद और ज़ियाद, दोनो ही की शान में बेअदबी की। मुझे ताना देता हुआ बोला, मैं आज तुम्हारे नमक की क़ैद से आज़ाद हो गया। मुझे क़त्ल होना मंजूर है, मगर ऐसे आदमी की ग़ुलामी मंजूर नहीं, जो ख़ुद दूसरों का ग़ुलाम है। ज़ियाद ने हुक्म दिया—इस बदमाश की गर्दन मार दो। और जल्लादों ने वहीं सहन में उसको क़त्ल कर डाला। हाय! मेरी आँखों के सामने उसकी जान ली गयी, और मैं उसके हक़ में ज़बान तक न खोल सका, उसकी तड़पती हुई लाश मेरी आँखों के सामने घसीटकर कुत्तों के आगे डाल दी गयी, और मेरे ख़ून में जोश न आया। आफ़ियत बड़े महँगे दामों मिलती है।

नसीमा—बेशक, महँगे दाम हैं। तुमने अभी बैयत तो नहीं ली?

वहब—अभी नहीं, बहुत देर हो गयी, लोगों की तादाद बढ़ती जाती थी। आख़िर आज हलफ़ लेना मुल्तवी किया गया। कल फिर सबकी तलबी है।

नसीमा—तुम इन जालिमों की बैयत हर्गिज न लेना।

वहब—नहीं नसीमा, अब उसका मौक़ा निकल गया।

नसीमा—मैं तुमसे मिन्नत करती हूँ, हर्गिज न लेना।

वहब—तुम मेरी दिलजोई के लिए अपने ऊपर जब्र कर रही हो।

नसीमा—नहीं वहब, अगर तुम दिल से भी बैयत क़बूल करनी चाहो, तो मैं ख़ुश न हूँगी। मैं भी इन्सान हूँ वहब, निरी भेड़ नहीं हूँ। मेरे दिल के जजबात मुर्दा नहीं हुए हैं। मैं तुम्हें इन जालिमों के सामने सिर न झुकाने दूँगी।

वहब—जानती हो, नतीजा क्या होगा?

नसीमा—जानती हूँ। जागीर जब्त हो जायगी, वजीफ़ा बंद हो जायगा, जलावतन कर दिये जायँगे। मैं तुम्हारे साथ ये सारी आफ़तें झेल लूँगी।

वहब—और अगर जालिमों ने इतने ही पर बस न की?

नसीमा—आह वहब, अगर यह होना है, तो ख़ुदा के लिए इसी वक़्त

यहाँ से चले चलो। किसी सामान की जरूरत नहीं। इसी तरह, इन्हीं पाँवों चलो। यहाँ से दूर, कसी दरख्त के साए में बैठकर दिन काट दूँगी, पर इन जालिमों की खुशामद न करूँगी।

वहब—(**नसीमा को गले लगाकर**) नसीमा, मेरी जान तुझ पर फ़िदा हो। जालिमों की सख्ती मेरे हक़ में अकसीर हो गयी। अब उस जुल्म से मुझे कोई शिकायत नहीं। हमारे जिस्म बारहा गले मिल चुके हैं, आज हमारी रूहें गले मिली हैं, मगर इस वक्त नाके बन्द होंगे।

नसीमा—जालिमों के नौकर बहुत ईमानदार नहीं होते। मैं उसे ५० दीनार दूँगी, और वही हमें अपने घोड़े पर सवार कराके शहर के बाहर पहुँचा देगा।

वहब—सोच लो, बाग़ियों के साथ किसी क़िस्म की रू-रियायत नहीं हो सकती। उनकी एक ही सजा है, और वह है क़त्ल।

नसीमा—वहब, इन्सान के दिल की क़ैफ़ियत हमेशा एक-सी नहीं रहती। केंचुए से डरनेवाला आदमी साँप की गर्दन पकड़ लेता है। ऐश के बन्दे गुदड़ियों में मस्त हो जाते हैं। मैंने समझा था, जो खतरा है, घोंसले से बाहर निकलने में ;है अन्दर बैठे रहने में आराम-ही-आराम है। पर अब मालूम हुआ कि सैयाद के हाथ घोंसले के अन्दर भी पहुँच जाते हैं। हमारी नजात जमाने से भागने में नहीं, उसका मुक़ाबला करने में है। तुम्हारी सोहबत ने, मुल्क की हालत ने, क़ौम के रईसों और अमीरों की पस्ती ने, मुझ पर रोशन कर दिया कि यहाँ इतमीनान के मानी ईमान-फ़रोशी और आफ़ियत के मानी हक़कुशी हैं। ईमान और हक़ की हिफ़ाजत असली आफ़ियत और इतमीनान है। शायर ने खूब कहा है—

लुत्फ़ मरने में है बाक़ी न मज़ा जीने में,
कुछ अगर है, तो यही ख़ूने-जिगर पीने में।

वहब—मुआफ़ करो नसीमा, मैंने तुम्हें पहचानने में ग़लती की। चलो, सफ़र का सामान करें।

चौथा अंक

पहला दृश्य

[प्रातःकाल का समय। ज़ियाद फ़र्श पर बैठा हुआ सोच रहा है।]

ज़ियाद—(स्वगत) उस वफ़ादारी की क्या क़ीमत है, जो महज़ ज़बान तक महदूद रहे? कूफ़ा के सभी सरदार, जो मुस्लिम बिन अक़ील से जंग करते वक़्त ख़म ठोंक रहे थे, अब हुसैन बिन अली से जंग करते वक़्त बग़लें झाँक रहे हैं। कोई इस मुहिम को अंजाम देने का बीड़ा नहीं उठाता। आक़बत और नजात की आड़ में सब-के-सब पनाह ले रहे हैं। क्या अक्ल है, जो दुनिया को अक़बा की खयाली नियामतों पर क़ुरबान कर देती है। मज़हब! तेरे नाम पर कितनी हिमाकतें सबाब समझी जाती हैं, तूने इन्सान को कितना बातिलपरस्त, कितना कमहिम्मत बना दिया है!

[उमर साद का प्रवेश।]

साद—अस्सलामअलेक। या अमीर, आपने क्यों याद फ़रमाया?

ज़ियाद—तुमसे एक खास मामले में सलाह लेनी है। तुम्हें मालूम है, 'रै' कितना ज़रखेज़, आबाद और सेहतपरवर सूबा है?

साद—खूब जानता हूँ हुज़ूर, वहाँ कुछ दिनों रहा हूँ, सारा सूबा मेवे के बाग़ों और पहाड़ी चश्मों से गुलजार बना हुआ है। बाशिन्दे निहायत खलीक़ और मिलनसार। बीमार आदमी वहाँ जाकर तवाना हो जाता है।

ज़ियाद—मेरी तजवीज़ है कि तुम्हें उस सूबे का आमिल बनाऊँ। मंज़ूर करोगे?

साद—(बन्दगी कर के) सिर और आँखों से। इस क़द्रदानी के लिए क़यामत तक शुक्रगुज़ार रहूँगा।

ज़ियाद—माक़ूल सालाना मुशाहरे के अलावा तुम्हें घोड़े, नौकर, ग़ुलाम सरकार की तरफ़ से मिलेंगे।

साद—ऐन बन्दानेवाज़ी है। खुदा आपको हमेशा खुशखुर्रम रखे।

ज़ियाद—तो मैं मुंशी को हुक्म देता हूँ कि तुम्हारे नाम फ़रमान जारी कर दे, और तुम वहाँ जाकर काम सँभालो।

साद—ग़ुलाम हमेशा आपका मशकूर रहेगा।

ज़ियाद—मुझे यक़ीन है, तुम उतने ही कारगुज़ार और वफ़ादार साबित होगे, जैसी मुझे तुम्हारी ज़ात से उम्मीद है।

[**मीर मुंशी को बुलाता है, वह साद के नाम का फ़रमान लिखता है।**]

साद—(**फ़रमान लेकर**) तो मैं कल चला जाऊँ ?

ज़ियाद—नहीं-नहीं, इतनी जल्द नहीं। वहाँ जाने के पहले तुम्हें अपनी वफ़ादारी का सबूत देना पड़ेगा। इतना ऊँचा मंसब उसी को दिया जा सकता है, जो हमारा एतबार हासिल कर सके। यह किसी बड़ी ख़िदमत का सिला होगा।

साद—मैं हरएक ख़िदमत के लिए दिलोजान से हाज़िर हूँ। जिस मुहिम को और कोई अंजाम न दे सकता हो, उस पर मुझे भेज दीजिए। ख़ुदा ने चाहा, तो कामयाब होकर आऊँगा।

ज़ियाद—बेशक-बेशक, मुझे तुम्हारी ज़ात से ऐसी ही उम्मीद है। तुम्हें मालूम है, हुसैन बिन अली कूफ़े की तरफ़ आ रहे हैं। हमको उनकी तरफ से बहुत अंदेशा है। तुमको उनसे जंग करने के लिए जाना होगा। उधर से हमें बेफ़िक्र करके फिर 'रै' की हुकूमत पर जाना।

साद—या अमीर, आप मुझे इस मुहिम पर जाने से मुआफ़ रखें, इसके सिवा आप जो हुक्म देंगे, उसकी तामील में मुझे ज़रा भी उज्र न होगा।

ज़ियाद—क्यों, हुसैन से जंग करने में तुम्हें क्या उज्र है ?

साद—आपका ग़ुलाम हूँ, लेकिन हुसैन के मुकाबले से मुझे मुआफ़ रखें, तो आपका हमेशा एहसान मानूँगा।

ज़ियाद—बेहतर है, तुम्हारी जगह किसी और को भेजूँगा। फ़रमान वापस देकर घर बैठ जाओ। 'रै' का इलाक़ा उसी आदमी का हक़ है, जो इस मुहिम को अंजाम दे। मौत के बग़ैर जन्नत नसीब नहीं हो सकती। जो

आदमी एक पैर दीन की किश्ती में रखता है, दूसरा पैर दुनिया की किश्ती में, उसे कभी साहिल पर पहुँचना नसीब न होगा।

साद—(दिल में) एक तरफ़ 'रै' का इलाक़ा है, दूसरी तरफ़ नजात; एक तरफ दौलत और हुकूमत है, दूसरी तरफ़ लानत और अज़ाब ! खुदा ! मेरी तक़दीर में क्या लिखा है। (प्रकट) या अमीर, मुझे एक दिन की मुहलत दीजिए। मैं कल इस मामले पर ग़ौर करके आपको जवाब दूँगा।

ज़ियाद—अच्छी बात है। सोच लो।

[दोनो चले जाते हैं।]

दूसरा दृश्य

[प्रातःकाल का समय। साद का मकान। साद बैठा हुआ है।]

साद—(मन में) यार-दोस्त, अपने-बेगाने, अज़ीज, सब मुझे हुसैन के मुक़ाबले पर जाने से मना करते हैं। बीबी कहती है, अगर तेरे पास दुनिया में कुछ भी बाक़ी न रहे, तो इससे बेहतर है कि तू हुसैन का ख़ून अपनी गर्दन पर ले। आज मैंने ज़ियाद को जवाब देने का वादा किया है। सारी रात सोचते गुज़र गयी, और अभी तक कुछ फ़ैसला न कर सका। अजीब दोफ़स्ले में पड़ा हुआ हूँ। अपना दिल भी हुसैन के क़त्ल पर अमादा नहीं होता। गो मैंने यज़ीद के हाथों पर बैयत की पर हुसैन से मेरी कोई दुश्मनी नहीं है। कितना दीनदार, कितना बेलौस आदमी है। हमीं ने उन्हें यहाँ बुलाया, बार-बार खत और क़ासिद भेजे, और आज जब वह यहाँ हमारी मदद करने आ रहे हैं, तो हम उनकी जान लेने पर तैयार हैं। हाय खुदगरज़ी! तेरा बुरा हो, तेरे सामने दीन-ईमान, नेक-बद की तरफ़ से आँखें बन्द हो जाती हैं। कितना गुनाहे-अज़ीम है। अपने रसूल के नेवासे की गर्दन पर तलवार चलाना ! खुदा न करे, मैं इतना गुमराह हो जाऊँ। 'रै' का सूबा कितना ज़रखेज़ है। वहाँ थोड़े दिन भी रह गया, तो माला-माल हो जाऊँगा।

कितनी शान से बसर होगी। तुफ़ है मुझ पर, जो अपनी शान और हुकूमत के लिए बड़े-से-बड़े गुनाह करने का इरादा कर रहा हूँ। नहीं, मुझसे यह फेल न होगा। 'रै' जन्नत ही सही, पर फ़र्ज़ंदे-रसूल का ख़ून करके मुझे जन्नत में जाना भी मंजूर नहीं।

[ज़ियाद का प्रवेश।]

साद—अस्सलामअलेक। अमीर ज़ियाद, मैं तो खुद ही हाज़िर होनेवाला था। आपने नाहक तक़लीफ़ की।

ज़ियाद—शहर का दौरा करने निकला था। बाग़ियों पर इस वक़्त बहुत सख़्त निगाह रखने की ज़रूरत है। मुझे मालूम हुआ है कि हबीब, ज़हीर, अब्दुल्लाह वग़ैरह छिपकर हुसैन के लश्कर में दाख़िल हो गये हैं। इसकी रोक-थाम न की गयी, तो बाग़ी शेर हो जायँगे। हुसैन के साथ आदमी थोड़े हैं, पर मुझे ताज्जुब न होगा, अगर यहाँ आते-आते उसके साथ आधा शहर हो जाय। शेर पिंजरे में भी हो, तो भी उससे डरना चाहिए। रसूल का नाती फ़ौज का मुहताज नहीं रह सकता। कहो, तुमने क्या फ़ैसला किया? मैं अब ज़्यादा इन्तज़ार नहीं कर सकता।

साद—या अमीर, हुसैन के मुक़ाबले के लिए न तो अपना दिल ही गवाही देता है, और न घरवालों की सलाह होती है। आपने मुझे 'रै' की निज़ामत अता की है, इसके लिए आपको अपना मुरब्बी समझता हूँ। मगर क़त्ले-हुसैन के वास्ते मुझे न भेजिए।

ज़ियाद—साद, दुनिया में कोई खुशी बग़ैर तकलीफ़ के नहीं हासिल होती। शहद के साथ मक्खी के डंक का ज़हर भी है। तुम शहद का मज़ा उठाना चाहते हो, मगर डंक की तकलीफ़ नहीं उठाना चाहते। बिला मौत की तकलीफ़ उठाये जन्नत में जाना चाहते हो। तुम्हें मजबूर नहीं करता। इस इनाम पर हुसैन से जंग करने के लिए आदमियों की कमी नहीं है। मुझे फ़रमान वापस दे दो, और आराम से घर बैठकर रसूल और खुदा की इबादत करो।

साद—या अमीर! सोचिए, इस हालत में मेरी कितनी बदनामी होगी। सारे शहर में खबर फैल गयी कि मैं 'रै' का नाज़िम बनाया गया हूँ। मेरे

यार-दोस्त मुझे मुबारकबाद दे चुके। अब जो मुझसे फ़रमान ले लिया जायगा, तो लोग दिल में क्या कहेंगे ?

जियाद—यह सवाल तो तुम्हें अपने दिल से पूछना चाहिए।

साद—या अमीर, मुझे कुछ और मुहलत दीजिए।

ज़ियाद—तुम इस तरह टाल-मटोल करके देर करना चाहते हो। कलाम पाक की क़सम है, अब मैं तुम्हारे साथ ज़्यादा सख्ती से पेश आऊँगा। अगर शाम को हुसैन से जंग करने के लिए तैयार होकर न आये, तो तेरी जायदाद ज़ब्त कर लूँगा, तेरा घर लुटवा दूँगा, यह मकान पामाल हो जायगा, और तेरी जान की भी ख़ैरियत नहीं (**ज़ियाद का प्रस्थान**)।

साद—(दिल में) मालूम होता है, मेरी तक़दीर में रूस्याह होना ही लिखा है। अब महज़ 'रै' की निज़ामत का सवाल नहीं है। अब अपनी जायदाद और जान का सवाल है। इस ज़ालिम ने हानी को कितनी बेरहमी से क़त्ल किया। कसीर को भी अपनी अईनपरवरी की गिराँ क़ीमत देनी पड़ी। शहर-वालों ने ज़बान तक न हिलायी। वह तो महज़ हुसैन के अजीज़ थे। यह मामला उससे कहीं नाज़ुक है। ज़ियाद बरहम हो जायगा, तो जो कुछ न कर गुजरे, वह थोड़ा है। मैं 'रै' को ईमान पर क़ुरबान कर सकता हूँ, पर जान और जायदाद को नहीं क़ुरबान कर सकता। काश मुझमें हानी और कसीर की-सी हिम्मत होती।

[**शिमर का प्रवेश।**]

शिमर—अस्सलामअलेक। साद, किस फ़िक्र में बैठे हो, ज़ियाद को तुमने क्या जवाब दिया ?

साद—दिल हुसैन के मुक़ाबले पर राजी नहीं होता।

शिमर—सरवत और दौलत हासिल करने का ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा। ऐसे मौक़े जिन्दगी में बार-बार नहीं आते।

साद—नजात कैसे होगी ?

शिमर—ख़ुदा रहीम है, करीम है, उसकी ज़ात से कुछ वईद नहीं। गुनाहों को माफ़ न करता, तो रहीम क्यों कहलाता ? हम गुनाह न करें, तो वह माफ़ क्या करेगा ?

साद—खुदा ऐसे बड़े गुनाह को माफ़ न करेगा।

शिमर—अगर खुदा की ज़ात से यह एतक़ाद उठ जाय, तो मैं आज मुसलमान न रहूँ। यह रोज़ा और नमाज़, या ज़कात और खैरात, किस मर्ज़ की दवा है, अगर हमारे गुनाहों को भी माफ़ न करा सके।

साद—रसूल खुदा को क्या मुँह दिखाऊँगा?

शिमर—साद, तुम समझते हो, हम अपनी मरज़ी के मुख़्तार हैं, यह यक़ीदा बातिल है। सब-के-सब हुक्म के बन्दे हैं। उसकी मरज़ी के बग़ैर हम अपनी उँगली को भी नहीं हिला सकते। सबाब और अज़ाब का यहाँ सवाल ही नहीं रहता। अक्लमंद आदमी उधार के लिए नक़द को नहीं छोड़ता। ताख़ीर मत करो, वरना फिर हाथ मलोगे।

[**शिमर चला जाता है।**]

साद—(**दिल में**) शिमर ने बहुत माक़ूल बातें कहीं। बेशक खुदा अपने बन्दों के गुनाहों को माफ़ करेगा, वरना हिसाब के दिन दोज़ख मे गुनहगारों के खड़े होने की जगह भी न मिलेगी। मैं ज़ाहिद न सही, लेकिन मुझे तो खुदा के सामने नदामत से गर्दन झुकाने की कोई वजह नहीं है। बेशक खुदा की यही मरज़ी है कि हुसैन के मुक़ाबले पर मैं जाऊँ, वरना ज़ियाद यह तजवीज़ ही क्यों करता। जब खुदा की यही मरज़ी है, तो मुझे सिर झुकाने के सिवा और क्या चारा है। अब जो होना हो, सो हो—आग में कूद पड़ा, जलूँ या बचूँ।

[**गुलाम को बुलाकर ज़ियाद के नाम अपनी मंजूरी का ख़त लिखता है।**]

गुलाम—शायद हुज़ूर ने 'रै' की निज़ामत क़बूल कर ली?

साद—जा, तुझे इन बातों से क्या मतलब।

गुलाम—मैं पहले ही से जानता था कि आप यही फ़ैसला करेंगे।

साद—तुझे क्योंकर इसका इल्म था?

गुलाम—मैं खुद इस मंसब को न छोड़ता, चाहे इसके लिए कितना ही ज़ुल्म करना पड़ता।

साद—(**दिल में**) ज़ालिम कैसी पते की बात कहता है।

[**गुलाम चला जाता है, और साद गाने लगता है।**]

कोई तुमसे जुदा दर्द-जुदाई लेके बैठा है,
वह अपने घर में अब अपनी कमाई लेके बैठा है।
जिगर, दिल, जान, ईमाँ अब कहाँ तक नाम ले कोई,
वह ज़ालिम सैकड़ों चीज़ें पराई लेके बैठा है।
.खुदा ही है मेरी तोबा का, जब साक़ी कहे मुझसे—
अरे, पी भी, कहाँ की पारसाई लेके बैठा है।
तेरे काटे शबे-ग़म मेरी बरसों से नहीं कटती,
तो फिर तू ऐ .खुदा नाहक .खुदाई लेके बैठा है।
कहूँ कुछ मैं, तो वह मुँह फेरकर कहता है औरों से—
.खुदा जाने, यह कब की आशनाई लेके बैठा है।
अमल कुछ चल गया है शौक़ पर जाहिद का ऐ यारो,
कि मस्जिद में पुरानी एक चटाई लेके बैठा है।

तीसरा दृश्य

[केरात-नदी के किनारे साद का लश्कर पड़ा हुआ है। केरात से दो मील के फ़ासले पर कर्बला के मैदान में हुसैन का लश्कर है। केरात और हुसैन के लश्कर के बीच में साद ने एक लश्कर को नदी के पानी को रोकने के लिए पहरा बैठा दिया है। प्रातःकाल का समय। शिमर और साद .खेमे में बैठे हुए हैं।]

साद—मेरा दिल अभी तक हुसैन से जंग करने को तैयार नहीं होता। चाहता हूँ, किसी तरीक़े से सुलह हो जाय, मगर तीन क़ासिदों में से एक भी मेरे खत का जवाब न ला सका। एक तो हज़रत हुसैन के पास जा ही न सका, दूसरा शर्म के मारे रास्ते ही से किसी तरफ़ खिसक गया, और तीसरे ने जाकर हुसैन की बैयत अख़्तियार कर ली। अब और क़ासिदों को भेजते हुए डरता हूँ कि इनका भी वही हाल न हो।

शिमर—ज़ियाद को ये बातें मालूम होंगी, तो आपसे सख़्त नाराज़ होगा।

साद—मुझे बार-बार यही ख़याल आता है कि हुसैन यहाँ जंग के इरादे से नहीं, महज़ हम लोगों के बुलाने से आये हैं। उन्हें बुलाकर उनसे दग़ा करना इन्सानियत के खिलाफ़ मालूम होता है।

शिमर—मुझे ख़ौफ़ है कि आपके ताख़ीर से नाराज़ होकर ज़ियाद आपको वापस न बुला ले। फिर उसके ग़ुस्से से ख़ुदा ही बचाये। ज़ियाद ने कितनी सख़्त ताकीद की थी कि हुसैन के लश्कर को पानी का एक बूँद भी न मिले। वहाँ उनके आदमी दरिया से पानी ले जाते हैं, कुएँ खोदते हैं। इधर से कोई रोक-टोक नहीं होती। क्या आप समझते है कि ज़ियाद से ये बातें छिपी होंगी?

साद—मालूम नहीं, कौन उसके पास ये सब ख़बरें भेजता रहता है?

शिमर—उसने यहाँ अपने कितने ही गोइंदे बिठा रखे है जो दम-दम को ख़बरें भेज देते हैं।

[एक क़ासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—अस्सलामअलेक बिन साद। अमीर का हुक्मनामा लाया हूँ।

[साद को ज़ियाद का ख़त देता है।]

साद—(ख़त पढ़कर) तुम बाहर बैठो, इसका जवाब दिया जायगा। (क़ासिद चला जाता है) इसमें भी वही ताक़ीद है कि हुसैन को पानी मत लेने दो, जंग करने में एक लहमे की देर न करो। देखिए, लिखते हैं—

"हुसैन से जंग करने के लिए अब कोई बहाना नहीं रहा। फ़ौज की कमी की शिकायत थी, सो वह भी नहीं रही। अब मेरे पास २२ हजार सवार और पैदल मौजूद हैं।"

शिमर—बेशक उनका लिखना वाजिब है। मैं जाकर सख़्त हुक्म देता हूँ कि हुसैन के लश्कर की एक चिड़िया भी दरिया के किनारे न आने पाये। आप जंग का हुक्म दे दें।

साद—आपको मालूम है, २२ हज़ार आदमियों में कितने अज़ाब के ख़ौफ़ से भाग गये, और रोज़ भागते जाते हैं

शिमर—इसी लिए तो और भी ज़रूरी है कि जंग शुरू कर दी जाय, वरना रफ़्ता-रफ़्ता यह सारी फ़ौज बादलों की तरह ग़ायब हो जायगी। पर मैंने सुना है, ज़ियाद ने उन सब आदमियों को गिरफ़्तार कर लिया है, और बहुत जल्द वे सब फ़ौज़ में आ जायँगे। यह हुक्म भी जारी कर दिया है कि जो आदमी फ़ौज से भागेगा, उसकी जायदाद छीन ली जायगी, और उसे खानदान के साथ जलावतन कर दिया जायगा। इस हुक्म का लोगों पर अच्छा असर पड़ा है। अब उम्मीद नहीं कि भागने की कोई हिम्मत करे। मुझे यह भी खबर मिली है कि ज़ियाद ने कई आदमियों को क़त्ल करा दिया है।

[**एक और क़ासिद का प्रवेश।**]

क़ासिद—अस्सलामअलेक बिन साद। हज़रत हुसैन ने यह खत भेजा है, और उसका जवाब तलब किया है (**साद को खत देता है**)।

साद—(**खत पढ़कर**) बाहर जाकर बैठो। अभी जवाब मिलेगा।

शिमर—(**खत पर झुककर**) इसमें क्या लिखा है ?

साद—(**खत को बन्द करके**) कुछ नहीं, यही लिखा है कि मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ।

शिमर—यह उनकी नयी चाल है। कलाम पाक की क़सम, आप उनकी दरख़्वास्त मानकर पछतायेंगे। आपको फ़ौज में फिर आना नसीब न होगा।

साद—क्या तुम्हारा यह मतलब है कि हुसैन मुझसे दग़ा करेंगे ? अली का बेटा दग़ा नहीं कर सकता।

शिमर—यह मेरा मतलब नहीं। यहाँ से बच निकलने की कोई तजवीज़ पेश करनी चाहते होंगे। उनकी ज़बान में जादू का असर है, ऐसा न हो कि वह आपको चकमा दें। क्या हर्ज है अगर मैं भी आपके साथ चलूँ ?

साद—मैं समझता हूँ कि मैं अपने दीन और दुनिया की हिफ़ाजत खुद कर सकता हूँ। मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत नहीं।

शिमर—आपको अख़्तियार है। कम-से-कम मेरी इतनी सलाह तो मान ही लीजिएगा कि अपने साथ थोड़े-से चुने हुए आदमी लेते जाइएगा।

साद—यह मेरा जाती मामला है, जैसा मुनासिब समझूँगा, करूँगा।

[क़ासिद को बुलाकर ख़त का जवाब देता है।]

शिमर—रात का वक्त लिखा है न ?

साद—इतना तो तुम्हें खुद समझ लेना चाहिए था।

शिमर—(जाने के लिए खड़ा होकर) मेरी बात का ज़रूर खयाल रखिएगा। (दिल में) इसके अंदाज़ से मालूम होता है कि हुसैन की बातों में आ जायगा। ज़ियाद के पास खुद जाकर यह क़िस्सा कहूँ।

साद—(दिल में) खुदा तुझसे समझे ज़ालिम ! तू ज़ियाद से भी दो अंगुल बढ़ा हुआ है। शायद मेरा यह क़यास ग़लत नहीं है कि तू ही ज़ियाद को यहाँ के हालात की इत्तिला देता है। हुसैन दग़ा करेंगे ! हुसैन दग़ा करनेवालों में नहीं, दग़ा का शिकार होनेवालों में हैं।

[उठकर अन्दर चला जाता है।]

चौथा दृश्य

[हुसैन के हरम की औरतें बैठी हुई बातें कर रही हैं। शाम का वक्त।]

सुगरा—अम्मा, बड़ी प्यास लगी है।

अली असग़र—पानी, बुआ, पानी।

हंफ़ा—क़ुरबान गयी, बेटे, कितना पानी पियोगे ? अभी लायी।

[मशकों को जाकर देखती है, और छाती पीटती लौटती है।]

ऐ क़ुरबान गयी बीवी, कहीं एक बूँद पानी नहीं। बच्चों को क्या पिलाऊँ !

जैनब—क्या बिलकुल पानी ग़ायब हो गया ?

हंफ़ा—ऐ क़ुरबान गयी बीवी, सारे मटके और मशकें ख़ाली पड़ी हुई हैं।

जैनब—ग़ज़ब हो गया। नदी तो बन्द ही थी, अब ज़ालिम कुएँ भी नहीं खोदने देते।

असग़र—पानी, बुआ, पानी।

शहरबानू—या खुदा ! किस अज़ाब में फँसे। इन नन्हों को कैसे समझाऊँ !

हंफ़ा—बीबी, क़ुरबान जाऊँ ! मैं जाकर दरिया से पानी लाती हूँ। कौन मुआ रोकेगा, मुँह झुलस दूँ उसका। क्या मेरे लाल प्यासों तड़पेंगे, जब दरिया में पानी भरा हुआ है ?

जैनब—तू नहीं जानती, साढ़े छह हज़ार जवान दरिया का पानी रोकने के लिए तैनात हैं ?

हंफ़ा—ऐ क़ुरबान जाऊँ बीबी, कौन मुझसे बोलेगा, झाड़ू न मारूँगी। रसूल के बेटे प्यासे रहेंगे ?

[हंफ़ा एक मशक लेकर दरिया की तरफ़ जाती है, और थोड़ी देर बाद लौट आती है, सिर के बाल नुचे हुए, कपड़े फटे हुए, मशक नदारद। रोती हुई ज़मीन पर बैठ जाती है।]

जैनब—क्या हुआ हंफ़ा ? यह तेरी क्या हालत है ?

हंफ़ा—बीबी, खुदा का अज़ाब इन रूस्याहों पर नाज़िल हो। ज़ालिम ने मुझे रोक लिया, मेरी मशक छीन ली, और एक कुत्ते को मुझ पर छोड़ दिया। भागते-भागते किसी तरह यहाँ तक पहुँची। हाय ! इन मूज़ियों पर आसमान भी नहीं फट पड़ता। इतनी दुर्गति कभी न हुई थी।

[रोती है।]

हुसैन—(अन्दर जाकर) हंफ़ा, क्यों रोती है ? अरे, यह तेरे कपड़े किसने फाड़े ?

जैनब—बेचारी शामत की मारी पानी लाने गयी थी। बच्चे प्यास से तड़प रहे थे। ज़ालिमों ने नीमजान कर दिया।

हुसैन—हंफ़ा मत रोओ। रसूल के क़दमों की क़सम, अभी उन ज़ालिमों का सिर तेरे पैरों पर होगा, जिनके बेरहम हाथों ने तेरी बेहुरमती की, चाहे मेरे सारे रफ़ीक़, मेरे सारे अज़ीज़ और मैं खुद क्यों न मर जाऊँ। औरत की बेहुरमती का बदला खून है, चाहे वह ग़ुलाम और बेकस ही क्यों

न हो। उन मलऊनों को दिखा दूँगा कि मुझे अपनी लौंडी की आबरू अपने हरम से कम प्यारी नहीं है।

[तलवार हाथ में लेकर बाहर जाते हैं, पर हंफ़ा उनके पैरों को पकड़ लेती है।]

हंफ़ा—मेरे आक़ा, मेरी जान आप पर फ़िदा हो। मैं अपना बदला दुनिया में नहीं, अक़बे में लेना चाहती हूँ, जहाँ की आग कहीं ज़्यादा तेज़, जहाँ की सज़ाएँ यहाँ से कहीं ज़्यादा दिल हिलानेवाली होंगी। मैं नहीं चाहती कि आपकी तलवार से क़त्ल होकर वह अज़ाब से छूट जाय।

हुसैन—हंफ़ा, यह सब उसके लिए है, जो दुनिया में अपना बदला न ले सके। अगर मेरे पास एक लाख आदमी होते, तो तेरी बेइज़्ज़ती का बदला लेने के लिए मैं उन्हें क़ुरबान कर देता, उन बहत्तर आदमियों की हक़ीक़त ही क्या है। मेरे पैरों को छोड़ दे, ऐसा न हो कि मेरा ग़ुस्सा आग बनकर मुझको जलाकर ख़ाक कर दे।

हंफ़ा—(दिल में) काश इस वक़्त वे ज़ालिम यहाँ होते और देखते कि जिसे उन्होंने कुत्तों से नुचवाया था, उसकी अली के बेटे की निगाहों में कितनी इज़्ज़त है। नहीं, मेरे मौला, मैं दुश्मनों को इतनी अच्छी मौत नहीं देना चाहती। मैं उन्हें जहन्नुम की आग में जलाना चाहती....

[अली अकबर का प्रवेश।]

अली अक०—अब्बाजान, साद अपनी फ़ौज से निकलकर आया है, और आपसे मिलना चाहता है।

हुसैन—हाँ, मैंने इसी वक़्त उसे बुलाया था। पहले उससे हंफ़ा को सतानेवालों के खून का मुआविज़ा लेना है।

[हुसैन और अली अकबर बाहर आते हैं।]

अली अक०—या हज़रत, मैं भी आपके साथ रहूँगा।

अब्बास—मैं भी।

हुसैन—नहीं, मैंने उनसे तनहा मिलने का वादा किया है। तुम्हारे साथ रहने से मेरी बात में फ़र्क़ आयेगा।

अली अक०—वह तो अपने साथ एक सौ जवानों से ज़्यादा लाया

है, जो चन्द क़दमों के फ़ासले पर खड़े हैं। हम आपको तनहा न जाने देंगे।

अब्बास—साद की शराफ़त पर मुझे भरोसा नहीं है।

हुसैन—मैं उसे इतना कमीना नहीं समझता कि मेरे साथ दग़ा करे। खैर, चलो अगर उसे कोई एतराज़ न होगा, तो वहाँ मौजूद रहना। उसे भी अपने साथ दो आदमियों को रखने की आज़ादी होगी।

[**तीनों आदमी शस्त्र से सुसज्जित होकर चलते हैं। परदा बदलता है। दोनों फ़ौजों के बीच में हुसैन और साद खड़े हैं। हुसैन के साथ अकबर और अब्बास हैं, साद के साथ उसका बेटा और गुलाम।**]

साद—अस्सलामअलेक। या फ़र्ज़न्दे-रसूल, आपने मुझे अपनी खिदमत में हाज़िर होने का मौक़ा दिया, इसके लिए आपका मशकूर हूँ। मुझे क्या इर्शाद है?

हुसैन—मैंने तुम्हें यह तसफ़िया करने के लिए तकलीफ़ दी है कि आख़िर तुम मुझसे क्या चाहते हो? तुम्हारे वालिद रसूल पाक के रफ़ीक़ों में थे, और अगर बाप की तबीयत का असर कुछ बेटे पर पड़ता है, तो मुझे उम्मीद है कि तुममें इन्सानियत का जौहर मौजूद है। क्या नहीं जानते कि मैं कौन हूँ? मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ।

साद—आप रसूल पाक के नेवासे हैं।

हुसैन—और यह जानकर भी तुम मुझसे जंग करने आये हो, क्या तुम्हें खुदा का ज़रा भी खौफ़ नहीं है? तुममे ज़रा भी इन्साफ़ नहीं है कि तुम मुझसे जंग करने आये हो, जो तुम्हारे ही भाइयों की दग़ा का शिकार बनकर यहाँ आ फँसा है, और अब यहाँ से वापस जाना चाहता है। क्यों ऐसा काम करते हो, जिसके लिए तुम्हें दुनिया में रुसवाई और अक़बा में रूस्याही हासिल हो?

साद—या हज़रत, मैं क्या करूँ। खुदा जानता है कि मैं कितनी मजबूरी की हालत में यहाँ आया हूँ।

हुसैन—साद, कोई इन्सान आज तक वह काम करने पर मजबूर नहीं हुआ, जो उसे पसन्द न आया हो। तुमको यक़ीन है कि मेरे क़त्ल के सिले

में तुम्हारी जागीर बढ़ेगी, 'रै' की हुकूमत हाथ आयेगी, दौलत हासिल होगी। लेकिन साद, हराम की दौलत ने बहुत दिनों तक किसी के साथ दोस्ती नहीं की, और न वह तुम्हारे लिए अपनी पुरानी आदत छोड़ेगी। हविस को छोड़ो, और मुझे अपने घर जाने दो।

साद—फिर तो मेरी ज़िन्दगी के दिन उँगलियों पर गिने जा सकते हैं।

हुसैन—अगर यह खौफ़ है, तो मैं तुम्हें अपने साथ ले जा सकता हूँ।

साद—या हज़रत, ज़ालिम मेरे मकान बरबाद कर देंगे, जो शहर में अपना सानी नहीं रखते।

हुसैन—सुभानल्लाह ! तुमने वह बात मुँह से निकाली, जो तुम्हारी शान से बईद है। अगर हक़ पर क़ायम रहने की सज़ा में तुम्हारा मकान बरबाद किया जाय, तो ऐसा बड़ा नुक़सान नहीं। हक़ के लिए लोगों ने इससे कहीं बड़े नुक़सान उठाये हैं, यहाँ तक कि जान से भी दरेग़ नहीं किया। मैं वादा करता हूँ कि मैं तुम्हें उससे अच्छा मकान बनवा दूँगा।

साद—या हज़रत, मेरे पास बड़ी ज़रखेज़ और आबाद जागीरें हैं, जो ज़ब्त कर ली जायँगी, और मेरी औलाद उनसे महरूम रह जायगी।

हुसैन—मैं हिजाज में तुम्हें उनसे ज़्यादा ज़रखेज़ और आबाद जागीरें दूँगा। इसका इतमीनान रखो कि मेरी ज़ात से तुम्हें कोई नुक़सान न पहुँचेगा।

साद—या हज़रत, आप पर मेरी जान निसार हो, मेरे साथ २२ हज़ार सवार और पैदल हैं। ज़ियाद ने उनके सरदारों से बड़े-बड़े वादे कर रखे हैं, मैं अगर आपकी तरफ़ आ भी जाऊँ, तो वे आपसे ज़रूर जंग करेंगे। इसी लिए मुनासिब यही है कि आप जो शर्तें पसन्द फ़रमायें, मैं ज़ियाद को लिख भेजूँ। मैं अपने खत में सुलह पर ज़ोर दूँगा, और मुझे यक़ीन है कि ज़ियाद मेरी तजवीज़ मंज़ूर कर लेगा।

हुसैन—खुदा तुम्हें इसका सबाब आक़बत में देगा। मेरी पहली शर्त यह है कि मुझे मक्का लौटने दिया जाय, अगर यह न मंज़ूर हो, तो सरहदों की तरफ़ जाकर अमन से ज़िन्दगी बसर करने को राज़ी हूँ, अगर यह भी मंज़ूर न हो तो मुझे यज़ीद ही के पास जाने दिया जाय, और सबसे बड़ी

शर्त यह है कि जब तक मैं यहाँ हूँ मुझे दरिया से पानी लेने की पूरी आजादी हासिल हो। मैं यज़ीद की बैयत किसी हालत से न क़बूल करूँगा, और अगर तुमने मेरी वापसी की यह शर्त क़ायम न की, तो हम यहाँ शहीद हो जाना ही पसन्द करेंगे। लेकिन अगर यह मंशा है कि मुझे क़त्ल ही कर दिया जाय, तो मैं अपनी जान को गिराँ-से-गिराँ क़ीमत पर बेचूँगा।

साद—हज़रत आपकी शर्तें बहुत माक़ूल हैं।

हुसैन—मैं तुम्हारे जवाब का कब तक इन्तज़ार करूँ?

साद—सुबह आफ़ताब की रोशनी के साथ मेरा क़ासिद आपकी ख़िदमत में हाज़िर होगा।

[**दोनों आदमी अपनी-अपनी फ़ौज की तरफ़ लौटते हैं।**]

पाँचवाँ दृश्य

[**८ बजे रात का समय। ज़ियाद की ख़ास बैठक। शिमर और ज़ियाद बातें कर रहे हैं।**]

ज़ियाद—क्या कहते हो। मैंने सख़्त ताक़ीद कर दी थी कि दरिया पर हुसैन का कोई आदमी न आने पाये।

शिमर—वजा है। मगर मैं तो हुसैन के आदमियों को दरिया से पानी लाते बराबर देखता रहा हूँ; और, शायद मेरा दरिया की हिफ़ाज़त के लिए अपनी ज़िम्मेदारी पर हुक्म जारी करना साद को बुरा लगा।

ज़ियाद—साद पर मुझे इतमीनान है। मुमकिन है, उसे लोगों को प्यासों मरते देखकर रहम आ गया हो, और हक़ तो यह है कि शायद मैं भी मौक़े पर इतना बेरहम नहीं हो सकता। इससे यह नहीं साबित होता कि साद की नीयत डाँवाडोल हो रही है।

शिमर—मैं साद की शिकायतें करने के लिए आपकी ख़िदमत में नहीं हाज़िर हुआ हूँ, सिर्फ़ वहाँ की हालत अर्ज़ करनी थी। हुसैन ने आज साद को मुलाक़ात करने को भी तो बुलाया है। देखिए, क्या बातें होती हैं।

ज़ियाद—क्या ? हुसैन से मुलाक़ातें भी कर रहा है ? तुम साबित कर सकते हो ?

शिमर—हुज़ूर, मेरे सबूत की ज़रूरत नहीं। उनका क़ासिद आता ही होगा।

साद—क्या कई बार मुलाक़ातें हुई हैं ?

शिमर—आज की मुलाक़ात का तो मुझे इल्म है, पर शायद और भी मुलाक़ातें तनहाई में हुई हैं।

ज़ियाद—कोई और आदमी साथ नहीं रहा ?

शिमर—मैंने खुद साथ चलना चाहा था, पर मेरी अर्ज़ क़बूल न हुई।

ज़ियाद—कलाम पाक की क़सम, मैं इसे बर्दाश्त न कर सकता। मैंने उसे हुसैन से जंग करने को भेजा है, मसालहत करने के लिए नहीं। मैं उससे इसका जवाब तलब करूँगा।

शिमर—हुज़ूर ने उनके साथ जो सलूक किये हैं, और इस काम के लिए जो सिला तजवीज़ किया है, वह तो किसी दुश्मन को भी आपका दोस्त बना देता। मगर अपना-अपना मिज़ाज ही तो है।

[एक क़ासिद का प्रवेश।]

क़ासिद—अस्सलामअलेक। या अमीर, उमर बिन साद का ख़त लाया हूँ।

[ज़ियाद को ख़त देता है, और ज़ियाद उसे पढ़ने लगता है। क़ासिद बाहर चला जाता है।]

ज़ियाद—इस मसलहत का नतीजा तो अच्छा निकला। हुसैन वापस जाने को रज़ामंद हैं, और साद ने इसकी ताईद करते हुए लिखा है कि उनकी जानिब से किसी ख़तरे का अंदेशा नहीं। ख़लीफ़ा यज़ीद की मंशा भी यही है। साद ने खूब किया कि बग़ैर जंग के फ़तह हासिल कर ली।

शिमर—बेशक बड़ी शानदार फ़तह है !

ज़ियाद—क्यों, यह फ़तह नहीं है ! तंग क्यों करते हो !

शिमर—जिसे आप फ़तह समझ रहे हैं, वह फ़तह नहीं, आपकी

शिकस्त है। ऐसी शिकस्त, जो आपको फिर पनपने न देगी। आग फूस में पड़कर उतनी खौफ़नाक नहीं हो सकती, जितने इस मुहासिरे से निकलकर हुसैन हो जायँगे। शेर किसी शिकार के पीछे दौड़ता हुआ बस्ती में आ गया है। उसे आप घेरकर मार सकते हैं, लेकिन एक बार वह फिर जंगल में पहुँच जाय, तो कौन है, जो उसके पंजों के सामने जाने की हिम्मत कर सके। कर्बला से निकलकर हुसैन वह दरिया होंगे, जो बाँध को तोड़कर बाहर निकल आया हो, और आपकी हालत उसी टूटे हुए बाँध की-सी होगी।

ज़ियाद—हाँ, इसमें तो कोई शक नहीं कि अगर वह निकलकर हिजाज और यमन चले जायँ, तो शायद खलीफ़ा यज़ीद की खिलाफ़त डगमगा जाय। मगर एक शर्त यह भी तो है कि उन्हें यज़ीद के पास जाने दिया जाय। इसमें हमें क्या उज्र हो सकता है?

शिमर—अगर बाज़ कबूतर के क़रीब पहुँच जाय, तो दुनिया की कोई फ़ौज उसे बाज़ के चंगुल से नहीं बचा सकती। हुसैन अपने बाप के बेटे हैं। खलीफ़ा उनकी दलीलों से पेश नहीं पा सकते। कोई अजब नहीं कि अपनी अक्ल के ज़ोर से आज का क़ैदी कल का खलीफ़ा हो और खलीफा को उलटे उसकी बैयत क़बूल करनी पड़े।

ज़ियाद—तुम्हारा यह खयाल भी बहुत सही है। काश मुझे तुम्हारी वफ़ादारी का इतना इल्म पहले होता, तो तुम्हीं फ़ौज के सिपहसालार होते।

शिमर—काश साद ने मेरी बातें इतनी क़द्रदानी से सुनी होतीं, तो मुझे यहाँ आने और आपको तकलीफ़ देने की ज़रूरत ही न पड़ती।

ज़ियाद—तुम सुबह चले जाओ, और साद से कहो कि फ़ौरन् जंग शुरू करे।

शिमर—हुजूर को जो हुक्म देना हो, खत के जरिए दें। मातहत के ज़रिए उसके अफ़सर को हुक्म देना अफ़सर को मातहत के खून का प्यासा बनाना है।

ज़ियाद—बेहतर, मैं खत ही लिख देता हूँ।

[**ज़ियाद खत लिखकर शिमर को देता है।**]

शिमर—इसमें हुजूर ने ऐसा कोई कलमा तो नहीं लिखा, जिसमें साद को शुबहा हो कि मेरे इशारे से लिखा गया है?

ज़ियाद—मुतलक़ नहीं। हाँ, यह अलबत्ता लिख दिया है कि अगर तूने सिरताबी की, तो तेरी जगह शिमर लश्कर का सरदार होगा।

शिमर—हुज़ूर की क़द्रदानी की कहाँ तक तारीफ़ करूँ।

ज़ियाद—इसकी ज़रूरत नहीं। अगर साद मेरे हुक्म की तामील करे, तो बेहतर, नहीं तो वह माजूल होगा, और तुम लश्कर के सरदार होगे। पहला काम जो तुम करोगे, वह साद का सिर क़लम करके मेरे पास भेजना होगा। यही तुम्हारी बहाली की बिस्मिल्लाह होगी।

शिमर—(उठकर) आदाब बजा लाता हूँ।

[शिमर बाहर चला जाता है, और ज़ियाद मकान में आराम करने जाता है।]

छठा दृश्य

[प्रातःकाल। शाम का लश्कर। हुर और साद घोड़ों पर सवार फ़ौज का मुआयना कर रहे हैं।]

हुर—अभी तक ज़ियाद ने आपके खत का जवाब नहीं दिया?

साद—उसके इन्तज़ार मे रात-भर आँखें नहीं लगीं। जब किसी की आहट मिलती थी, तो गुमान होता था कि क़ासिद है। मुझे तो यक़ीन है कि अमीर ज़ियाद मेरी तजवीज़ मजूर कर लेंगे।

हुर—काश ऐसा होता! अगर जंग की नौबत आयी, तो फ़ौज के कितने ही सिपाही लड़ने से इनकार कर देंगे।

[सामने से शिमर घोड़ा दौड़ाता हुआ आता है।]

साद—लो, क़ासिद भी आ गया। ख़ुदा करे, अच्छी खबर लाया हो। अरे, यह तो शिमर है।

हुर—हाँ, शिमर, ही है। ख़ुदा ख़ैर करे, जब यह ख़ुद ज़ियाद के पास गया था, तो मुझे आपकी तजवीज के मंजूर होने में बहुत शक है।

शिमर—(क़रीब आकर) अस्सलामअलेक। मैं कल एक ज़रूरत से मकान चला गया। अमीर जियाद को ख़बर हो गयी, उसने मुझे बुलाया, और आपको यह ख़त दिया।

[ख़त साद को देता है। साद ख़त पढ़कर जेब में रख लेता है, और एक लम्बी साँस लेता है।]

साद—शिमर, मैंने समझा था, तुम सुलह की ख़बर लाते होगे।

शिमर—आपकी समझ की ग़लती थी। आपको मालूम है कि अमीर ज़ियाद एक बार फ़ैसला करके फिर उसे नहीं बदलते। आपकी क्या मंशा है?

साद—मजबूरन् हुक्म की तामील करूँगा।

शिमर—तो मैं फ़ौजों को तैयार होने का हुक्म देता हूँ?

साद—जैसा मुनासिब समझो।

[शिमर फ़ौज़ की तरफ़ चला जाता है।]

हुर—खुदा सब कुछ करे, इन्सान का बातिन स्याह न बनाये।

साद—यह सब इन्हीं हजरत की कारगुजारी है। ज़ियाद मेरी तरफ़ से कभी इतने बदग़ुमान न थे।

हुर—मुझे तो फ़र्ज़न्दे-रसूल से लड़ने के ख़याल ही से वहशत होती है।

साद—हुर, तुम सच कहते हो। मुझे यक़ीन है कि उनसे जो लड़ेगा, उसकी जगह जहन्नुम में है। मगर मजबूर हूँ, 'रै' की परवा न करूँ, तो भी घर की तरफ़ से बेफ़िक्र तो नहीं हो सकता। अफ़सोस, मैं हविस के हाथों तबाह हुआ। काश मेरा दिल इतना मजबूत होता कि 'रै' की निज़ामत पर लट्टू न हो जाता, तो आज मैं फ़र्ज़न्दे-रसूल के मुक़ाबले पर न खड़ा होता। हुर, क्या इस जंग के बाद किसी तरह मग़फ़िरत हो सकती है!

हुर—फ़र्ज़न्दे रसूल के ख़ून का दाग़ कैसे धुलेगा?

साद—हुर, मैं इतने रोजे रक्खूँगा कि मेरा जिस्म घुल जाय, इतनी नमाज़ें अदा करूँगा कि आज तक किसी ने न की होंगी। 'रै' की सारी आम-

दनी खैरात कर दूँगा। पियादा पा हज्ज करूँगा, और रसूल पाक की क़ब्र पर बैठकर रोऊँगा, गुनहगारों की खताएँ मुआफ़ करूँगा, और एक चींटी को भी ईज़ा न पहुँचाऊँगा। हाय! ज़ालिम शिमर सोचने का मौक़ा भी नहीं देना चाहता। फ़ौज़ें तैयार हो रही हैं। क़ैस, हज्जाज, शीस, अशअस अपने-अपने आदमियों को सफ़ों में खड़े करने लगे। वह लो, नक़्क़ारे पर चोट भी पड़ गयी।

हुर—मैं भी जाता हूँ, अपने आदमियों को सँभालूँ।

[आहिस्ता-आहिस्ता जाता है।]

साद—ऐ खुदा! बहुत बेहतर होता कि तूने मुझे शिमर की तरह स्याह बातिन बनाया होता कि अज़ाब और सबाब की कशमकश से आज़ाद हो जाता, या हानी और कसीर का-सा दिल दिया होता कि अपने को ग़ैर पर कुरबान कर देता। कमज़ोर इन्सान भी जानता है कि मुझे क्या करना चाहिए, और क्या नहीं कर सकता। वह ग़ुलाम से भी बदतर है, जिसका अपनी मर्ज़ी पर कोई अधिकार नहीं। मेरे क़बीलेवालों ने भी सफ़बंदी शुरू कर दी। मुझे भी अब जाकर अपनी जगह पर सबसे आगे चलना चाहिए, और वही करना चाहिए, जो शिमर कराये, क्योंकि अब मैं फ़ौज का सरदार नहीं हूँ, शिमर है।

[आहिस्ता-आहिस्ता जाकर फ़ौज के सामने खड़ा हो जाता है।]

शिमर—(उच्च स्वर से) ऐ ख़िलाफ़त को ज़िन्दा रखने के लिए अपने तईं क़ुरबान करनेवाले बहादुरो, खुदा का नाम लेकर क़दम आगे बढ़ाओ। दुश्मन तुम्हारे सामने है। वह हमारे रसूल पाक का नेवासा है, और उस रिश्ते से हम सब ताज़ीम से उसके आगे सिर झुकाते हैं। लेकिन जो आदमी हिर्स का इतना बन्दा है कि रसूल पाक के हुक्म का, जो उन्होंने ख़िलाफ़त को अब तक क़ायम रखने के लिए दिया था, पैरों-तले कुचलता है, और जो क़ौम की बैयत की परवा न करके अपने विरासत के हक़ के लिए ख़िलाफ़त को ख़ाक में मिला देना चाहे, वह रसूल का नेवासा होते हुए भी मुसलमान नहीं है। हमारी निगाहों में रसूल के हुक्म की इज़्ज़त उसके नेवासे की इज़्ज़त से कहीं ज़्यादा है। हमारा फ़र्ज़ है कि हमने जिस खलीफ़ा की

बैयत क़बूल की है, उसे ऐसे हमलों से बचायें, जो हिर्स को पूरा करने के लिए दाद के नाम पर किये जाते हैं। चलो, फ़र्ज़ के मैदान में क़दम बढ़ाओ।

[**नक्कारे पर चोब पड़ती है, और पूरा लश्कर हुसैन के पड़ाव की तरफ़ बढ़ता है। साद आगे क़दम बढ़ाता हुआ हुसैन के खेमे के क़रीब पहुँच जाता है।**]

अब्बास—(**हुसैन के खेमे से निकलकर**) साद ! यह दग़ा ! हम तुम्हारे जवाब का इन्तजार कर रहे हैं, और तुम हमारे ऊपर हमला कर रहे हो ? क्या यही आईने-जंग है ?

साद—हज़रत, कलाम पाक की क़सम, मैं दग़ा के इरादे से नहीं आया। (**ज़ियाद का ख़त अब्बास के हाथ में देकर**) यह देखिए, और मेरे साथ इन्साफ़ कीजिए। मैं इस वक्त. नाम के लिए फ़ौज का सरदार हूँ। अख़्तियार शिमर के हाथों में है।

अब्बास—(**ख़त पढ़कर**) आखिर तुम दुनिया की तरफ़ झुके। याद रक्खो, ख़ुदा की दरगाह में शिमर नहीं, तुम खतावार समझे जाओगे।

साद—या हज़रत, यह जानता हूँ, पर ज़ियाद के ग़ुस्से का मुक़ाबला नहीं कर सकता। वह बिल्ली है, मैं चूहा हूँ; वह बाज़ है, मैं कबूतर हूँ। वह एक इशारे से मेरे खानदान का निशान मिटा सकता है। अपनी हिफ़ाज़त की फ़िक्र ने मुझे मजबूर कर दिया है, मेरे दीन और ईमान को फ़ना कर दिया है।

अब्बास—ख़ुलासा यह है कि तुम हमारा मुहासिरा करना चाहते हो। ठहरो, मैं जाकर भाई साहब को इत्तिला दे दूँ।

[**अब्बास हुसैन के खेमे की तरफ़ जाते हैं।**]

शिमर—(**साद के पास आकर**) क्या अब कोई दूसरी चाल चलने की सोच रहे हैं ?

साद—नहीं, हज़रत हुसैन को हमारी आमद और मंशा की इत्तिला देने गये है।

शिमर—यह मौक़े को हमारे हाथों से छीनने का हीला है। शायद

क़बीलों से इमदाद तलब करने का क़स्द कर रहे हैं। एक दिन की देर भी उन्हें मौक़े का बादशाह बना सकती है।

[**अब्बास खेमे से वापस आते हैं।**]

अब्बास—मैंने हज़रत हुसैन को तुम्हारा पैग़ाम दिया। हज़रत को इसका बेहद सदमा है कि उनकी कोई शर्त मंज़ूर नहीं की गयी। सुलह की इससे ज़्यादा कोशिश उनके इमकान में न थी। गोकि हम सब जंग के लिए तैयार हैं, लेकिन उन्होंने एक दिन की मुहलत माँगी है कि दुआ और नमाज़ में गुज़ारें। सुबह को हमें ख़ुदा का जो हुक्म होगा, उसकी तामील करेंगे।

साद—इसका जवाब मैं अपनी फ़ौज के दूसरे सरदारों से मशविरा करके दूँगा।

[**अब्बास अपने खेमों की तरफ़ जाते हैं, और हुर, हज्जाज, अशअस, क़ीस सब साद के पास आकर खड़े हो जाते हैं।**]

साद—शिमर, तुम्हारी इस मामले में क्या सलाह है?

शिमर—यह उनकी हीलेबाज़ी है। आइन्दा आप अमीर हैं, जो जी चाहे, करें।

साद—(**दूसरे सरदारों से मुख़ातिब होकर**) हज़रत हुसैन ने एक दिन की मुहलत की दरख़्वास्त की है, आप लोगों की क्या सलाह है?

शिमर—इसका आप लोग ख़याल रखिएगा कि यह मुहलत आफ़त के मीज़ान को पलट सकती है।

हुर—मुहलत के मंज़ूर करने में पसोपेश का कोई मौक़ा नहीं।

हज्जाज—हुसैन अगर काफ़िर होते, और मुहलत की दरख़्वास्त करते, तो भी उसको क़बूल करना लाज़िम था।

क़ीस—बहुत मुमकिन है, वह कल तक आपस में सलाह करके यज़ीद की बैयत क़बूल कर लें, तो नाहक़ ख़ूँरेज़ी क्यों हो।

शिमर—और अगर शाम तक बनी, असद और दूसरे क़बीले उनकी मदद के लिए आ जायँ, तो?

शीस—हज़रत हुसैन ने अभी तक किसी क़बीले से इमदाद नहीं तलब की है, वरना हम इतने इतमीनान से यहाँ न खड़े होते।

साद—बनी और असद ही नहीं, अगर इराक़ के सारे क़बीले आ जायँ, तब भी हम आज उन्हें जंग के लिए मजबूर नहीं कर सकते। यह इन्सानियत के खिलाफ़ है। मेरा यही फ़ैसला है। आइन्दा आप लोगों को अख़्तियार है।

[साद ग़ुस्से में भरा हुआ वहाँ से चला जाता है।]

शिमर—क्या आप लोगों की यही मर्ज़ी है कि आज जंग मुल्तवी की जाय?

हुर—यहाँ जितने असहाब मौजूद हैं, सब अपनी रायें दे चुके, अमीरे-लश्कर भी चला गया। ऐसी हालत में मुहलत के सिवा और हो ही क्या सकता है। अगर आप अपनी जिम्मेदारी पर जंग करना चाहते हैं, तो शौक़ से कीजिए।

[हुर, हज्जाज वग़ैरह भी चले जाते हैं।]

शिमर—(दिल में) कौन कहता है कि हुसैन के साथ दग़ा की गयी? यहाँ सब-के-सब हुसैन के दोस्त हैं। इस फ़ौज में रहने से कहीं यह बेहतर था कि सब-के-सब हुसैन की फ़ौज में होते। तब भी उनकी इतनी मदद न कर सकते। मुझे जरा भी ताज्जुब न होगा, अगर कल सब लोग हथियार रखकर हुसैन के क़दमों पर गिर पड़ें। ज़ियाद को इस मुहलत की भी इत्तिला तो दे ही दूँ।

[साद का क़ासिद मुहलत का पैग़ाम लेकर हुसैन के लश्कर की तरफ़ आता है। शिमर अपने खेमे की तरफ़ जाता है।]

सातवाँ दृश्य

[समय ८ बजे रात। हुसैन एक कुर्सी पर मैदान में बैठे हुए हैं। उनके दोस्त और अज़ीज़ सब फ़र्श पर बैठे हुए हैं। शमा जल रही है।]

हुसैन—शुक्र है खुदाए-पाक का, जिसने हमें ईमान की रोशनी अता की, ताकि हम नेक को क़बूल करें, और बद से बचें। मेरे सामने इस वक़्त मेरे बेटे और भतीजे, भाई और भांजे, दोस्त और रफ़ीक़, सब जमा हैं। मैं

सबके लिए खुदा से दुआ करता हूँ। मुझे इसका फ़ख् है कि उसने मुझे ऐसे सआदतमंद अज़ीज़ और ऐसे जाँनिसार दोस्त अता किये। आपने दोस्ती का हक़ पूरी तरह अदा कर दिया, आपने साबित कर दिया कि हक़ के सामने आप जान और माल की कोई हक़ीक़त नहीं समझते। इस्लाम की तारीख़ में आपका नाम हमेशा रोशन रहेगा। मेरा दिल इस खयाल से पाश-पाश हुआ जाता है कि कल मेरे बायस वे लोग, जिन्हें ज़िन्दा हिम्मत चाहिए, जिनका हक़ है ज़िन्दा रहना, जिनको अभी ज़िन्दगी में बहुत कुछ करना बाक़ी है, शहीद हो जायँगे। मुझे सच्ची खुशी होगी, अगर तुम लोग मेरे दिल का यह बोझ हल्का कर दोगे। मैं बड़ी खुशी से हरएक को इजाज़त देता हूँ कि उसका जहाँ जी चाहे, चला जाय। मेरा किसी पर कोई हक़ नहीं है। नहीं, मैं तुमसे इल्तमास करता हूँ, इसे क़बूल करो। तुमसे किसी की दुश्मनी नहीं हुई है, जहाँ जाओगे, लोग तुम्हारी इज़्ज़त करेंगे। तुम ज़िन्दा शहीद हो जाओगे, जो मरकर शहादत का दर्जा पाने से इज़्ज़त की बात नहीं। दुश्मन को सिर्फ़ मेरे खून की प्यास है, मैं ही उसके रास्ते का पत्थर हूँ। अगर हक़ और इन्साफ को सिर्फ़ मेरे खून से आसूदगी हो जाय, तो उसके लिए और खून क्यों बहाया जाय? साद से एक शब की मुहलत माँगने में यही मेरा खयाल था। यह देखो, मैं यह शमा ठंढी किये देता हूँ, जिसमें किसी को हिजाब न हो।

[**सब लोग रोने लगते हैं, और कोई अपनी जगह से नहीं हिलता।**]

अब्बास—या हज़रत, अगर आप हमें मारकर भगायें तो भी हम नहीं जा सकते। खुदा वह दिन न दिखाये कि हम आपसे जुदा हों। आपकी शफ़क़त के साये में पल-कर अब हम सोच ही नहीं सकते कि आपके बग़ैर हम क्या करेंगे, कैसे रहेंगे।

अली अकबर—अब्बाजान, यह आप क्या फ़रमाते हैं? हम आपके क़दमों पर निसार होने के लिए आये हैं। आपको यहाँ तनहा छोड़कर जाना तो क्या, महज उसके खयाल से रूह को नफ़रत होती है।

हबीब—खुदा की क़सम, आपको उस वक़्त तक नहीं छोड़ सकते, जब

तक दुश्मनों के सीने में अपनी तेज बर्छियाँ न चुभा लें। अगर मेरे पास तलवार भी न होती, तो मैं आपकी हिमायत पत्थरों से करता।

अब्दुल्लाह कलबी—अगर मुझे इसका यक़ीन हो जाय कि मैं आपकी हिमायत में ज़िन्दा जलाया जाऊँगा, और फिर ज़िन्दा होकर जलाया जाऊँगा। और यह अमल सत्तर बार होता रहेगा, तो भी मैं आपसे जुदा नहीं हो सकता। आपके क़दमों पर निसार होने से जो रुतबा हासिल होगा, वह ऐसी-ऐसी बेशुमार ज़िन्दगियों से भी नहीं हासिल हो सकता।

ज़हीर—हज़रत, आपने ज़बाने-मुबारक से ये बातें निकालकर मेरी जितनी दिलशिकनी की है, उसका काफ़ी इज़हार नहीं कर सकता। अगर हमारे दिल दुनिया की हविस से मग़लूब भी हो जायँ, तो हमारे क़दम किसी दूसरी तरफ़ जाने से गुरेज़ करेंगे। क्या आप हमें दुनिया में रूस्याह और बेग़ैरत बनाकर ज़िन्दा रखना चाहते हैं?

अली असग़र—आप तो मुझे शरीक किये बग़ैर कभी कोई चीज़ न खाते थे, क्या जन्नत के मजे अकेले उठाइएगा? शमा जलवा दीजिए हमें इस तारीकी में आप नज़र नहीं आते।

हुसैन—आह! काश रसूले-पाक आज ज़िन्दा होते और देखते कि उनकी औलाद और उनकी उम्मत हक़ पर कितने शौक़ से फ़िदा होती है! खुदा से मेरी यही इल्तजा है कि इस्लाम में हक़ पर शहीद होनेवालों की कभी कमी न रहे। असग़र, बेटा आओ, तुम्हारे बाप की जान पर फ़िदा हो, हम-तुम साथ-साथ जन्नत के मेवे खायेंगे। दोस्तो, आओ, नमाज़ पढ़ लें। शायद यह हमारी आखिरी नमाज़ हो।

[सब लोग नमाज़ पढ़ने लगते हैं।]

आठवाँ दृश्य

[प्रातःकाल हुसैन के लश्कर में जंग की तैयारियाँ हो रही हैं।]

अब्बास—खेमे एक दूसरे से मिला दिये गये, और उनके चारों तरफ़

खंदकें खोद डाली गयीं, उनमें लकड़ियाँ भर दी गयीं, नक्कारा बजवा दूँ ?

हुसैन—नहीं, अभी नहीं। मैं जंग में पहले क़दम नहीं बढ़ाना चाहता। मैं एक बार फिर सुलह की तहरीक करूँगा। अभी तक मैंने शाम के लश्कर से कोई तक़रीर नहीं की, सरदारों ही से काम निकालने की कोशिश करता रहा। अब मैं जवानों से रूबरू बातें करना चाहता हूँ। कह दो, साँडनी तैयार करे।

अब्बास—जैसा इर्शाद।

हुसैन—(दुआ करते हुए) ऐ खुदा ! तू ही डूबती हुई किश्तियों को पार लगानेवाला है। मुझे तेरी ही पनाह है, तेरा ही भरोसा है; जिस रंज से दिल कमज़ोर हो, उसमें तेरी ही मदद माँगता हूँ; जो आफ़त किसी तरह सिर से न टले, जिसमें दोस्तों से काम न निकले, जहाँ कोई हीला न हो, वहाँ तू ही मेरा मददगार है।

[खेमे से बाहर निकलते हैं। हबीब और ज़हीर आपस में नेज़ेबाज़ी का अभ्यास कर रहे हैं।]

हबीब—या हज़रत, खुदा से मेरी यही दुआ है कि यह नेज़ा साद के जिगर में चुभ जाय, और 'रै' की सूबेदारी का अरमान उसके खून के रास्ते निकल जाय।

ज़हीर—उसे सूबेदारी ज़रूर मिलेगी। जहन्नुम की या 'रै' की, इसका फ़ैसला मेरी तलवार करेगी।

हबीब—वाह ! वह मेरा शिकार है, उधर निगाहें न उठाइएगा। आपके लिए मैंने शिमर को छोड़ दिया।

ज़हीर—बखुदा, वह मेरे मुक़ाबिले आये, तो मैं उसकी नाक काटकर छोड़ दूँ। ऐसे बदनीयत आदमी के लिए जहन्नुम से ज्यादा तकलीफ़ दुनिया ही में है।

अब्बास—और मेरे लिए कौन-सा शिकार तजवीज़ किया ?

हबीब—आपके लिए ज़ियाद हाज़िर है।

हुसैन—और मेरे लिए ? क्या मैं ताकता ही रहूँगा ?

ज़हीर—आपको कोई शिकार न मिलेगा।

हुसैन—मेरे साथ यह ज़्यादती क्यों ?

ज़हीर—इसलिए कि आप भी शिकारियों की ज़ैल में आ जायँगे, तो जन्नत की नियामतों में भी साझा बँटायेंगे। आपके लिए रसूले-पाक की क़ुर्बत काफ़ी है। जन्नत की नियामतों में हम आपको शरीक नहीं करना चाहते।

हुसैन—मैं जरा साद के लश्कर से बातें करके आ जाऊँ, तो इसका फ़ैसला हो।

हबीब—उन गुमराहों की फ़रमाइश करना बेकार है। उनके दिल इतने सख़्त हो गये हैं कि उन पर कोई तक़रीर असर नहीं कर सकती।

हुसैन—ताहम कोशिश करना मेरा फ़र्ज़ है।

[**परदा बदलता है। हुसैन अपनी साँडनी पर साद की फ़ौज के सामने खड़े हैं।**]

हुसैन—ऐ लोगो, कूफ़ा और शाम के दिलेर जवानो और सरदारो ! मेरी बात सुनो, जल्दी न करो। मुसलमान अपने भाई की गर्दन पर तलवार चलाने मे जितनी देर करे, ऐन सवाब है। मैं उस वक्त. तक खूँरेजी नहीं करना चाहता, जब तक तुम्हें इतना न समझा लूँ, जितना मुझ पर वाजिब है। मैं ख़ुदा और इन्सान, दोनों ही के नज़दीक इस ज़ंग की जिम्मेदारी से पाक रहना चाहता हूँ, जहाँ भाई की तलवार भाई की गर्दन पर होगी। तुम्हें मालूम है, मैं यहाँ क्यों आया ? क्या मैंने इराक़ या शाम पर फ़ौजकशी की ? मेरे अज़ीज़ दोस्त और अहलेबैत अगर फ़ौज कहे जा सकते हों, तो बेशक मैंने फ़ौजकशी की। सुनो, और इन्साफ़ करो, अगर तुम्हें ख़ुदा का खौफ़ और ईमान का लिहाज़ है कि मैं यहाँ तुम्हारे ही सरदारों के बुलाने से आया। मैंने अहद कर लिया था कि मैं दुनिया के झगड़ों से अलग रहकर ख़ुदा की इबादत में अपनी ज़िन्दगी के बचे हुए दिन गुज़ारूँगा। मगर तुम्हारी ही फ़रियाद ने मुझे अपने गोशे से निकाला, रसूल की उम्मत की फ़रियाद सुनकर मैं कानों में उँगली न डाल सका। अगर इस हिमायत की सजा क़त्ल है, तो यह सिर हाजिर है; शौक़ से क़त्ल करो। मैं हज्जाज से पूछता हूँ—क्या तुमने मुझे खत नहीं लिखे थे ?

हज्जाज—मैंने आपको कोई खत नहीं लिखा।

हुसैन—क़ीस, तुम्हें भी ख़त लिखने से इनकार है?

क़ीस—मैंने कब आपसे फ़रियाद की थी?

हुसैन—और शिमर, तुमने तो दस्तखत किया था?

शिमर—सरासर ग़लत है, झूठ है।

हुसैन—खुदा गवाह है कि मैं अपनी ज़िन्दगी में कभी झूठ नहीं बोला, लेकिन आज यह दाग़ भी लगा।

क़ीस—आप यज़ीद की बैयत क्यों नहीं कर लेते कि इस्लाम हमेशा के लिए फ़ितना और फ़साद से पाक हो जाय?

हुसैन—क्या इसके सिवा मसालहत की और कोई सूरत नहीं है?

शिमर—नहीं, और कोई दूसरी सूरत नहीं है।

हुसैन—तो इस शर्त पर सुलह करना मेरे लिए ग़ैरमुमकिन है। खुदा की क़सम मैं ज़लील होकर तुम्हारे सामने सिर न झुकाऊँगा, और न खौफ़ मुझे यजीद की बैयत क़बूल करने पर मजबूर कर सकता है। अब तुम्हें अख़्तियार है। हम भी जंग के लिए तैयार हैं।

शिमर—पहला तीर चलाने का सवाब मेरा है।

[हुसैन पर तीर चलाता है।]

किसी तरफ़ से आवाज़ आती है—जहन्नुम में जाने का फ़ख्र भी पहले तुझी को होगा।

[हुसैन ऊँटनी को अपनी फ़ौज की तरफ़ फेर देते हैं। हुर अपनी फ़ौज से निकलकर आहिस्ता-आहिस्ता हुसैन के पीछे चलते हैं।]

शिमर—वल्लाह, हुर, तुम्हारा इस तरह आहिस्ता-आहिस्ता अपने तईं तौल-तौलकर चलना मेरे दिल में शुबहा पैदा कर रहा है। मैंने तुमको कभी लड़ाई में इस तरह काँपते हुए चलते नहीं देखा।

हुर—अपने को जन्नत और जहन्नुम के लिए तौल रहा हूँ, और हक़ यह है कि मैं जन्नत के मुक़ाबले में किसी चीज़ को नहीं समझता, चाहे कोई मार ही क्यों न डाले। (घोड़े को एक एँड लगाकर हुसैन के पास पहुँच जाते हैं] ऐ फ़र्ज़न्दे-रसूल! मैं भी आपका हमराह हूँ। खुदाबंद मुझे आप पर

फ़िदा करे, मैं वही हूँ, जिसने आपको रास्ते से वापस करने की कोशिश की थी। खुदा की क़सम, मुझे उम्मीद न थी कि ये लोग आपके साथ यह बर्ताव करेंगे, और सुलह की कोई शर्त न क़बूल करेंगे, वरना मैं आपको इधर आने ही न देता, जब तक आप मेरे सिर पर न आते। अब इधर से मायूस होकर आपकी खिदमत में हाजिर हुआ हूँ कि आपकी मदद करते हुए अपने तईं आपके क़दमों पर निसार कर दूँ। क्या आपके नज़दीक मेरी तौबा क़बूल होगी।

हुसैन—खुदा से मेरी दुआ है कि वह तुम्हारी तौबा क़बूल करे।

हुर—अब मुझे मालूम हो गया कि मैं यज़ीद से अपनी बैयत वापस लेने में कोई गुनाह नहीं कर रहा हूँ।

[दोनो चले जाते हैं। तीरों की वर्षा होने लगती है।]

नवाँ दृश्य

[शाम का वक्त। कूफ़ा का एक गाँव। नसीमा खजूर के बाग़ में ज़मीन पर बैठी हुई गाती है।]

दबे हुओं को दबाती है ऐ ज़मीने-लहद,
यह जानती हूँ कि दम जिस्म नातवाँ में नहीं।
कफ़स में जी नहीं लगता है आह फिर भी मेरा,
यह जानती हूँ कि तिनका भी आशियाँ में नहीं।
उजाड़ दे कोई या फूँक दे उसे बिजली,
यह जानती हूँ कि रहना अब आशियाँ में नहीं।
खुद अपने दिल से मेरा हाल पूछ लो सारा,
मेरी ज़बाँ से मज़ा मेरी दास्ताँ में नहीं।
करेंगे आज से हम ज़ब्त, चाहे जो कुछ हो,
यह क्या कि लब पे फ़ुग़ाँ और असर फ़ुग़ाँ में नहीं।
ख़याल करके खुद अपने किये को रोता हूँ,
तबाहियों के सिवा कुछ मेरे मकाँ में नहीं।

[वहब का प्रवेश ।]

नसीमा—बड़ी देर की। अकेले बैठे-बैठे जी उकता गया। कुछ उन लोगों की खबर मिली ?

वहब—हाँ नसीमा, मिली। तभी तो देर हुई। तुम्हारा ख़याल सही निकला। हज़रत हुसैन के साथ हैं।

नसीमा—क्या हज़रत हुसैन की फ़ौज आ गयी ?

वहब—कैसी फ़ौज ? कुल बूढ़े, जवान और बच्चे मिलाकर ७२ आदमी हैं। दस-पाँच आदमी कूफ़ा से भी आ गये हैं। कर्बला के बेपनाह मैदान में उनके ख़ेमे पड़े हुए हैं। ज़ालिम ज़ियाद ने बीस-पच्चीस हज़ार आदमियों से उन्हें घेर रखा है। न कहीं जाने देता है, न कोई बात मानता है, यहाँ तक कि दरिया से पानी भी नहीं लाने देता। पाँच हज़ार जवान दरिया की हिफ़ाजत के लिए तैनात कर दिये हैं। शायद कल तक जंग शुरू हो जाय।

नसीमा—मुट्ठी-भर आदमियों के लिए २०-२५ हज़ार सिपाही ! कितना ग़ज़ब है ! ऐसा ग़ुस्सा आता है, ज़ियाद को पाऊँ, तो सिर कुचल दूँ।

वहब—बस, उसकी यही ज़िद है कि यज़ीद की बैयत क़बूल करो। हज़रत हुसैन कहते हैं, यह मुझसे न होगा।

नसीमा—हजरत हुसैन नबी के बेटे हैं, क़ौल पर जान देते हैं। मैं होती, तो ज़ियाद को ऐसा ज़ुल देती कि वह भी याद करता। कहती—हाँ मुझे बैयत क़बूल है। वहाँ से जाकर बड़ी फ़ौज जमा करती, और यजीद के दाँत खट्टे कर देती। रसूल पाक की शरा में ऐसी आफ़तों के लिए कुछ रियायत रखनी चाहिए थी। तो क्या हज़रत की फ़ौज में बड़ी घबराहट है ?

वहब—मुतलक़ नहीं, नसीमा। सब लोग शहादत के शौक़ से मतवाले हो रहे हैं। सबसे ज्यादा तक़लीफ़ पानी की है। ज़रा-ज़रा-से बच्चे प्यासे तड़प रहे हैं।

नसीमा—आह जालिम ! तुझसे खुदा समझे।

वहब—नसीमा, मुझे रुख़सत करो। अब दिल नहीं मानता। मैं भी

हजरत हुसैन के क़दमों पर निसार होने जाता हूँ। आओ, गले मिल ल। शायद फिर मुलाकात न हो।

नसीमा—हाय वहब ! क्या मुझे छोड़ जाओगे ? मैं भी चलूँगी।

वहब—नहीं नसीमा, उस लू के झोंकों में यह फूल मुरझा जायगा। (**नसीमा को गले लगाकर**) फिर दिल कमज़ोर हुआ जाता है। सारी राह कम्बख्त को समझाता आया था। नसीमा, तुम मुझे दुत्कार दो, हाँ, दुत्कार दो। खुदा, तूने मुहब्बत को नाहक़ पैदा किया।

नसीमा—(**रोकर**) वहब, यह फूल किस काम आयेगा ? कौन इसको सूँघेगा, कौन इसे दिल से लगायेगा ! मैं भी हज़रत जैनब के क़दमों पर निसार हूँगी।

वहब—वह प्यास की शिद्दत, वह गरमी की तकलीफ़, वह हंगामे, कैसे ले जाऊँ ?

नसीमा—जिन तकलीफ़ों को सैदानियाँ झेल सकती हैं, क्या मैं न झेल सकूँगी ? हीले मत करो वहब, मैं तुम्हें तनहा न जाने दूँगी।

वहब—नसीमा, तुम्हें निगाहों से देखते हुए मेरे क़दम मैदान की तरफ़ न उठेंगे।

नसीमा—(**वहब के कन्धे पर सिर रखकर**) प्यारे ! क्यों किसी ऐसी जगह नहीं चलते, जहाँ एक गोशे में बैठकर इस ज़िन्दगी का लुत्फ़ उठायें। तुम चले जाओगे, खुदा न ख्वास्ता दुश्मनों को कुछ हो गया, तो मेरी ज़िन्दगी रोते ही गुज़रेगी। क्या हमारी ज़िन्दगी रोने ही के लिए है ? मेरा दिल अभी दुनिया की लज़्ज़तों का भूखा है। जन्नत की खुशियों की उम्मीद पर इस ज़िन्दगी को क़ुर्बान नहीं करते बनता। हज़रत हुसैन की फ़तह तो होने से रही। पच्चीस हज़ार के सामने जैसे सौ, वैसे ही एक सौ एक।

वहब—आह नसीमा ! तुमने दिल के सबसे नाज़ुक हिस्से पर निशाना मारा। मेरी भी यही दिली तमन्ना है कि हम किसी आफ़ियत के गोशे में बैठकर ज़िन्दगी की बहार लूटें। पर ज़ालिम की यह बेदर्दी देखकर खून मे जोश आ जाता है, और दिल बेअख्तियार यही चाहता है कि चलकर हज़रत हुसैन की हिमायत में शहीद हो जाऊँ। जो आदमी अपनी आँखों से

ज़ुल्म होते देखकर ज़ालिम का हाथ नहीं रोकता, वह भी ख़ुदा की निगाहों में ज़ालिम का शरीक है।

नसीमा—मैं अपनी आँखें तुम पर सदक़े करूँ, मुझे अजाब व सबाब के मुख़मसों में मत डालो। सोचो, क्या यह सितम नहीं है कि हमारी ज़िन्दगी की बहार इतनी जल्द रुख़सत हो जाय? अभी मेरे उरूसी कपड़े भी नहीं मैले हुए, हिना का रंग भी नहीं फीका पड़ा, तुम्हें मुझ पर ज़रा भी तर्स नहीं आता? क्या ये आँखें रोने के लिए बनायी गयी हैं? क्या ये हाथ दिल को दबाने के लिए बनाये गये हैं? यही मेरी ज़िन्दगी का अंजाम है?

[**वहब के गले में हाथ डाल देती है।**]

वहब—(**स्वगत**) ख़ुदा, सँभालियो, अब तेरा ही भरोसा है। यह आशिक़ की दिल बहलानेवाली इल्तजा नहीं, माशूक़ का ईमान ग़ारत करने वाला तक़ाज़ा है।

[**साहसराय की सेना सामने से चली आ रही है।**]

नसीमा—अरे! यह फ़ौज कहाँ से आ रही है? सिपाहियों का ऐसा अनोखा लिबास तो कहीं नहीं देखा। इनके माथों पर ये लाल-लाल बेल-बूटे कैसे बने हैं! क़सम है इन आँखों की, ऐसे सजीले, ऐसे हसीन जवान आज तक मेरी नज़र से नहीं गुज़रे।

वहब—मैं जाकर पूछता हूँ, कौन लोग हैं। (**आगे बढ़कर एक सिपाही से पूछता है**) ऐ जवानो! तुम फ़रिश्ते हो या इन्सान? अरब में तो हमने ऐसे आदमी नहीं देखे। तुम्हारे चेहरों से जलाल बरस रहा है। इधर कहाँ जा रहे हो?

सिपाही—तुमने सुल्तान साहसराय का नाम सुना है? हम उन्हीं के सेवक हैं, और हज़रत हुसैन की सहायता करने जा रहे हैं, जो इस वक़्त कर्बला के मैदान में घिरे हुए हैं। तुमने यज़ीद की बैयत ली है या नहीं?

वहब—मैं उस ज़ालिम की बैयत क्यों क़बूल करने लगा था।

सिपाही—तो आश्चर्य है तुम हज़रत हुसैन की फ़ौज में क्यों नहीं हो। तुम सूरत से मनचले जवान मालूम होते हो, फिर यह कायरता कैसी?

वहब—(**शरमाते हुए**) हम वहीं जा रहे हैं।

सिपाही—तो फिर आओ, साथ चलें।

वहब—मेरे साथ मस्तूरात भी हैं। तुम लोग बढ़ो, हम भी आते हैं।

[फ़ौज चली जाती है।]

नसीमा—वह साहसराय कौन है?

वहब—यह तो नहीं कह सकता, पर इतना कह सकता हूँ कि ऐसा हक़-परस्त, दिलेर, इन्साफ़ पर निसार होनेवाला आदमी दुनिया में न होगा। बेकसों की हिमायत में कभी उसे पीछे क़दम हटाते नहीं देखा। मालूम नहीं, किस मज़हब का आदमी है, पर जिस मज़हब और जिस क़ौम में ऐसी पाक रूहें पैदा हों, वह दुनिया के लिए बरकत है।

नसीमा—इनके भी बाल-बच्चे होंगे?

वहब—बहुत बड़ा खानदान है। सात तो भाई ही हैं।

नसीमा—और मुसलमान न होते हुए भी ये लोग हज़रत हुसैन को इमदाद के लिए जा रहे हैं?

वहब—हाँ, और क्या!

नसीमा—तो हमारे लिए कितनी शर्म की बात है कि हम यों पहलू-तिहीं करें।

वहब—प्यारी नसीमा, चले चलेंगे। दो-चार दिन तो ज़िन्दगी की बहार लूट लें।

नसीमा—नहीं वहब, एक लहमे की भी देर न करो। खुदा हमें जन्नत में फिर मिलायेगा, और तब हम अब्द तक ज़िन्दगी की बहार लूटेंगे।

वहब—नसीमा, आज और सब्र करो।

नसीमा—एक लहमा भी नहीं। वहब, मुझे अब इम्तहान में न डालो। साँडनी लाओ, फ़ौरन चलो।

पाँचवाँ अङ्क

पहला दृश्य

[समय ६ बजे दिन । दोनों फ़ौजें लड़ाई के लिए तैयार हैं ।]

हुर—या हज़रत, मुझे मैदान में जाने की इजाज़त मिले । अब शहादत का शौक़ रोके नहीं रुकता ।

हुसैन—वाह, अभी आये हो, और अभी चले जाओगे । यह मेहमाँनवाज़ी का दस्तूर नहीं कि हम तुम्हें आते-ही-आते रुख़सत कर दें ।

हुर—या फ़र्ज़न्दे-रसूल, मैं आपका मेहमान नहीं, ग़ुलाम हूँ । आपके क़दमों पर निसार होने के लिए आया हूँ ।

हुसैन—(हुर के गले मिलकर आँखों में आँसू भरे हुए) अगर तुम्हारी इसी में ख़ुशी है, तो जाओ, ख़ुदा को सौंपा ।

दुनिया के शहीदों में तेरा नाम हो भाई,
उक़बा में तुझे राहतोआराम हो भाई ।

[हुर मैदान की तरफ़ चलते हैं, हुसैन ख़ेमे के दरवाज़े तक उन्हें पहुँचाने आते हैं । ख़ेमे से निकलते हुए हुर हुसैन के क़दमों को बोसा देते हैं, और चले जाते हैं ।]

हुर—(मैदान में जाकर)

ग़ुलाम हज़रते शब्बीर रन में आता है,
वही जो दीं का है बंदा, वह मेरा आक़ा है ।
वह आये ठोंक के ख़म, जिसकी मौत आयी है,
उसी का पीने को ख़ूँ मेरी तेग़ आयी है ।

[सफ़वान उधर से झूमता हुआ आता है ।]

हुर—सफ़वान, कितनी शर्म की बात है कि तुम फ़र्ज़न्दे-रसूल से जंग करने आये हो ?

सफ़वान—हम सिपाहियोंको माल, दौलत, जागीर और रुतबा चाहिए, हमें दीन और आक़बत से क्या काम ? सँभल जाओ।

[दोनो पहलवानों में चोटें चलने लगती हैं ।]

अब्बास—वह मारा। सफ़वान का सीना टूट गया, ज़मीन पर तड़पने लगा।

हबीब—सफ़वान के तीनों भाई दौड़े चले आते हैं।

अब्बास—वाह मेरे शेर ! एक को तलवार से लिया, दूसरा भी गिरा, और तीसरा भागा जाता है।

हबीब—या ख़ुदा, ख़ैर कर, हुर का घोड़ा गिर गया।

हुसैन—फ़ौरन् एक घोड़ा भेजो।

[एक आदमी हुर के पास घोड़ा लेकर जाता है ।]

अब्बास—यह पीरानासाली और यह दिलेरी ! ऐसा बहादुर आज तक नज़र से नहीं गुज़रा। तलवार बिजली की तरह कौंध रही है।

हुसैन—देखो, दुश्मन का लश्कर कैसा पीछे हटा जाता है। मरनेवाले के सामने खड़ा होना आसान नहीं है। दिलेरी की इन्तहा है।

अब्बास—अफ़सोस, अब हाथ नहीं उठते। तीरों से सारा बदन चलनी हो गया।

शिमर—तीरों की बारिश करो, मार लो। हैफ़ है तुम पर कि एक आदमी से इतने ख़ायफ़ हो। वह गिरा, काट लो सिर और हुसैन की फ़ौज में फेंक दो।

[कई आदमी हुर के सिर को काटने को चलते हैं कि हुसैन मैदान की तरफ़ दौड़ते हैं ।]

एक—वह हुसैन दौड़े चले आते हैं। भागो, नहीं तो जान न बचेगी।

हुसैन—(हुर की लाश से लिपटकर)

टुकड़े हैं बदन, ज़ख़्म बहुत खाये हैं भाई,
हो होश में आ लाश पै हम आये हैं भाई।

[हुर आँखें खोलकर देखते हैं, और अपना सिर उनकी गोद में रख देते हैं ।]

हुर—या हज़रत, आपके क़दमों पर निसार हो गया। ज़िन्दगी ठिकाने लगी।

तकिया तेरे जानू का मयस्सर हुआ आक़ा,
ज़र्रा था यह अब महरे-मुनौवर हुआ आक़ा।

हुसैन—हाय! मेरा जाँबाज़ रफ़ीक़ दुनिया से रुख़सत हो गया। यह वह दिलावर था, जिसने हक़ पर अपने रुतबा और दौलत को निसार कर दिया, जिसने दीन के लिए दुनिया को लात मार दी। ये हक़ पर जान देने-वाले हैं, जिन्होंने इस्लाम के नाम को रोशन किया है, और हमेशा रोशन रक्खेंगे। जा मुहम्मद के प्यारे, जन्नत तेरे लिए हाथ फैलाये हुए है। जा, और हयात अब्दी के लुत्फ़ उठा। मेरे नाना से कह दीजियो कि हुसैन भी जल्द ही तुम्हारी ख़िदमत में हाज़िर होनेवाला है, और तुम्हारे सारे कुनबे को साथ लिये हुए। क़ाबिल ताज़ीम हैं वे माताएँ, जो ऐसे बेटे पैदा करती हैं!

———

दूसरा दृश्य

[समर-भूमि। साद की तरफ़ से दो पहलवान आते हैं—यसार और सालिम।]

यसार—(ललकारकर) कौन निकलता है, हुर का साथ देने के लिए? चला आये, जिसे मौत का मज़ा चखना हो। हम वह हैं, जिनकी तलवार से क़ज़ा की रूह भी क़ज़ा होती है।

[अब्दुल्लाह कलवी हुसैन के लश्कर से निकलते हैं।]

यसार—तू कौन है?

अब्दुल्लाह—मैं अब्दुल्लाह बिन कमीर कलवी हूँ, जिसकी तलवार हमेशा बेदीनों के ख़ून की प्यासी रहती है।

यसार—तेरे मुक़ाबले में तलवार उठाते हमें शर्म आती है। जाकर हबीब या ज़हीर को भेज।

अब्दुल्ला—तू उन सरदाराने-फ़ौज से क्या लड़ेगा, जिनकी ज़िन्दगी ज़ियाद की ग़ुलामी में गुज़री। तुझे उन रईसों को ललकारते हुए शर्म भी नहीं आती। तुझ-जैसों के लिए मैं ही काफ़ी हूँ।

[यसार तलवार लेकर झपटता है। अब्दुल्लाह एक ही वार में उसका काम तमाम कर देते हैं। तब सालिम उन पर टूट पड़ता है। अब्दुल्लाह की पाँचों उँगलियाँ कट जाती हैं, तलवार ज़मीन पर गिर पड़ती है। वह बायें हाथ में नेज़ा ले लेते हैं, और सालिम के सीने में नेज़ा चुभा देते हैं। वह भी गिर पड़ता है। ज़ियाद की फ़ौज से निकलकर लोग अब्दुल्लाह को घेर लेते हैं। इधर से क़मर लकड़ी लेकर दौड़ती है।]

क़मर—मेरी जान तुम पर फ़िदा हो, रसूल के नेवासे के लिए लड़ते-लड़ते जान दे दो। मैं भी तुम्हारी मदद को आयी।

अब्दुल्लाह—नहीं-नहीं, क़मर, मेरे लिए तुम्हारी दुआ काफ़ी है; इधर मत आओ।

क़मर—मैं इन शैतानों को लकड़ी से मारकर गिरा दूँगी। एक के लिए दो भेजे, जब दोनों जहन्नुम पहुँच गये, तो सारी फ़ौज निकल पड़ी। कह कौन-सी ज़ंग है ?

अब्दुल्लाह—मैं एक ही हाथ से इन सबको मार गिराऊँगा। तुम खेमे में जाकर बैठो।

क़मर—मैं जब तक ज़िन्दा हूँ, तुम्हारा साथ न छोड़ूँगी। तुम्हारे साथ ही रसूल पाक की ख़िदमत में हाज़िर हूँगी।

हुसैन—(क़मर से) ऐ नेक ख़ातून, तुझ पर अल्लाह ताला रहम करे। तुम वहाँ जाओगी, तो यहाँ मस्तूरात की खबर कौन लेगा ? औरतों को ज़िहाद करना मना है। लौट आओ, और देखो तुम्हारा जाँबाज़ शौहर एक हाथ से कितने आदमियों का मुक़ाबला कर रहा है। आफ़रीं है तुम पर, मेरे शेर ! तुमने अपने रसूल की जो ख़िदमत की है, उसे हम कभी न भूलेंगे। खुदा तुम्हें उसकी जज़ा देगा। आह ! ज़ालिमों ने तीर मारकर ग़रीब को गिरा दिया ! खुदा उसे जन्नत दे।

क़मर—या हज़रत, इसका ग़म नहीं। वह आप पर निसार हो गये, इससे बेहतर और कौन-सी मौत हो सकती थी। काश मैं भी उनके साथ चली जाती। मेरे जाँबाज़! सच्चे दिलावर, जा, और जन्नत में आराम कर। तू वह था, जिसने कभी सायल को नहीं फेरा, जिसकी नीयत कभी ख़राब और निगाह कभी बुरी नहीं हुई। जा, और जन्नत में आराम कर।

हुसैन—क़मर सब्र करो कि इसके सिवा कोई चारा नहीं है।

क़मर—मुझे उनके मरने का ग़म नहीं है। मैं ख़ुश हूँ कि उन्होंने हक़ पर जान दी। इस वक़्त अगर मेरे सौ बेटे होते, तो मैं इसी तरह उन्हें भी आपके क़दमों पर निसार कर देती। काश वहब इतना ज़नपरस्त न होता....

[**वहब का प्रवेश।**]

वहब—अस्सलामअलेक या हज़रत हुसैन।

क़मर—(**वहब को गले लगाकर**) ज़रा देर पहले ही क्यों न आ गये बेटा कि अपने बाप का आख़िरी दीदार कर लेते। नसीमा कहाँ है?

वहब—यहीं ख़ेमों के पीछे खड़ी है।

क़मर—मैं अभी तुम्हारा ही ज़िक्र कर रही थी। क्यों बेटा, अपने बाप का नाम रोशन न करोगे? मेरा तुम्हारे ऊपर बड़ा हक़ है। तुम मेरे जिगर का ख़ून पीकर पले हो। मेरा दूध हलाल न करोगे? मेरी तमन्ना है कि हुसैन पर अपनी जान निसार करो, ताकि दुनिया में क़मर का नाम क़मर की तरह चमके, जिसका शौहर और बेटा, दोनों ही हक़ पर शहीद हुए।

वहब—अम्माजान, मेरी भी दिली तमन्ना यह थी और है। मैं अपने बाप के नाम को दाग़ नहीं लगाना चाहता, मगर नसीमा को क्या करूँ? उसकी मुसीबतों का ख़याल हिम्मत को पस्त कर देता है। जाता हूँ, अगर उसने इजाज़त दे दी, तो मेरे लिए इससे बढ़कर ख़ुशी नहीं हो सकती।

क़मर—बेटा, तुम उसकी आदत से वाक़िफ़ होकर फिर उसी से पूछने जाते हो। इसके मानी इसके सिवा और कुछ नहीं है कि तुम ख़ुद मैदान में जाते हुए डरते हो।

[**वहब नसीमा के पास जाता है।**]

नसीमा—काश ज़रा देर क़ब्ल आ जाते, तो अब्बाजान की आख़िरी दुआएँ मिल जातीं।

वहब—हमारी बदनसीबी !

नसीमा—मैं जानती हूँ, तुम हमेशा के लिए ख़ैरबाद कहने आये हो। जाओ प्यारे, और एक सपूत बेटे की तरह अपने वालिद का नाम रोशन करो। काश औरतों पर जिहाद हराम न होता, तो मैं भी तुम्हारे ही साथ अपने को हक़ की हिमायत में निसार कर देती। जब से मैंने फ़र्ज़न्दे-रसूल की पाक सूरत देखी है, मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरा दिल रोशन हो गया है, और उस रोशनी में ज़िन्दगी की तमन्नाएँ और ख्वाहिशें नज़र से मिटती जाती हैं। जाओ प्यारे, जाओ, और हक़ पर क़ुरबान हो जाओ। नसीमा जब तक जियेगी, तुम्हारे मज़ार पर फ़ातिहा और दरूद पढ़ेगी। जाओ, जन्नत में मुझे भूल न जाना। मैंने हवस के दाम में फँसकर तुम्हें फ़र्ज़ के रास्ते से हटा दिया था। रसूल पाक से कहना, मेरा गुनाह मुआफ़ करें। जाओ, इन आँसुओं का खयाल न करो, वरना ये आँसू तुम्हारे जोश को बुझा देंगे। मैं अभी बहुत दिन तक रोऊँगी, तुम इसका ग़म न करना। जाओ, तुम्हें खुदा को सौंपा—आह ! दिल फटा जाता है। कैसे सब्र करूँ ?

[**वहब आँसू पोंछता हुआ बाहर जाता है।**]

क़मर—(**अन्दर आकर**) बेटी, तुझे गले से लगा लूँ, और तुझ पर अपनी जान फ़िदा, तूने खानदान की आबरू रख ली।

नसीमा—अम्माजान, रसूल पाक ने अगर कोई बेइन्साफ़ी की, तो वह यही है कि औरतों पर ज़िहाद हराम कर दिया, वरना इस वक़्त मैं वहब के पहलू में होती। देखिए, दुश्मन उन पर चारों तरफ़ से कितनी बेदर्दी से नेज़े और तीर फेंक रहे हैं। किसी की हिम्मत नहीं है कि उनके सामने खम ठोककर आये। आह! देखिए, उनके हाथ कितनी तेज़ी से चल रहे हैं। जिस पर उनका एक हाथ पड़ जाता है, वह फिर नहीं उठता, दुश्मन भागे जाते हैं। हा बुज़दिलो, नामर्दो ! वह इधर चले आ रहे हैं, बदन खून से तर है, सिर पर भी ज़ख्म लगे हैं।

[**वहब आकर खेमे के सामने खड़ा हो जाता है।**]

वहब—अम्माजान, मुझसे राज़ी हुईं ?

क़मर—बेटा, तुझ पर हज़ार जान से निसार हूँ। तुमने बाप का नाम रोशन कर दिया, लेकिन मैं चाहती हूँ कि जब तक तेरे हाथों में ताक़त है, तब तक दुश्मनों को आराम न लेने दे।

वहब—(स्वगत) आह ! हक़ पर जान देना भी उतना आसान नहीं है, जितना लोग खयाल करते हैं। (प्रकट) अम्मा, यही मेरा भी इरादा है, लेकिन नसीमा के आँसुओं की याद मुझे खींच लायी।

[क़मर चली जाती है।]

नसीमा, तुम्हें आखिरी बार देखने की तमन्ना मैदान से खींच लायी। सनम का पुजारी सनम ही पर क़ुर्बान हो सकता है, दीन और ईमान, हक़ और इन्साफ़, ये सब उसकी नज़रों में खिलौने की तरह लगते हैं। मुहब्बत दुनिया की सबसे मज़बूत बेड़ी है, सबसे सख्त ज़ंजीर। (चौंककर) कोई पहलवान मैदान में आकर ललकार रहा है। हाय ! लानत हो उन पर, जो हक़ को पामाल करके हज़ारों को नामुराद मरने पर मजबूर करते हैं। नसीमा, हमेशा के लिए रुख़सत ! मेरी तरफ़ एक बार मुहब्बत की निगाहों से देख लो, उनमें मुहब्बत का ऐसा जाम हो कि उसका नशा मेरे सिर से क़यामत तक न उतरे।

नसीमा— मेरी जान, आह ! दिल निकला जाता है....।

[वहब मैदान की तरफ़ चला जाता है।]

खुदा ! काश मुझे मौत आ जाती कि यह दिलख़राश नज़्ज़ारा आँखों से न देखना पड़ता। मेरा जवान दिलेर जाँबाज़ शौहर मौत के मुँह में चला जा रहा है, और मैं बैठी देख रही हूँ ! ज़मीन, तू क्यों नहीं फट जाती कि मैं उसमें समा जाऊँ ! बिजली, आसमान से गिरकर क्यों मेरा खातमा नहीं कर देती ! वह देव उन पर तलवार लिये झपटा, या खुदा, मुझ नामुराद पर रहम कर। दूर हो ज़ालिम, सीधा जहन्नुम को चला जा। अब कोई आगे नहीं आता। वह मलऊन शिमर अपनी जमैयत लिये उनकी तरफ़ दौड़ा आता है। हाय ! ज़ालिमों ने घेर लिया। खुदा, तू यह बेइन्साफ़ी देख रहा है, और इन मूज़ियों पर अपना क़हर नहीं नाज़िल करता। एक के लिए एक

काफी है, फ़ौज भेज देना कौन-सा आईने-जंग है। हाय! हाय ख़ुदा, ग़ज़ब हो गया। अब नहीं देखा जाता—

[छाती पीटकर रोने लगती है। शिमर वहब का सिर काटकर फेंक देता है, क़मर दौड़कर सिर को गोद में उठा लेती है, और उसे आँखों से लगाती है।]

क़मर—मेरे सपूत बेटे, मुबारक है यह घड़ी कि मैं तुझे अपनी आँखों से हक़ पर शहीद होते देख रही हूँ। आज तू मेरे क़र्ज से अदा हो गया, आज मेरी मुराद पूरी हुई, आज मेरी ज़िन्दगी सफल हो गयी, मैं अपनी सारी तकलीफ का सिला पा गयी। खुदा तुझे शहीदों के पहलू में जगह दे। नसीमा, मेरी जान, आज तूने सच्चा सोहाग पाया है, जो क़यामत तक तुझे सुहागिन बनाये रखेगा। अब हूरें तेरे तलुओं तले आँखें बिछायेंगी, और फ़रिश्ते तेरे क़दमों की खाक का सुरमा बनायेंगे।

[वहब का सिर नसीमा की गोद में रख देती है, नसीमा सिर को गोद में रखे हुए बैन करके रोती है।]

काजल बना-बनाके तेरी ख़ाके-दर को मैं,
रोशन करूँगी अपनी सवादे-नज़र को मैं।
आँसू भी खुश्क हो गये, अल्लाह रे सोज़े-ग़म,
क्योंकर बुझाऊँ आतिशे-दाग़े-ज़िगर को मैं।
तेरे सिवा है कौन, जो बेकस की ले ख़बर,
आती न तेरे दर पर, तो जाती किधर को मैं?
तलवार कह रही है जवानाने-क़ौम से—
मुद्दत से ढूँढ़ती हूँ तुम्हारी क़मर को मैं।
बाज़ आयी मैं दुआ ही से, यारब कि कब तलक,
करती फिरूँ तलाश जहाँ में असर को मैं।
गर तेरी ख़ाके-दर से न मिलता यह इफ़्तख़ार,
करती न यों बुलन्द कभी अपने सिर को मैं।

हाय प्यारे! तुम कितने बेवफ़ा हो, मुझे अकेले छोड़कर चले जाते हो! लो, मैं भी आती हूँ! इतनी जल्दी नहीं, ज़रा ठहरो।

[साहसराय का प्रवेश ।]

साहसराय—सती, तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

नसीमा—साहब, आप ख़ूब आये। आपका शुक्रिया तहे-दिल से शुक्रिया ! आपने ही मुझे आज इस दरजे पर पहुँचाया। आपके वतन में औरतें अपने शौहरों के बाद जिन्दा नहीं रहतीं। वे बड़ी खुशनसीब होती हैं।

साहस०—सती, हम लोगों को आशीर्वाद दो।

नसीमा—(हँसकर) यह दरजा! अल्लाह रे मैं, यह वहब की बदौलत, उसकी शहादत के तुफैल, खुदा, तुझसे मेरी दुआ है, मेरी क़ौम में कभी शहीदों की कमी न रहे, कभी वह दिन न आये कि हक़ को जाँबाजों की ज़रूरत हो, और उस पर सिर कटानेवाले न मिलें। इस्लाम, मेरा प्यारा इस्लाम शहीदों से सदा मालामाल रहे ! (अपने दामन से एक सलाई निकालकर वहब के खून में डुबाती है) क्यों साहसराय, तुम्हारे यहाँ सती के जिस्म से आग निकलती है, और वह उसमें जल जाती है। क्या बिला आग के जान नहीं निकलती ?

साहस०—नसीमा, तू देवी है। ऐसी देवियों के दर्शन दुर्लभ होते हैं। आकाश के देवता तुझ पर पुष्प-वर्षा कर रहे हैं।

[नसीमा आँखों में सलाई फेर लेती है, और एक आह के साथ उसकी जान निकल जाती है।]

तीसरा दृश्य

[दोपहर का समय । हज़रत हुसैन अब्बास के साथ ख़ेमे के दरवाज़े पर खड़े मैदाने-जंग की तरफ़ ताक रहे हैं।]

हुसैन—कैसे-कैसे जाँबाज़ दोस्त रुख़सत हो गये, और होते जा रहे हैं। प्यास से कलेजे मुँह को आ रहे हैं, और ये ज़ालिम नमाज़ तक की मुहलत नहीं देते। आह ! ज़हीर का-सा दीनदार उठ गया, मुस्लिम बिन ऊसजा

इस आलमेतईफ़ी में भी कितने जोश से लड़े। किस-किसका नाम गिनाऊँ?

अब्बास—या हज़रत, मुझे अंदेशा हो रहा है कि शिमर कोई नया सितम ढाने की तैयारियाँ कर रहा है। यह देखिए, वह सिपाहियों की एक बड़ी जमैयत लिये इधर चला आता है।

हबीब—(ज़ोर से) शिमर! खबरदार, अगर इधर एक क़दम बढ़ाया, तो तेरी लाश पर कुत्ते रोवेंगे। तुझे शर्म नहीं आती ज़ालिम कि अहलेबैत के खेमों पर हमला करना चाहता है।

शिमर—हम इस हमले से जंग का फ़ैसला कर देना चाहते हैं। जवानो, तीर बरसाओ।

हुसैन—अफ़सोस, घोड़े मरे जा रहे हैं! घुटने टेककर बैठ जाओ, और तीरों का जवाब दो। खुदा ही हमारा वाली और हाफ़िज़ है।

शिमर—बढ़ो-बढ़ो, एक आन में फ़ैसला हुआ जाता है।

सिपाही—देखते नहीं हो, हमारी सफ़ें खाली होती जाती हैं? यह तीर है, या खुदा का ग़ज़ब। हम आदमियों से लड़ने आये हैं, देवों से नहीं।

शिमर—लकड़ियाँ जलाओ, फ़ौरन् इन खेमों पर आग के अंगारे फेंको, जलते हुए कुंदे फेंको, जलाकर खाक स्याह कर दो।

[**आग की बारिश होने लगती है। औरतें खेमे से चिल्लाती हुई बाहर निकल आती हैं।**]

जैनब—तुफ् है तुझ पर ज़ालिम, मर्दों से नहीं, औरतों पर अपनी दिलेरी दिखाता है।

हुसैन—साद! यह क्या सितम है? तुम लोगों का दुश्मन मैं हूँ। मुझसे लड़ो, खेमों में औरतों और बच्चों के सिवा कोई मर्द नहीं है। वे ग़रीब निकलकर भाग न सकीं, तो हम उधर चले जायँगे, तुमसे लड़ न सकेंगे। अफ़सोस है कि इतनी जमैयत के होते हुए भी तुम यह बिदअतें कर रहे हो।

शिमर—फेंको अँगारे। मुझे दोज़ख़ में जलना नसीब हो, अगर मैं इन सब खेमों को जला न डालूँ।

शीस—शिमर, यह तुम्हारी हरकत आईने-जंग के खिलाफ़ है। हिसाब

के दिन तुम्हीं इसके ज़िम्मेदार होगे।

कीस—रोको अपने आदमियों को।

शिमर—मैं अपने फ़ैल का मुख़तार हूँ। आग बरसाओ, लगा दो आग।

शीस—साद, ख़ुदा को क्या मुँह दिखाओगे?

हबीब—दोस्त, टूट पड़ो शिमर पर, बाज की तरह टूट पड़ो। नामूसे-हुसैन पर निसार हो जाओ। एकबारगी नेजों का वार करो।

[**हबीब और उनके साथ दस आदमी नेज़े लेकर शिमर पर टूट पड़ते हैं। शिमर भागता है, और उसकी फ़ौज भी भाग जाती है।**]

हुसैन—हबीब, तुमने आज अहलेबैत की आबरू रख ली। ख़ुदा तुम्हें इसकी जज़ा दे।

हबीब—या मौला, दुश्मन दो-चार लहमों के लिए हट गया है, नमाज़ का वक़्त आ गया है, हमारी तमन्ना है कि आपके साथ आख़िरी नमाज़ पढ़ लें। शायद फिर यह मौक़ा न मिले।

हुसैन—ख़ुदा तुम पर रहम करे, अजान दो। ऐ साद, क्या तू इस्लाम की शरियत को भी भूल गया? क्या इतनी मुहलत न देगा कि नमाज़ पढ़ कर जंग की जाय?

शिमर—ख़ुदा पाक की क़सम, हर्गिज नहीं। तुम बेनमाज़ क़त्ल किये जाओगे। शरियत बाग़ियों के लिए नहीं है।

हबीब—या मौला, आप नमाज अदा फ़रमायें, इस मूज़ी को बकने दें। इसकी इतनी मजाल नहीं है कि नमाज में मुख़िल हो।

[**लोग नमाज पढ़ने लगते हैं। साहसराय और उनके सातो भाई हुसैन की पुश्त पर खड़े शिमर के तीरों से उनको बचाते रहते हैं। नमाज़ ख़त्म हो जाती है।**]

हुसैन—दोस्तो, मेरे प्यारे ग़मगुसारो, यह नमाज़ इस्लाम की तारीख़ मे यादगार रहेगी। अगर ख़ुदा के इन दिलेर बन्दों ने, हमारे पुश्त पर खड़े होकर, हमें दुश्मनों के तीरों से न बचाया होता, तो हमारी नमाज़ हर्गिज़ न पूरी होती। ऐ हक़परस्तो, हम तुम्हें सलाम करते हैं। अगर्चे तुम मोमिन नहीं हो, लेकिन जिस मजहब के पैरों ऐसे हक़परवर, ऐसे इन्साफ़ पर जान

देनेवाले, ज़िन्दगी को इस तरह नाचीज़ समझनेवाले, मजलूमों की हिमायत में सिर कटानेवाले हों, वह सच्चा और मिनजानिब ख़ुदा है। वह मज़हब दुनिया में हमेशा क़ायम रहे, और नूरे-इस्लाम के साथ उसकी रोशनी भी चारो तरफ़ फैले।

साहसराय—भगवन्, आपने हमारे प्रति जो शुभेच्छाएँ प्रकट की हैं, उनके लिए हम आपके कृतज्ञ हैं। मेरी भी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि जब कभी इस्लाम को हमारे रक्त की आवश्यकता हो, तो हमारी जाति में अपना वक्ष खोल देनेवालों की कमी न रहे। अब मुझे आज्ञा हो कि चलकर अपने प्रायश्चित की क्रिया पूरी करूँ।

हुसैन—नहीं, मेरे दोस्तो, जब तक हम बाक़ी हैं, अपने मेहमानों को मैदान में न जाने देंगे।

साहस०—हज़रत, हम आपके मेहमान नहीं, सेवक हैं। सत्य और न्याय पर मरना ही हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य है। यह हमारा कर्तव्य-मात्र है, किसी पर एहसान नहीं।

हुसैन—आह! किस मुँह से कहूँ कि जाइए। ख़ुदा करे, इस मैदान में हमारे और आपके ख़ून से जिस इमारत की बुनियाद पड़ी है, वह ज़माने की नज़र से हमेशा महफ़ूज़ रहे, वह कभी वीरान न हो, उसमें से हमेशा नग़मे की सदाएँ बुलन्द हों, और आफ़ताब की किरणें हमेशा उस पर चमकती रहें।

[सातों भाई गाते हुए मैदान में जाते हैं।]

जय भारत, जय भारत, जय मम प्राणपते!
भाल विशाल चमत्कृत सित हिमगिरि राजै,
परसत बाल प्रभाकर हेम प्रभा भ्राजै। जय भारत....
ऋषि-मुनि पुण्य तपोनिधि तेज-पुंजधारी,
सब विधि अधम अविद्या भव-भय-तमहारी। जय भारत....
जय जय वेद चतुर्मुख अखिल भेद-ज्ञाता,
सुविमल शांति सुधा-निधि मुद-मंगलदाता। जय भारत....

जय जय विश्व-विदांवर जय विश्रुतनामी,
जय जय धर्म-धुरंधर जय श्रुति-पथगामी। जय भारत....
अजित अजेय अलौकिक अतुलित बलधामा,
पूरन प्रेम-पयोनिधि शुभ गुन-गन-ग्रामा। जय भारत....
हे प्रिय पूज्य परम मन नमो-नमो देवा,
बिनवत अधम पापि जन ग्रहन करहु सेवा। जय भारत....

अब्बास—ग़जब के जाँबाज हैं। अब मुझ पर यह हक़ीक़त ख़ुली कि इस्लाम के दायरे के बाहर भी इस्लाम है। ये सचमुच मुसलमान हैं, और रसूल पाक ऐसे आदमियों की शफ़ाअत न करें, मुमकिन नहीं।

हुसैन—कितनी दिलेरी से लड़ रहे हैं!

अब्बास—फौज में बेखौफ घुसे जाते हैं। ऐसी बेजिगरी से किसी को मौत के मुँह में जाते नहीं देखा।

अली अकबर—ऐसे पाँच सौ आदमी भी हमारे साथ होते, तो मैदान हमारा था।

हुसैन—आह! वह साहसराय घोड़े से गिरे। मक्कार शिमर ने पीछे से वार किया। इस्लाम को बदनाम करनेवाला, मूज़ी!

अब्बास—वह दूसरा भाई भी गिरा।

हुसैन—इनके रिवाज के मुताबिक लाशों को जलाना होगा। चिता तैयार कराओ।

अली अक०—तीसरा भाई भी मारा गया।

अब्बास—ज़ालिमों ने चारों तरफ़ से घेर लिया, मगर किस ग़ज़ब के तीरन्दाज़ हैं। तीर से शोला-सा निकलता है।

अली अक०—अल्लाह, उनके तीरों से आग निकल रही है। कोहराम मच गया, सारी जमैयत परेशान होकर भागी जा रही है।

अब्बास—चारों सूरमा दुश्मन के ख़ेमों की तरफ़ जा रहे हैं। फ़ौज काई की तरह फटती जाती है। वह ख़ेमों से शोले निकलने लगे!

अली अक०—या खुदा, चारों देखते-देखते ग़ायब हो गये।

हुसैन—शायद उनके सामने कोई खंदक़ खोदी गयी है।

अब्बास—जी हाँ, यही मेरा भी ख़याल है।

हुसैन—चिताएँ तैयार कराओ। अगर फ़रेब न किया जाता, तो ये सारी फ़ौज को ख़ाक कर देते। तीर हैं या मोजज़ा।

अब्बास—ख़ुदा के ऐसे बन्दे भी हैं, जो बिला ग़रज़ हक़ पर सिर कटाते हैं।

हुसैन—ये उस पाक मुल्क के रहनेवाले हैं, जहाँ सबसे पहले तौहीद की सदा उठी थी! ख़ुदा से मेरी दुआ है कि इन्हें शहीदों में ऊँचा रुतबा दे। वह चिता में शोले उठे! ऐ ख़ुदा, यह सोज़ इस्लाम के दिल से कभी न मिटे, इस क़ौम के लिए हमारे दिलेर हमेशा अपना ख़ून बहाते रहें, यह बीज, जो आज आग में बोया गया है, क़यामत तक फलता रहे।

चौथा दृश्य

[जैनब अपने ख़ेमे में बैठी हुई है। शाम का वक़्त।]

जैनब—(स्वगत) अब्बास और अली अकबर के सिवा अब भैया के कोई रफ़ीक़ बाक़ी नहीं रहा। सब लोग उन पर निसार हो गये। हाय, क़ासिम-सा जवान, मुस्लिम के बेटे, अब्बास के भाई, भैया इमाम हसन के चारों बेटे, सब दाग़ दिये गये। देखते-देखते हरा-भरा बाग़ वीरान हो गया, गुलज़ार बस्ती उजड़ गयी। सभी माताओं के कलेजे ठंडे हुए।।बापों के दिल बाग़-बाग़ हुए। मैं ही बदनसीब नामुराद रह गयी। ख़ुदा ने मुझे भी दो बेटे दिये हैं, पर जब वे काम ही न आयें, तो उनको देखकर जिगर क्या ठंडा हो। इससे तो यही बेहतर होता कि मैं बाँझ ही रहती। तब यह बेवफ़ाई का दाग़ तो माथे पर न लगता। हुसैन ने इन लड़कों को अपने लड़के की तरह समझा, लड़कों की तरह पाला, पर वे इस मुसीबत में, तारीकी में, साए की तरह साथ छोड़े देते हैं, दग़ा कर रहे हैं। हाँ, यह दग़ा नहीं तो और क्या है? आख़िर भैया अपने दिल में क्या समझ रहे होंगे। कहीं यह ख़याल न करते हों कि मैंने ही उन्हें मैदान में जाने से मना कर दिया है। यह ख़याल

न पैदा हो कि मैं उनके साथ अपनी ग़रज़ निकालने के लिए ज़मानासाज़ी कर रही थी। आह! उन्हें क्योंकर अपना दिल खोलकर दिखा दूँ कि वह उनके लिए कितना बेक़रार है। पर अपने लड़कों पर क़ाबू नहीं। जाओ, जैसे तुमने मेरे मुँह में कालिख लगायी है, मैं भी तुम्हें दूध न बख्शूँगी। ये इतने कमहिम्मत कैसे हो गये? जिनका नाना रण में तूफ़ान पैदा कर देता था, जिनके बाप की ललकार सुनकर दुश्मनों के कलेजे दहल जाते थे, वे ही लड़के इतने बोदे, पस्तहिम्मत हों। यह मेरी तक़दीर की खराबी है, और क्या! जब रण में जाना ही नहीं, तो वे हथियार से सजकर क्यों मुझे जलाते हैं। भैया को कौन मुँह दिखाऊँगी, उनके सामने आँखें कैसे उठाऊँगी!

[दोनों लड़कों का प्रवेश।]

औन—अम्माजान, आप हमारा फ़ैसला कर दीजिए। मैं पहले रण में जाता हूँ, पर यह मुझे जाने नहीं देता, कहता है, पहले मैं जाऊँगा। सुबह से यही बहस छिड़ी हुई है, किसी तरह छोड़ता ही नहीं। बताओ, बड़े भाई के होते हुए छोटा भाई शहीद हो, यह कहाँ का इन्साफ़ है?

मुहम्मद—तो अम्माजान, यह कहाँ का इन्साफ़ है कि बड़ा भाई तो मरने जाय, और छोटा भाई बैठे उसकी लाश पर मातम करे। अम्मा, आप चाहे खुश हों या नाराज़, यह तो मुझसे न होगा। शायद इनका यह खयाल हो कि मैं जंग के क़ाबिल नहीं हूँ। छोटा हूँ, क्या जवाब दूँ, लेकिन खुदा चाहेगा, तो—

एक हमले में गर हम न उलट दें सफ़े-लश्कर,
फिर दूध न अपना हमें तुम बख़्शियो मादर!
शह के क़दमे-पाक पै सिर देके फिरेंगे,
या रण से सिरे-शिम्रोउमर लेके फिरेंगे।

अम्माजान, आप न मेरी खातिर कीजिए न इनकी, इन्साफ़ से फ़रमाइए, पहले किसको जाने का हक़ है?

जैनब—अच्छा, तुम लोगों के रण में न जाने का यह मतलब था! मैं कुछ और समझ रही थी। प्यारो, तुम्हारी माँ ने तुम्हारी दिलेरी पर शक किया, इसे माफ़ करो। मालूम नहीं, मुझे क्या हो गया था कि मेरे दिल में

तुम्हारी तरफ़ से ऐसे वसवसे पैदा हुए। लो, मैं झगड़ा चुकाये देती हूँ। तुम दोनों खुदा का नाम लेकर साथ-साथ सिधारो, और दिखा दो कि तुम किसी से शब्बीर की उलफ़त में कम नहीं हो। मेरी और मेरे खानदान की आबरू तुम्हारे हाथ है।

शेरों के लिए नंग है तलवार से डरना,
मैदान में तन-तनके सिपर सीनों को करना।
हर ज़ख्म पै दम उलफ़ते-शब्बीर का भरना,
क़ुरबान गयी जीने से, बेहतर है यह मरना।
दुनिया में भला इज़्ज़ते-इस्लाम तो रह जाय,
तुम जीते रहो, या न रहो, नाम तो रह जाय।
नाना की तरह कौन वग़ा करता है देखूँ?
सिर कौन हज़ारों के जुदा करता है देखूँ?
हक़ कौन बहुत माँ का अदा करता है देखूँ!
एक-एक सफ़े-जंग में क्या करता है देखूँ?
दिखलाइयो हाथों से सफ़ाई का तमाशा,
मैं परदे से देखूँगी लड़ाई का तमाशा।

यह तो मैं जानती हूँ कि तुम नाम करोगे, पर कमसिन बहुत हो, इसलिए समझाती हूँ। जाओ, तुम्हें खुदा को सौंपा।

[**दोनो मैदान की तरफ़ जाकर लड़ते हैं, और जैनब परदे की आड़ से देखती है। शहरबानू का प्रवेश।**]

शहरबानू—है-है, बहन, यह तुमने क्या सितम किया ! इन नन्हें-नन्हें बच्चों को रण में झोंक दिया। अभी तो अली अकबर बैठा ही हुआ है, अब्बास मौजूद ही है, ऐसी क्या जल्दी पड़ी थी ?

जैनब—वे किसी के रोके रुकते थे ! कल ही से हथियार सजे मुंतज़िर बैठे थे। रात-भर तलवारें साफ की गयी हैं। और, यहाँ आये ही किस लिए थे। ज़िन्दगी बाक़ी है, तो दोनो फिर आयेंगे। मर जाने का ग़म नहीं, आखिर किस दिन काम आते। जिहाद में छोटे-बड़े की तमीज़ नहीं रहती। मैं रसूल पाक को कौन मुँह दिखाती ?

शहरबानू—देखो, हाय-हाय, दोनो को दुश्मनों ने किस तरह घेर रखा है। कोई जाकर बेचारों को फेर भी नहीं लेता। शब्बीर भी बैठे तमाशा देख रहे हैं, यह नहीं कि किसी को भेज दें। हैं तो ज़रा-ज़रा से, पर कैसे मछलियों की तरह चमकते फिरते हैं! खैर, अच्छा हुआ, अब्बास दौड़े जा रहे हैं।

[अब्बास का मैदान की तरफ़ दौड़े हुए आना।]

जैनब—(खेमे से निकलकर) अब्बास, तुम्हें रसूल पाक की क़सम है, जो उन्हें लौटाने जाओ। हाँ, उनका दिल बढ़ाते जाओ। क्या मुझे शहादत के सवाब में कुछ भी देने का इरादा नहीं है? भैया तो इतने खुद-ग़रज़ कभी न थे!

[दोनों भाई मारे जाते हैं। हुसैन और अब्बास उनकी लाश उठाने जाते हैं, और जैनब एक आह भरकर बेहोश हो जाती।]

पाँचवाँ दृश्य

[१२ बजे रात का समय। लड़ाई ज़रा देर के लिए बन्द है। दुश्मन की फ़ौज ग़ाफ़िल है। दरिया का किनारा। अब्बास हाथों में मशक लिये दरिया के किनारे खड़े हैं।]

अब्बास—(दिल में) हम दरिया से इतने क़रीब हैं। इतनी ही दूर पर यह दरिया मौजें मार रहा है, पर हम पानी के एक-एक बूँद को तरसते हैं। दो दिन से किसी के मुँह में पानी का क़तरा नहीं गया, बच्चे वग़ैरह पानी के लिए बिलबिला रहे हैं, औरतों के लब खुश्क हुए जाते हैं, खुद हज़रत हुसैन का बुरा हाल हो रहा है। मगर कोई अपनी तकलीफ़ किसी से नहीं कहता। बेचारी सकीना तड़प रही थी। काश ये ज़ालिम इसी तरह ग़ाफ़िल पड़े रहते, और मैं मशक लिये हुए बचकर निकल जाता! जी चाहता है, दरिया-का-दरिया पी जाऊँ, पर गैरत गवारा नहीं करती कि घर के सब आदमी तो प्यासों मर रहे हों, और मैं यहाँ अपनी प्यास बुझाऊँ। घोड़े ने भी पानी में मुँह नहीं डाला। वफ़ादार जानवर! तू हैवान होकर इतना गैरतमंद है, मैं इन्सान होकर बेग़ैरत हो जाऊँ।

[दरिया से पानी लेकर घाट पर चढ़ते हैं ।]

एक सिपाही—यह कौन पानी लिये जाता है ?

अब्बास—(खामोश)

कई आदमी—क्या कोई पानी ले रहा है ? कौन है ? खड़ा रह ।

[कई सिपाही अब्बास को घेर लेते हैं ।]

एक—यह तो हुसैन के लश्कर का आदमी है—क्यों जी, तुम्हारा क्या नाम है ?

अब्बास—मैं हज़रत हुसैन का भाई अब्बास हूँ ।

कई आदमी—छीन लो मशक ।

अब्बास—इतना आसान न समझो । एक-एक बूँद पानी के लिए एक-एक सिर देना पड़ेगा । पानी इतना महँगा कभी न बिका होगा ।

[अब्बास तलवार खींचकर दुश्मनों पर झपट पड़ते हैं, और उनके घेरे से निकल जाने की कोशिश करते हैं । शिमर दौड़ा हुआ आता है ।]

शिमर—खबरदार, खबरदार, चारों तरफ़ से घेर लो, मशक में नेज़े मारो, मशक में ।

अब्बास—अरे ज़ालिम, बेदर्द ! तू मुसलमान होकर नबी की औलाद पर इतनी सख्तियाँ कर रहा है । बच्चे प्यासों तड़प रहे हैं, हज़रत हुसैन का बुरा हाल हो रहा है, और तुझे ज़रा भी दर्द नहीं आता ।

शिमर—खलीफ़ा से बग़ावत करनेवाला मुसलमान मुसलमान नहीं, और न उसके साथ कोई रियायत की जा सकती है । दिलेरो, बस जंग का इसी दम खातमा है । अब्बास का लिया, फिर वहाँ हुसैन के सिवा और कोई बाक़ी न रहेगा ।

[सिपाही अब्बास पर नेज़े चलाते हैं, और अब्बास नेज़ों को तलवार से काट देते हैं । साद का प्रवेश ।]

साद—ठहरो-ठहरो ! दुश्मन को दोस्त बना लेने में जितना फ़ायदा है, उतना क़त्ल करने में नहीं । अब्बास, मैं आपसे कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ । एक दम के लिए तलवार रोक दीजिए । तनी हुई तलवार मसालहत की ज़बान बन्द कर देती है ।

अब्बास—मसालहत की गुफ़्तगू अगर करनी है, तो हज़रत हुसैन के पास क्यों नहीं जाते। हालाँकि अब वह कुछ न सुनेंगे। दो भाँजे, दो भतीजे मारे जा चुके, कितने ही अहबाब शहीद हो चुके, वह खुद ज़िन्दगी से बेज़ार हैं, मरने पर कमर बाँध चुके हैं।

साद—तो ऐसी हालत में आपको अपनी जान की और भी क़द्र करनी चाहिए। दुनिया मे अली की कोई निशानी तो रहे। खानदान का नाम तो न मिटे।

अब्बास—भाई के बाद जीना बेकार है।

साद—माबेन लहद साथ बिरादर नहीं जाता,
भाई कोई भाई के लिए मर नहीं जाता।

अब्बास—भाई के लिए जी से गुज़र जाता है भाई,
जाता है बिरादर भी, जिधर जाता है भाई।
क्या भाई हो तेग़ों में, तो डर जाता है भाई?
आँच आती है भाई पै, तो मर जाता है भाई।

साद—आपसे तो खलीफ़ा को कोई दुश्मनी नहीं, आप उनकी बैयत क़बूल कर लें, तो आपकी हर तरह भलाई होगी। आप जो रुतबा चाहेंगे, वह आपको मिल जायगा, और आप हज़रत अली के जाँनशीन समझे जायँगे।

अब्बास—जब हुसैन-जैसे सुलहपसन्द आदमी ने—जिसने कभी गुस्से को पास नहीं आने दिया, जिसने जंग पर कभी सबक़त नहीं की, जिसने आज भी मुझसे ताकीद कर दी कि राह न मिले, तो दरिया पर न जाना—तुम्हारी बात नहीं मानी, तो मैं, जो इन औसाफ़ में से एक भी नहीं रखता, क्योंकर तुम्हारी बातें मानूँगा।

साद—तुम्हें अख्तियार है।

शिमर—टूट पड़ो, टूट पड़ो!

[एक सिपाही पीछे से आकर एक तलवार मारता है, जिससे अब्बास का दाहिना हाथ कट जाता है। अब्बास बाये हाथ में तलवार ले लेते हैं।]

शिमर—अभी एक हाथ बाक़ी है, जा उसे गिरा दे, उसे एक लाख दीनार इनाम मिलेगा।

[चारों तरफ़ से ज़ख्मी सिपाहियों की आहें सुनायी दे रही हैं। अब्बास सफ़ों को चीरते, सिपाहियों को गिराते हुसैन के खेमे के सामने पहुँच जाते हैं। इतने में एक सिपाही तलवार से उनका बायाँ हाथ भी गिरा देता है। शिमर उनकी छाती में भाला चुभा देता है। अब्बास मशक को दाँतों से पकड़ लेते हैं। तब सिर पर एक गुर्ज पड़ता है, और अब्बास घोड़े से गिर पड़ते हैं।]

अब्बास—(चिल्लाकर) भैया, तुम्हारा ग़ुलाम अब जाता है—उसका आखिरी सलाम क़बूल करो।

[हुसैन खेमे से बाहर निकल दौड़ते हुए आते हैं, और अब्बास के पास पहुँचकर उन्हें गोद में उठा लेते हैं।]

हुसैन—आह! मेरे प्यारे भाई, मेरे क़ूवते-बाज़ू, तुम्हारी मौत ने कमर तोड़ दी। हाय! अब कोई सहारा नहीं रहा। तुम्हें अपने पहलू में देखते हुए मुझे वह भरोसा होता था, जो बच्चे को अपनी माँ की गोद में होता है। तुम मेरे पुश्तेपनाह थे। हाय! अब किसे देखकर दिल को ढाढ़स होगा। आह! अगर तुम्हें इतनी जल्द रुख़सत होना था, तो पहले मुझी को क्यों न मर जाने दिया? आह! अब तक मैंने तुम्हें इस तरह बचाया था, जैसे कोई आँधी में चिराग़ को बचाता है। पर क़ज़ा से कुछ बस न चला। हाय! मैं खुद क्यों न पानी लेने गया? हाय, अब खैर, भैया, इतनी तस्कीन है कि फिर हमसे-तुमसे जल्द मुलाक़ात होगी, और फिर हम क़यामत तक न जुदा होंगे।

छठा दृश्य

[दोपहर का समय। हुसैन अपने खेमे में खड़े हैं, जैनब, कुलसूम, सकीना, शहरबानू, सब उन्हें घेरे हुए हैं।]

हुसैन—जैनब, अब्बास के बाद अली अकबर से दिल को तस्कीन देता

था। अब किसे देखकर दिल को ढाढ़स दूँ? हाय! मेरा जवान बेटा प्यासों तड़प-तड़पकर मर गया! किस शान से मैदान की तरफ़ गया था। कितना हँसमुख, कितना हिम्मत का धनी! जैनब, मैंने उसे कभी उदास नहीं देखा, हमेशा मुस्कराता रहता था। ऐ आँखो! अगर रोयीं, तो तुम्हें निकालकर फेंक दूँगा। खुदा की मर्ज़ी में रोना कैसा। मालूम होता है, सारी क़ुदरत मुझे तबाह करने पर तुली हुई है। यह धूप कि उसकी तरफ़ ताकने ही से आँखें जलने लगती हैं। यह जलता हुआ बालू, ये लू के झुलसानेवाले झोंके, और यह प्यास! यों ज़िन्दा जलना तीरों और भालों के ज़ख्मों से कहीं ज़्यादा सख्त है।

[अली असग़र आता है, और बेहोश होकर गिर पड़ता है।]

शहरबानू—हाय, मेरे बच्चे को क्या हुआ!

हुसैन—(असग़र को गोद में उठाकर) आह! यह फूल पानी के बग़ैर मुर्झाया जा रहा है। खुदा, इस रंज में अगर मेरी ज़बान से तेरी शान में कोई बेअदबी हो जाय, तो माफ़ कीजियो, मैं अपने होश में नहीं हूँ। एक कटोरे पानी के लिए इस वक्त मैं जन्नत से हाथ धोने को तैयार हूँ। (असग़र को गोद में लिये ख़ेमे से बाहर आकर) ऐ ज़ालिम क़ौम, अगर तुम्हारे खयाल में मैं गुनहगार हूँ, तो इस बच्चे ने तो कोई ख़ता नहीं की है, इसे एक घूँट पानी पिला दो। मैं तुम्हारे नबी का नेवासा हूँ, अगर इसमें तुम्हें शक है, तो काबा का बेकस मुसाफ़िर तो हूँ। इसमें भी अगर तुम्हें ताम्मुल हो, तो मुसलमान तो हूँ। यह भी नहीं, तो अल्लाह का एक नाचीज़ बंदा तो हूँ। क्या मेरे मरते हुए बच्चे पर तुम्हें इतना रहम भी नहीं आता?

मैं यह नहीं कहता हूँ कि पानी मुझे ला दो,
तुम आनके चिल्लू से इसे आब पिला दो।
मरता है यह मरते हुए बच्चे को जिला दो,
लिल्लाह, कलेजे की मेरी आग बुझा दो।
जब मुँह मेरा तकता है यह हसरत की नज़र से,
ऐ ज़ालिमो, उठता है धुआँ मेरे ज़िगर से।

[शिमर एक तीर मारता है, जो असग़र के गले को छेदता हुआ हुसैन के बाज़ू में चुभ जाता है। हुसैन जल्दी से तीर को निकालते हैं, और तीर निकलते ही असग़र की जान निकल जाती है। हुसैन असग़र को लिये फिर खेमे में आते हैं।]

शहरबानू—हाय मेरा फूल-सा बच्चा !

हुसैन—हमेशा के लिए इसकी प्यास बुझ गयी। (ख़ून से चिल्लू भर-कर आसमान की तरफ़ उछालते हुए) इन सब आफ़तों का गवाह ख़ुदा है। अब कौन है, जो ज़ालिमों से इस ख़ून का बदला ले ?

[सज्जाद चारपाई से उठकर, लड़खड़ाते हुए, मैदान की तरफ़ चलते हैं।]

जैनब—अरे बेटा, तुममें तो खड़े होने की भी ताब नहीं, महीनों से आँखें नहीं खोलीं, तुम कहाँ जाते हो ?

सज्जाद—बिस्तर पर मरने से मैदान में मरना अच्छा है। जब सब जन्नत पहुँच चुके, तो मैं यहाँ क्यों पड़ा रहूँ ?

हुसैन—बेटा, खुदा के लिए बाप के ऊपर रहम करो, वापस आओ। रसूल की तुम्हीं एक निशानी हो। तुम्हारे ही ऊपर औरतों की हिफ़ाज़त का बार है। आह ! और कौन है, जो इस फ़र्ज़ को अदा करे ! तुम्हीं मेरे जाँन-शीन हो, इन सबको तुम्हारे हवाले करता हूँ। ख़ुदा हाफ़िज़ ! ऐ जैनब, ऐ कुलसुम, ऐ सकीना, तुम लोगों पर मेरा सलाम हो कि यह आख़िरी मुला-क़ात है।

[जैनब रोती हुई हुसैन से लिपट जाती है।]

सकीना—अब किसका मुँह देखकर जिऊँगी ?

हुसैन—जैनब !

मरकर भी न भूलूँगा मैं एहसान तुम्हारे ;
बेटों को भला कौन बहन भाई पै वारे।
प्यार न किया उनको, जो थे जान से प्यारे,
बस, मा की मुहब्बत के ये अंदाज़ हैं सारे।
फ़ाक़े में हमें बर्छियाँ खाने की रज़ा दो ;
बस, अब यही उल्फ़त है कि जाने की रज़ा दो।

हमशीर का ग़म है किसी भाई को गवारा ?
मजबूर है, लेकिन असद अल्लाह का प्यारा।
रंज और मुसीबत से कलेजा है दो पारा;
किससे कहूँ, जैसा मुझे सदमा है तुम्हारा।
इस घर की तबाही के लिए रोता है शब्बीर;
तुम छुटती नहीं मा से जुदा होता है शब्बीर।

[हाथ उठाकर दुआ करते हैं।]

या रब, है यह सादात का घर तेरे हवाले;
राँड़ हैं कई ख़स्ता जिगर तेरे हवाले।
बेकस का है बीमार, पिसर तेरे हवाले;
सब हैं मेरे दरिया के गुहर तेरे हवाले।

[मैदान की तरफ़ जाते हैं।]

शिमर—(फ़ौज से) खबरदार, खबरदार, हुसैन आये। सब-के-सब सँभल जाओ, और समझ लो, अब मैदान तुम्हारा है।

[हुसैन फ़ौज के सामने खड़े होकर कहते हैं :]

बेटा हूँ अली का व नेवासा रसूल का।
मा ऐसी कि सब जिसकी शफ़ाअत के हैं मुहताज,
बाप ऐसा, सनमख़ानों को जिसने किया ताराज। बेटा हूँ....
लड़ने को अगर हैदर सफ़दर न निकलते,
बुत घर से ख़ुदा के कभी बाहर न निकलते। बेटा हूँ....
किस जंग में सीने को सिपर करके न आये ?
किस फ़ौज की सफ़ ज़ेर व जबर करके न आये ? बेटा हूँ ...
हम पाक न करते, तो जहाँ पाक न होता,
कुछ ख़ाक की दुनिया में सिवा ख़ाक न होता। बेटा हूँ....
यह शोर अज़ाँ का सहरोशाम कहाँ था ?
हम अर्श पै जब थे, तो यह इस्लाम कहाँ था ? बेटा हूँ....
लाज़िम है कि सादात की इमदाद करो तुम,
ऐ ज़ालिमो, इस घर को न बरबाद करो तुम ! बेटा हूँ ...

[फ़ौज पर टूट पड़ते हैं ।]

शिमर—अरे नामर्दों, क्यों भागे जाते हो, कोई शेर नहीं है, जो सबको खा जायगा।

एक सिपाही—ज़रा सामने आकर देखो, तो मालूम हो। पीछे खड़े-खड़े क्या बहादुरी बघारते हो?

दूसरा—अरे, फिर इधर आ रहे हैं! खुदा, बचाना।

तीसरा—उन पर तलवार चलाने को तो हाथ ही नहीं उठते। उनकी सूरत देखते ही कलेजा थर्रा जाता है।

चौथा—मैं तो हवा में तीर छोड़ता हूँ, कौन जाने, कहीं मेरे ही तीर से शहीद हो जायँ तो आक़बत में कौन मुँह दिखाऊँगा।

पाँचवाँ—मैं भी हवा ही में छोड़ता हूँ।

शिमर—तुफ़् है तुम पर, डूब मरो नामर्दों, घेरकर नेज़ों से क्यों नहीं वार करते?

साद—(शिमर से) हमारे लिए उन्हें घेरना उतना ही मुश्किल है, जितना चूहों के लिए बिल्ली का। उनके सामने कौन है, जिसके क़दम रुकें? वह यों ही क़त्ल करते-करते खुद प्यास और थकान से बेदम हो जायँगे।

शिमर—(तीर चलाकर) क्यों भागते हो? क्यों अपने मुँह में कालिख लगाते हो? दुनिया क्या कहेगी, इसकी भी तुम्हें शर्म नहीं?

कीस—सारी फ़ौज दहल गयी, उसको खड़ा रखना मुश्किल है।

शीस—अली के सिवा और किसी का यह दम-ख़म नहीं देखा।

शिमर—(तीर चलाकर) सफ़ों को खूब फैला दो, ताकि दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ें।

हुसैन—साद और शिमर, मैं तुम्हें फिर मौक़ा देता हूँ, मुझे लौट जाने दो, क्यों इन ग़रीबों की जान के दुश्मन हो रहे हो? तुम्हारा मैदान ख़ाली हो गया। तुम्हीं सामने आ जाओ, जंग का फ़ैसला हो जाय।

साद—शिमर, जाते हो?

शिमर—क्यों न जाऊँगा, यहाँ जान देने नहीं आया हूँ।

साद—मैं जाऊँ भी तो लड़ नहीं सकता।

[**हुसैन दरिया की तरफ़ जाते हैं।**]

शिमर—अब और भी ग़ज़ब हो गया, पानी पीकर लौटे, तो ख़ुदा जाने, क्या करेंगे। हज्जाज को ताकीद करनी चाहिए कि दरिया का रास्ता न दे। (**हज्जाज को बुलाकर**) हज्जाज, हुसैन को हर्गिज़ दरिया की तरफ़ न जाने देना।

हज्जाज—(**स्वगत**) यह अज़ाब क्यों अपने सिर लूँ। मुझे भी तो रसूल से क़यामत में काम पड़ेगा (**प्रकट**) जी हाँ, आदमियों को जमा कर रहा हूँ।

[**हुसैन घोड़े की बाग ढीली कर देते हैं, पर वह पानी की तरफ़ गर्दन नहीं बढ़ाता, मुँह फेरकर हुसैन की रकाब को खींचता है।**]

हुसैन—आह! मेरे प्यारे बेज़बान दोस्त! तू हैवान होकर आक़ा का इतना लिहाज़ करता है, ये इन्सान होकर अपने रसूल के बेटे के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं। मैं तब तक पानी न पिऊँगा, जब तक तू न पियेगा (**पानी पीना चाहते हैं**)।

हज्जाज—हुसैन, तुम यहाँ पानी पी रहे हो, और लश्कर खेमों में घुसी जाती है।

हुसैन—तू सच कहता है?

हज्जाज—यक़ीन न आये, तो जाकर देख आओ।

हुसैन—(**स्वगत**) इस बेकली की हालत में कोई मुझसे दग़ा नहीं कर सकता। मरते हुए आदमी से दग़ा करके कोई क्यों अपनी इज़्ज़त से हाथ धोयेगा। (**घोड़े को फेर देते हैं और दौड़ाते हुए खेमे की तरफ़ आते हैं**) आह! इन्सान उससे कहीं ज़्यादा कमीना और कोरबातिन है, जितना मैं समझता था। इस आख़िरी वक़्त में मुझसे दग़ा की, और महज़ इसलिए कि मैं पानी न पी सकूँ।

[**फिर मैदान में आकर लश्कर पर टूट पड़ते हैं, सिपाही इधर-उधर भागने लगते हैं।**]

शिमर—(**तीर चलाकर**) तुम मेरे ही हाथों मरोगे।

[**तीर हुसैन के मुँह में लगता है, और वह घोड़े से गिर पड़ते हैं।**

फिर सँभलकर उठते हैं, और तलवार चलाने लगते हैं।]

साद—शिमर, तुम्हारे सिपाही हुसैन के खेमों की तरफ़ जा रहे हैं, यह मुनासिब नहीं है।

शिमर—औरतों की हिफ़ाज़त करना हमारा काम नहीं है।

हुसैन—(दाढ़ी से ख़ून पोंछते हुए) साद, अगर तुम्हें दीन का खौफ़ नहीं है, तो इन्सान तो हो, तुम्हारे भी तो बाल-बच्चे हैं। इन बदमाशों को मेरे खेमों में आने से क्यों नहीं रोकते ?

साद—आपके खेमों में कोई न जा सकेगा, जब तक मैं ज़िन्दा हूँ।

[खेमों के सामने जाकर खड़ा हो जाता है।]

जैनब—(बाहर निकलकर) क्यों साद ! हुसैन इस बेकसी से मारे जायँ, और तुम खड़े देखते रहो ? माल और दुनिया तुम्हें इतनी प्यारी है ?

[साद मुँह फेरकर रोने लगता है।]

शिमर—तुफ़ है तुम पर ऐ जवानो ! एक प्यादा भी तुमसे नहीं मारा जाता ! तुम अब नाहक़ डरते हो। हुसैन में अब जान नहीं है, उनके हाथ नहीं उठते, पैर थर्रा रहे हैं, आँखें झपकी जाती हैं, फिर भी तुम उनको शेर समझ रहे हो।

हुसैन—(दिल में) मालूम नहीं, मैंने कितने आदमियों को मारा, और अब भी मार सकता हूँ, पर हैं तो ये मेरे नाना ही की उम्मत, हैं तो सब मुसलमान, फिर इन्हें मारूँ, तो किस लिए ? अब कौन है, जिसके लिए ज़िन्दा रहूँ ? हाय, अकबर ! किससे कहें, जो ख़ूने-जिगर हमने पिया है, बाद ऐसे पिसर के भी कहीं बाप जिया है। हाय अब्बास !

गश आता है हमें प्यास के मारे,
उलफ़त हमें ले आयी है फिर पास तुम्हारे।
इन सूखे हुए होठों से होठों को मिलाके,
कुछ मशक में पानी हो, तो भाई को पिला दो।
लेटे हुए हो रेत में क्यों मुँह को छिपाये ?
ग़ाफ़िल हो बिरादर तुम्हें किस तरह जगायें ?

खुश हूँगा मैं, आगे जो अलम लेके बढ़ोगे।
क्या भाई के पीछे न नमाज़ आज पढ़ोगे?

लड़ते-लड़ते शाम हो गयी, हाथ नहीं उठते। आख़िरी नमाज़ पढ़ लूँ। क़ाश नमाज़ पढ़ते हुए सिर कट जाता, तो कितना अच्छा होता!

[हुसैन नमाज़ में झुक जाते हैं, अशअस पीछे से आकर उनके कंधे पर तलवार मारता है। क़ीस दूसरे कंधे पर तलवार चलाता है। हुसैन उठते हैं, फिर गिर पड़ते हैं, फ़ौज़ में सन्नाटा छा जाता है। सब-के-सब आकर उन्हें घेर लेते हैं।]

शिमर—ख़लीफ़ा यज़ीद ने हुसैन का सिर माँगा था, कौन यह फ़ख़्र हासिल करना चाहता है।

[एक सिपाही आगे बढ़कर तलवार चलाता है। मुस्लिम को छोटी लड़की दौड़ी हुई ख़ेमे से आती है; और हुसैन की पीठ पर हाथ रख देती है।]

नसीमा—ओ ख़बीस, क्या तू मेरे चाचा को क़त्ल करेगा?

[तलवार नसीमा के दोनों हाथों पर पड़ती है, और हाथ कट जाते हैं। शीस तलवार लेकर आगे बढ़ता है, हुसैन का मुँह देखते ही तलवार उसके हाथ से छूटकर गिर पड़ती है।]

शिमर—क्यों, तलवार क्यों डाल दी?

शीस—उन्होंने जब आँखें खोलकर मुझे देखा, तो मालूम हुआ कि रसूल की आँखें है। मेरे होश उड़ गये।

क़ीस—मैं जाता हूँ।

[तलवार लेकर जाता है, तलवार हाथ से गिर पड़ती है, और उल्टे क़दम काँपता हुआ लौट आता है।]

शिमर—क्यों, तुम्हें क्या हो गया?

क़ीस—यह हुसैन नहीं, ख़ुद रसूल पाक हैं। रोब से मेरे होश ग़ायब हो गये। या ख़ुदा, जहन्नुम की आग में न डालियो।

शिमर—इनकी मौत मेरे हाथों लिखी हुई है। तुम सब दिल के कच्चे हो।

[तलवार लेकर हुसैन के सीने पर चढ़ बैठता है।]

हुसैन—(आँखें खोलते हैं, और उसकी तरफ़ ताकते हैं।)

शिमर—मैं उन बुज़दिलों में नहीं हूँ, जो तुम्हारी निगाहों से दहल उठे थे।

हुसैन—तू कौन है?

शिमर—मेरा नाम शिमर है।

हुसैन—मुझे पहचानता है?

शिमर—खूब पहचानता हूँ, तुम अली और फ़ातिमा के बेटे और मुहम्मद के नेवासे हो।

हुसैन—यह जानकर भी तू मुझे क़त्ल करता है?

शिमर—मुझे जन्नत से जागीरें ज़्यादा प्यारी हैं।

[तलवार मारता है, हुसैन का सिर जुदा हो जाता है।]

साद—(रोता हुआ) शिमर, ज़ियाद से कह देना, मुझे 'रै' की जागीर से माफ़ करें। शायद अब भी नजात हो जाय।

[अपने सीने में नेज़ा चुभा लेता है, और बेजान होकर गिर पड़ता है फ़ौज के कितने ही सिपाही हाथों से मुँह छिपाकर रोने लगते हैं। खेमों से रोने की आवाज़ें आने लगती हैं।]